गहरे पानी पैठ

भगवान्श्री रजनीश

जीवन जागृति आन्दोलन प्रकाशन, बम्बई,
१९७४

प्रकाशक :
ईश्वरलाल एन शाह,
मंत्री, जीवन जागृति केन्द्र,
३१, इजरायल मोहल्ला,
भगवान भुवन, मस्जिद बन्दर रोड,
बंबई-९

प्रथम सस्करण अगस्त, १९७१
द्वितीय आवृत्ति अक्टूबर, १९७२
तृतीय आवृत्ति फरवरी १९७४

मूल्य : ७ रुपये

मुद्रक :
अमरनाथ मल्लिक,
इंडिया पब्लिशिंग हाऊस,
२५१, कामदार चेंबर्स,
सायन (पूर्व), बम्बई-२२.

अनुक्रम

आमुख

•

स्वामी आनन्द वीतराग

एम ए., पी. एच-डी (एडिनबरा)

डी लिट. (पटना)

आमुख

उपनिषदो के ऋषि इस बात पर बल देते थे कि आदित्य को ब्रह्म मानकर उपासना करनेवाले साधक तद्रूप हो जाते हैं।

भगवान् रजनीश को मैं ब्रह्मवेत्ता कहता हूँ, आदित्यरूप समझता हूँ और उनकी देशनाओ में उनके आदित्यत्व की अभिव्यक्ति पाता हूँ।

उन्होंने ब्रह्म के प्रकाशवान् चतुष्कल पाद की उपासना की है।

कहा जाता है कि ब्रह्म के अनन्तवान् नाम वाले चतुष्कल पाद की उपासना के अनन्तर वे ज्योतिष्मान् पाद की ओर तथा अन्तत आयतनवान् पाद की उपासना की ओर प्रवृत्त हुए थे।

जिस व्यक्ति ने 'आत्मैवेद सर्वम्' के रहस्य का उद्घाटन कर लिया, उसके लिए उनकी देशनाओ मे दीख पडनेवाले सारे-के-सारे अन्तर्विरोध मिट गए। वस्तुत. हम जिन्हें विरोधी, अन्तर्विरोधी, असगत आदि शब्दो से विशेषित करते हैं, वे भी आदित्य से ही उद्भूत हुए हैं। आदित्य वही ब्रह्म है जो असत् से सत् होने पर एक अडे में परिणत हो गया था। एक वर्ष पर्यन्त इसी प्रकार पडे रहने के बाद जब वह फूटा तब उसके रजत और सुवर्णरूप दो खंड हुए।

ये दोनो खड परस्पर विरोधी न होकर एक-दूसरे के पूरक हैं।

जो कभी असत्—स्तब्ध, स्पन्दनरहित और शून्य—था, वही कार्याभिमुख होकर प्रवृत्ति उत्पन्न होने के कारण सत् हो गया। छान्दोग्योपनिषद् कहती है कि फिर उससे भी कुछ स्पन्दन प्राप्त कर वह थोडे से नाम-रूप की अभिव्यक्ति के

कारण अंकुरित हुए बीज के समान हो गया। उस अवस्था से ही वह क्रमश कुछ और स्थूल होता हुआ जल से अंडे के रूप में परिणत हो गया ('आण्डमिति दैर्घ्यं छान्दसम्')। भगवान्श्री की आरम्भिक देशनाएँ इस अंडे के एक तत्त्व को और प्रस्तुत संकलन की देशनाएँ उसके दूसरे तत्त्व को उद्‌भासित करती हैं। परन्तु ये दोनो तत्त्व परस्पर सम्पूरक और 'ब्रह्म के ही दो हाथ' हैं। यदि एक तत्त्व अंडे का रजत खंड है तो दूसरा तत्त्व उसका सुवर्ण खंड। दोनो भगवान्श्री के 'अपरिवर्तनीय सत् की अनन्त उर्वरता' की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। न तो रजत खंड अपने-आप में पूर्ण था और न स्वर्ण खंड ही रजत के बिना पूर्ण होता। श्वेताश्वतर उपनिषद् के अनुसार ब्रह्म पशु है, पक्षी है, कृति है, जर्जर वृद्ध है, बालक है, बालिका है। वही समस्त जगत् का कारण है, प्रत्येक व्यक्ति का आत्मभाव है और सभी अन्तर्विरोधो को आत्मसात् करनेवाला है। विरोध और असंगति देखनेवाले लोग अपनी मूढतावश जगत् के एक पक्ष को देखते और उसके दूसरे पक्ष के प्रति अंधे होते हैं। यहाँ न तो प्रकाश है और न अंधकार, न अच्छा और न बुरा, न सत् और न असत्, न अहं और न अनहं, न आत्मा और न अनात्मा, न चेतन और न अचेतन। बौद्ध भिक्षुओ की भाषा में भगवान्श्री भी, सम्भवत यही कहते कि 'शून्यता ही सभी वस्तुओ की विशेषता है, उनका न आदि है और न अन्त, वे निर्दोष हैं और निर्दोष नही हैं, वे पूर्ण नही हैं और अपूर्ण भी नही।'

भगवान्श्री के प्रवचनो को इसी शून्यता के आलोक मे पढिये। जहाँ अन्तर्विरोध दीख पड़े वहाँ अपनी बुद्धि की सीमाओ के प्रति सजग हो जाइये और याद रखिए कि यद्यपि सिक्के के दो पहलू होते हैं, हमे एक साथ उनका एक ही पार्श्व दीख पडता है।

स्वयं सत्य प्रकाश और अप्रकाश, इच्छा और अनिच्छा, क्रोध और अक्रोध, नियम और अनियम—दोनो से पूर्ण है।

भगवान्श्री की बालसुलभ सरल चेतना बोधिसत्त्वो की प्रज्ञापारमिता के निकट पहुँच गई है। वह अन्तर्विरोधो में विरोध नही देखती और न असगति को असगत मानती है। ऐसी चेतनाएँ तर्कशून्यता में निविष्ट रहती हैं। मानवेतिहास के आरम्भिक युगो में मनुष्य का मन नाना प्रकार के विरोधो और अनिश्चयो से आक्रान्त था। परन्तु उसका अवैज्ञानिक सरल मन विचित्र मार्गों से आकर इन परिस्थितियो में उसकी सहायता करता। तर्क की दृष्टि से परस्पर विरोधी दीख पडनेवाले दृष्टिकोणो की युक्तियुक्तता को वह एक साथ स्वीकार कर लेता। उनके अनेकरूपात्मक देवी-देवता इसके प्रमाण हैं। बेबिलोनवासी प्रकृति की उत्पादन-ऊर्जा की पूजा वर्षा मे एक ऐसे पक्षी के रूप में करते थे जिसका सिर

सिंह का होता, जब वे धरती की उर्वरा शक्ति की पूजा करते तो साँप का रूप देते और मन्दिरों की मूर्तियों को मनुष्य का रूप। प्राचीन हिन्दू इसी सृष्टि-ऊर्जा की पूजा काली के रूप में करते थे और उसे भिन्न-भिन्न अनित्य एवं परस्पर विरोधी दीख पड़नेवाले स्वरूपों में देखते थे। कभी उसे एक अत्यन्त रूपवती नवयुवती बना डालते और कभी नरभक्षिणी राक्षसी। कभी उसकी लम्बी जिह्वा संसार को चाटती दीख पड़ती और कभी उसका शरीर कोमल तथा उसके उरोज अत्यन्त चित्ताकर्षक एवं उभरे होते। जीवन और धर्म के प्रति उनके ऐसे दृष्टिकोण के मूल में कोरा अंधविश्वास न होकर गम्भीर तत्त्वदर्शन की पीठिका होती थी। देवी-देवताओं के भिन्न-भिन्न वेश और भिन्न-भिन्न पहलुओं से युक्त उनके रूप प्रकृति की जटिलता की ही लयबद्ध एवं कवित्वमयी अभिव्यक्तियाँ हैं।

●

भगवान्‌श्री रजनीश मानव-जीवन की सरलता एवं संश्लिष्टता, इसके विरोधों और रहस्यों के प्रति जागरूक हैं और अपने चिन्तन के प्रगाढ़ क्षणों में इन सबको समेटते हुए कबीर और गोरखनाथ की उलटबासियों जैसी भाषा में प्रवचन करते जान पड़ते हैं। विश्व के स्वर्ण-स्वप्न से जागी हुई ऐसी प्रबुद्ध आत्माएँ संसृति के प्रथम प्रभात का अभिनन्दन करती हैं और वेदों, तीर्थों तथा मूर्तियों की सार्थकता को ऐसे ही दिव्य परिवेश से अनुस्यूत करती हैं। जब सृष्टि के प्रथमोद्‌गार में मानव-जीवन बालोचित सरलता से ओतप्रोत था, जब मानवता ने (कविवर पंत के शब्दों में) 'राशि-राशि विकसित वसुधा के यौवन विस्तार' की गवेषणा के लिए वैज्ञानिक दृष्टि विकसित नहीं की थी और जब उसे प्रकृति की 'नग्न सुकुमार सुन्दरता' ही प्यारी थी, तब मूर्तियों के सामने नतशिर होने का कुछ अर्थ था। तभी अपनी तीसरी आँख से प्रसूनों के शाश्वत शृंगार में अथवा पृथ्वी पर अभिसार करती हुई स्वर्ग की सुषमा में वह निखिल ब्रह्मांड के सौन्दर्य को तथा उसमें परिव्याप्त परमात्मा को देखने में समर्थ थी।

हमारी तीसरी आँख ही असली मन्दिरों और मूर्तियों को पहचान सकती है।

परन्तु, चूँकि खो गई है वह आँख, इसलिए असली मन्दिर भी दीख नहीं पड़ते आज।

असली मूर्तियाँ पूजा-पाठ की असली विधियाँ भी खो गई हैं मानो।

प्रवेश की कुंजियों का पता नहीं।

मन्दिरों और तीर्थों के विज्ञान का अवशेष तक नहीं दीखता।

विश्वनाथ के असली मन्दिर में किसी गृहस्थ ने कभी प्रवेश नहीं पाया।

तिलक भी हर कहीं लगा देने की बात नहीं है।

प्रत्येक व्यक्ति का वह बिन्दु जहाँ तिलक लगाया जाना चाहिए एक ही जगह नहीं होता।

तिलक के साथ जुड़ी हुई साधनाओं की जगह दिखावे के त्रिपुण्ड और विविधाकार रेखाएँ बच गईं।

असली मन्दिर वहाँ नहीं जहाँ वे दीख पड़ते हैं।

असली तिलक-स्थान वहाँ नहीं जहाँ भस्म और चन्दन की रेखाएँ बनायी जाती हैं।

असली पूजा की कोई विधि नहीं होती, कोई विधान नहीं होता।

पूजा आन्तरिक उद्भाव है—अत्यन्त निजी, अत्यन्त वैयक्तिक परन्तु हम आकार से ऊपर निराकार में छलाँग लगाने में असमर्थ होते हैं।

मूर्ति कभी नहीं छूटती और, इस कारण, न कभी सच्ची पूजा हो पाती है।

हम मूर्तियों पर रुक गए हैं।

सागर में छलाँग लगाना हो तो 'जंपिंग बोर्डों' का उपयोग करो, फिर त्याग दो इन्हें, कूद जाओ अनन्त में, साकार से निराकार में, शब्द से निःशब्द में। और स्मरण रखो 'गहरे में साकार निराकार के विपरीत नहीं है—वह भी निराकार का ही एक अविभाजित हिस्सा है। चूँकि हमारी देखने की क्षमता सीमित है, इसलिए वह विभाजित दीख पड़ता है। अन्यथा है वह अविभाजित।'

भगवान्श्री के प्रवचनों मे कहाँ है असंगति? कहाँ है अन्तर्विरोध? आज भी वे यही कहेंगे कि 'मन्दिरों ने, मस्जिदों ने, सम्प्रदायों ने मनुष्य को ईश्वर से दूर रखने के सारे उपाय किये हैं, निकट पहुँचाने के नहीं। और यही तो वजह है कि तीन-चार हजार वर्षों के इतिहास के बाद हम मनुष्य को पाते हैं कि वह अधार्मिक होता चला जा रहा है। और यदि मन्दिर और मस्जिद, हिन्दू और मुसलमान और सत्य के नाम पर चलती हुई परम्परागत थोथी बातें इसी भाँति चलती रहीं, तो वह दिन भी दूर नहीं है जबकि धर्म तिरोहित हो सकता है।' ये पंक्तियाँ दिसम्बर १९६७ की 'ज्योति-शिखा' से उद्धृत हैं। ६ जून, १९७१ की अन्तरंग वार्ता, जो प्रस्तुत ग्रन्थ में संकलित है, भगवान्श्री की इसी मनोदृष्टि का विकसित प्रस्तुतीकरण अथवा विशदीकरण है, न कि उसका निरसन। क्या आज भी वे यह नहीं कहते कि हमारे असली तीर्थ वहाँ नहीं हैं जहाँ हमारी मुमुक्षा, हमारा स्वार्थ हमें घसीट ले जाता है? क्या उनका इंगित इस तथ्य की ओर नहीं है कि हम जिसे मूर्ति मानकर पूजा करते हैं वह हमारे हाथों से निर्मित पत्थर-मात्र है? वे कहते

हैं :'. प्रतिमाएँ व्यक्ति की कम, किसी भाव-दशा की ज्यादा हैं। यदि बुद्ध की प्रतिमा पर ध्यान करेंगे तो थोडी ही देर में एहसास होना शुरू हो जायगा कि वह उनकी अद्‌भुत अनुकम्पा का, उनकी महाकरुणा का मूर्तिमान् रूप है। बुद्ध का उठा हुआ हाथ, बुद्ध की आधी मुंदी हुई पलकें और उनके चेहरे का अनुपात, उनके बैठने का ढग, उनके मुडे हुए पैर, उनकी सारी की सारी आनुपातिक व्यवस्था किसी गहरे में आपके भीतर करुणा से सम्बन्ध जोडने का उपाय है।' ऐसी प्रतिमाओ से हमारा सम्बन्ध तभी स्थापित हो सकता है जब हम खुले हो। स्वार्थांध व्यक्ति की पूजा, सकुचित हृदय की अपस्वार्थ से भरी प्रार्थनाएँ, साकार से बँधे रहने की प्रवृत्ति और निराकार-निस्सीम में छलांग लगाने का भय – हमारे मन्दिरो और तीर्थों को इसी कारण निरर्थक कर डालते हैं।

भगवान्‌श्री के साक्ष्यानुसार प्रत्येक विश्वधर्म की निजी गुप्त भाषा और गुप्त परम्परा होती है। साधारण व्यक्ति इस परम्परा को विकृत न कर दे, इसलिए इसे गुप्त रखा जाता है, छिपाने की निरन्तर कोशिशें की जाती हैं।

●

महीपाल के नाम —

हे सौम्य—सदायतन—सत्प्रतिष्ठ,
भगवान्‌श्री में जीवन की तरलता और प्रवाह है,
और उनके 'विचारो' में गति।
वे, ठीक ही, कहते है —
स्थैर्य मृत्यु है,
विकास जीवन,
सत्य बुद्धि से महत्तर है,
बुद्धि सत्य से अवर।
बुद्धि स्वभाव से तोडती है,
केन्द्र की ओर गतिमान् नहीं करती।
छिछली है,
विश्लेषणक्षमा है केवल,
इसलिए स्वय को स्वय से नहीं जोडती।
पार्थक्य और विरोध देखती है —
पक्षपातपूर्ण दृष्टि केवल विरोध देखती है —
बुद्धि असगति।
प्रवचनो का यह संकलन

'गुप्त तीर्थों की बात' है।
वही चेतना गतिमान् होती है,
वहीं सबकी चेतनाएँ एक-दूसरे में प्रवाहित होती हैं।
केवल साधारण तीर्थों की यह बात नही है।
और ध्यान रहे–'ध्यान की क्षमता'
से ही तीर्थ सार्थक हो सकते हैं,
अन्यथा, उनका अर्थ नही रह जाता।
साधु-सन्यासियो की चाँद-सम्बन्धी धारणा
यहाँ भी तो धूलि-ध्वस्त होती है,
उनकी 'किताब' का 'कोरा कागद',
उनका अधापन,
मात्र रह जाता है।
रजनीश तक शब्द नहीं जाते,
तर्क पीछे रह जाते हैं —
'न तर्क शब्द विज्ञानात् न वराद्वेद पाठनात्,
स्वस्थो योगी स्वय कर्ता लीलया चाजरामर।'

इस सुरुचिपूर्ण सम्पादन के लिए
कोटिश साधुवाद!

अंग्रेजी विभाग,
पटना विश्वविद्यालय,
पटना

विनीत
स्वामी आनन्द वीतराग

?

"मन्दिर, तीर्थ, तिलक-टीके, मूर्ति-पूजा, माला, मंत्र-तंत्र, शास्त्र-पुराण, हवन-यज्ञ, अनुष्ठान, श्राद्ध, ग्रह-नक्षत्र, ज्योतिष गणना, शकुन-अपशकुन, इनका कभी अर्थ था, पर अब व्यर्थ हो गये हैं। इन्हें समझाने की कृपा करें और बतायें कि क्या ये साधना के बाह्य उपकरण थे? रिमेम्बरिंग या स्मरण की मात्र बाह्य व्यवस्था थी, जो समय की तीव्र गति के साथ पूरी की पूरी उखड़ गयी? अथवा भीतर से भी इसके कुछ अन्तर संबंध थे? क्या समय इन्हें पुनः लेने को राजी होगा?"

उपरोक्त प्रश्न महीपाल जी द्वारा अंतरंग-वार्त्ता के अंतर्गत भगवान्श्री से निवेदित किया गया था। और उसी संदर्भ में भगवान्श्री ने मंदिर, तीर्थ, तिलक-टीके एवं मूर्ति-पूजा की जो तात्विक-विश्लेषणात्मक विशद विवेचना की—उसे ही संकलित-रूप में प्रस्तुत किया गया है।

मंदिर

जैसे हाथ में चाभी हो और उस चाभी को हम कैसे भी सीधा जानने का उपाय करे, या चाभी से ही चाभी को समझना चाहें, तो कोई कल्पना भी नही कर सकता उस चाभी की छान-बीन से, कि कोई बड़ा खजाना उसके हाथ लग सकता है। चाभी में ऐसी कोई भी सूचना नही है जिससे छिपे हुए खजाने का पता लगे। चाभी अपने में बिल्कुल बन्द है। चाभी को हम तोड़ें-फोड़ें, या काटें, तो भले ही लोहा हाथ लगे, या और धातुए हाथ लग जाय, पर उस खजाने की कोई खबर हाथ न लगेगी, जो चाभी से मिल सकता है। और जब भी कोई चाभी ऐसी हो जाती है जीवन में, कि जिससे खजानो का हमें पता नही लगता है, तब सिवाय बोझ ढोने के हम और कुछ भी नही ढोते। और जिन्दगी में ऐसी बहुत सी चाभियाँ है जो किन्हीं खजानो का द्वार खोलती है—आज भी खोल सकती है। पर न हमें खजानो का कोई पता है, न उन तालो का हमें कोई पता है जो हमसे खुलेंगे। जब तालो का भी पता नही होता और खजानो का भी पता नही होता, तो स्वभावत: हमारे हाथ में जो रह जाता है उसको हम चाभी भी नहीं कह सकते। वह चाभी तभी है जब किसी ताले को खोलती हो। उस चाभी से कभी खजाने खुले थे, आज उससे कुछ भी नहीं खुलता है, इसलिए वह बोझिल हो गई है, तो भी मन उसे फेंक देने का

नही होता । कही अचेतन में मनुष्य जाति के वह धीमी-सी गन्ध बनी ही रह जाती है। चाहे हजारो साल पहले वह चाबी कोई ताला खोलती रही हो, लेकिन मनुष्य की अचेतना में, उससे कभी ताले खुले हैं, कभी कोई खजाने उससे उपलब्ध हुए हैं,—इस स्मृति के कारण ही उस चाबी के बोझ को हम ढोये चले जाते हैं। न कोई खजाना खुलता है अब, न कोई ताला खुलता है! फिर भी कोई कितना ही समझाये कि चाबी बेकार है, उसे फेंक देने का साहस नही जुट पाता है। कही किसी कोने में मन के, कोई आशा पलती ही रहती है कि शायद कभी कोई ताला खुल जाय!

मन्दिर को ही लें। पृथ्वी पर ऐसी एक भी जाति नही है जिसने मन्दिर जैसी कोई चीज निर्मित न की हो। वह उसे मस्जिद कहती हो, चर्च कहती हो, गुरुद्वारा कहती हो—इससे बहुत प्रयोजन नही है। आज तो यह सभव है कि हम दूसरी जातियो से भी कुछ सीख लें। एक वक्त था, तब दूसरी जातियाँ हैं भी, इसका भी हमें पता नही था। तो मन्दिर कोई ऐसी चीज नही है, जो बाहर से किन्ही कल्पना करने वाले लोगो ने खडी कर ली हो। वह मनुष्य की चेतना से ही निकली हुई कोई चीज है। मनुष्य कितनी ही दूर, कितने ही एकान्त में—पर्वत मे, पहाड में, झील पर, कहीं भी बसा हुआ हो, उसने मन्दिर जैसा कुछ जरूर निर्मित किया है। मनुष्य की चेतना से ही कुछ निकल रहा है। यह अनुकरण नही है, एक दूसरे को देखकर कुछ निर्मित नही हो गया है। इसलिये विभिन्न तरह के मन्दिर बने, लेकिन मन्दिर बने अवश्य।

बहुत फर्क है एक मन्दिर में और एक मस्जिद मे। उनकी व्यवस्था में बहुत फर्क है। उनकी योजना में बहुत फर्क है। लेकिन आकाक्षा मे फर्क नही है, अभीप्सा में फर्क नही है। मनुष्य कही भी हो, कितना ही दूसरो से अपरिचित हो, वह अपनी चेतना मे कही कोई बीज छिपाये है, यह एक बात ख्याल मे ले लेने जैसी है। दूसरी बात यह भी ख्याल मे ले लेनी जरूरी है कि हजारो साल हो जाते हैं, न तालो का पता रह जाता है, न खजानो का। लेकिन फिर भी जिस किसी चीज को हम, किसी बिल्कुल अनजाने मोह से ग्रसित लिये चलते हैं, उस पर हजार आघात होते हैं, बुद्धि उसको सब तरफ से तोडने चलती है। युग का आज का बुद्धिमान जिसे सब तरह से इन्कार करता है, फिर भी मनुष्य का मन उसे सभाले चलता है इस सबके बावजूद। तो यह बात स्मरण रख लेनी जरूरी है कि मनुष्य की अचेतना में, आज उसे ज्ञात नही है तो भी, कही कोई गूजती-सी धुन जरूर है जो कहती है कि कभी कोई ताला खुलता था। अचेतना में इसलिए, कि हम में से कोई भी नया पैदा हो गया हो,

ऐसा नहीं है। हम में से सभी अनेक बार पैदा हो चुके हैं। ऐसा कोई युग न था जब हम न हों। ऐसी कोई घड़ी न थी जब हम न हो। उस दिन जो हमारी चेतना थी, उस दिन जो हमने चेतन जाना था, वह आज हमारी परतों के भीतर दबा हुआ 'अचेतन' बन गया है। उस दिन अगर हमने मंदिर का रहस्य जाना था, और उससे हमने किसी द्वार को खुलते देखा था, तो आज भी हमारे अचेतन के किसी कोने में वह स्मृति दबी पड़ी है। बुद्धि लाख इन्कार कर दे, लेकिन बुद्धि उतनी गहरी नहीं हो पाती जितनी गहरी वह स्मृति है। इसलिए सब आघातों के बावजूद, और सब तरह से व्यर्थ दिखायी पड़ने के बावजूद भी कुछ चीजें हैं, कि 'परसिस्ट' करती हैं, हटतीं नहीं। नये रूप लेती हैं, लेकिन जारी रहती हैं। यह तभी सभव होता है जब कि हमारे अनत जन्मों की यात्रा में, अनत-अनत बार, किसी चीज को हमने जाना है यद्यपि आज भूले हुए हैं। और इन में से प्रत्येक का बाह्य उपकरण की तरह तो उपयोग हुआ ही है, उनका आतरिक अर्थ भी है, अभिप्राय भी है।

पहले तो मदिर को बनाने की जो जागतिक कल्पना है, वह यह कि सिर्फ मनुष्य है, जो मदिर बनाता है। घर तो पशु भी बनाते हैं, घोसले तो पक्षी भी बनाते हैं, किंतु वे मदिर नहीं बनाते। मनुष्य की, जो भेद रेखा खींची जाय पशुओं से, उसमें यह भी लिखना ही पड़ेगा कि वह मदिर बनाने वाला प्राणी है। कोई दूसरा मदिर नहीं बनाता। अपने लिए आवास तो बिल्कुल ही स्वाभाविक है। अपने रहने की जगह तो कोई भी बनाता है। छोटे-छोटे कीड़े भी बनाते हैं, पक्षी भी बनाते हैं, पशु भी बनाते हैं, लेकिन परमात्मा के लिए आवास मनुष्य का जागतिक लक्षण है। परमात्मा के लिए भी आवास, उसके लिए भी कोई जगह बनाना! परमात्मा के गहन बोध के अतिरिक्त मदिर नहीं बनाया जा सकता। फिर परमात्मा का गहन बोध भी खो जाय तो मदिर बचा रहेगा, लेकिन बनाया नहीं जा सकता बिना बोध के। जैसे आपने एक अतिथि गृह बनाया घर में, वह इसलिये कि अतिथि आते रहे होंगे। अतिथि न आते हों तो आप अतिथि गृह नहीं बनाने वाले हैं। हालांकि यह हो सकता है कि अब अतिथि न आते हों और अतिथि गृह खड़ा रह गया हो। तो परमात्मा के लिए भी आवास की धारणा उन क्षणों में पैदा हुई जब परमात्मा सिर्फ कल्पना की बात नहीं थी, अनेक लोगों के अनुभव की बात थी। और परमात्मा के अवतरण की जो प्रक्रिया थी, उसके उतरने की, उसके लिए एक विशेष आवास, एक विशेष स्थान, जहां परमात्मा अवतरित हो सके, पृथ्वी के हर कोने पर आवश्यक अनुभव हुआ।

प्रत्येक चीज के अवतरण में, आव्हान में, 'रिसेप्टिव' होने में एक सयोजन है।

यों समझें कि अभी जो हमारे पास से रेडियो वेव्स गुजर रही हैं हम उन्हें पकड़ नहीं पायेंगे। रेडियो के उपकरण के बिना उन्हें पकड़ना कठिन होगा। कल अगर एक ऐसा वक्त आ जाय कि एक महायुद्ध हो जाय, हमारी सारी टेक्नोलाजी अस्त-व्यस्त हो जाय, और आपके घर में एक रेडियो रह जाय तो आप उसे फेंकना न चाहेंगे। मान लीजिए अब कोई रेडियो स्टेशन नहीं बचा, अब रेडियो से कुछ पकड़ा नहीं जाता, अब रेडियो सुधारने वाला भी मिलना मुश्किल है। हो सकता है दस-पांच पीढ़ियों के बाद भी आपके घर में वह रेडियो रखा रहे और तब कोई पूछे कि इसका क्या उपयोग है? तो कठिन हो जाएगा बताना। लेकिन इतना जरूर बताया जा सकेगा कि पिता आग्रहशील थे इसको बचाने के लिए, उनके पिता भी आग्रहशील थे। इतना उन्हें याद है कि हमारे घर में उसको बचाने वाले आग्रहशील लोग थे, वे बचाये चले गये। हमें पता नहीं, इसका क्या उपयोग है? आज इसका कोई भी उपयोग नहीं है। और रेडियो को तोड़कर अगर हम सब उपाय भी कर लें तो भी इसकी खबर मिलना बहुत मुश्किल है कि इससे कभी संगीत बजा करता था, कि कभी इससे आवाज निकला करती थी। सीधे रेडियो को तोड़कर देखने से कुछ पता चलने वाला नहीं है। वह तो सिर्फ एक आग्राहक था, जहां कुछ चीज घटती थी। घटती कहीं और थी, लेकिन पकड़ी जाती थी। ठीक ऐसे ही मंदिर आग्राहक थे, 'रिसेप्टिव इन्स्ट्रूमेंट' थे। परमात्मा तो सब तरफ है। आप भी सब जगह मौजूद हैं, परमात्मा भी सब जगह मौजूद है। लेकिन किसी विशेष संयोजन में आप 'एट्यून्ड' हो जाते हैं। आपकी 'ट्यूनिंग' मेल खाती है, ताल-मेल हो जाता है। तो मंदिर आग्राहक की तरह उपयोग में आये। वहां सारा इन्तजाम ऐसा था कि जहां दिव्य भाव को, दिव्य अस्तित्व को, भगवत्ता को हम ग्रहण कर पायें। जहां हम खुल जायें और उसे ग्रहण कर पाये। सारा इन्तजाम मंदिर का वैसा ही था। अलग-अलग लोगों ने अलग-अलग तरह से इन्तजाम किया था। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि अलग-अलग रेडियो बनाने वाले लोग, अलग-अलग शक्ल का रेडियो बनायें। बाकी, बहुत गहरे में प्रयोजन एक है।

इस मुल्क में मंदिर बने। और कोई तीन-चार तरह के ही खास ढंग के मंदिर हैं, जिनके रूप से बाकी सारे मन्दिर बने हैं। इस मुल्क में जो मन्दिर बने वह आकाश की आकृति के हैं। यानी जो गुम्बज है मंदिर का, वह आकाश की आकृति में है। और प्रयोजन यह है कि अगर आकाश के नीचे बैठकर मैं ओम् का उच्चार करूँ तो मेरा उच्चार खो जायगा। क्योंकि मेरी शक्ति बहुत कम है, विराट् आकाश है चारो तरफ। मेरा उच्चार लौटकर मुझ पर नहीं बरस सकेगा। मैं जो पुकार करूंगा, वह पुकार मुझ पर लौटकर नहीं आयेगी, वह अनंत

में खो आयेगी। मेरी पुकार मुझ पर लौटकर आ जाय, इसलिए मन्दिर का गुम्बज निर्मित किया गया। वह आकाश की छोटी प्रतिकृति है, ठीक अर्ध-गोलाकार, जैसा आकाश चारो तरफ पृथ्वी को छूता है,—ऐसा एक छोटा आकाश निर्मित किया है गुम्बज में। उसके नीचे मै जो पुकार करूगा, मत्रोच्चार करूगा, ध्वनि करूगा, वह सीधी आकाश में खो नही जायेगी। गोल गुम्बज उसे वापस लौटा देगा। जितना गोल होगा गुम्बज, उतनी सरलता से ध्वनि वापस लौट आयेगी, और उतनी ही ज्यादा प्रतिध्वनिया उसकी पैदा होगी। फिर तो ऐसे पत्थर भी खोज लिये गये जो ध्वनियो को वापस लौटाने में बडे सक्षम है। अजन्ता का एक बौद्ध चैत्य है, उसमें लगे पत्थर ठीक उतनी ही ध्वनि को तीव्रता से लौटाते है, उतनी ही चोट को प्रतिध्वनित करते हैं, जैसे तबला। आप तबले पर चोट करे, वैसी ही पत्थर पर चोट करे तो उतनी ही आवाज होगी। कुछ विशेष ध्वनियो को, जो बहुत सूक्ष्म है, साधारण गुम्बज नहीं लौटा पाता है, उसके लिए उन पत्थरो का उपयोग किया गया।

क्या प्रयोजन है इन सबका? प्रयोजन ये है कि जब आप ओम् का उच्चार करते है, जब बहुत सघनता से, बहुत तीव्रता से आप ओम् का उच्चार करते हैं। और मदिर का गुम्बज सारे उच्चार को वापस आप पर फेंक देता है, तो एक वर्तुल निर्मित होता है, एक 'सर्किल' निर्मित होता है उच्चार का, ध्वनि का, लौटती ध्वनि का। मन्दिर का गुम्बज आपकी गूजी हुई ध्वनि को आप तक लौटाकर एक वर्तुल निर्मित करवा देता है। उस वर्तुल का आनन्द ही अद्भुत है। अगर आप खुले आकाश के नीचे ओम् का उच्चार करेगे तो वर्तुल निर्मित नही होगा और आपको कभी आनन्द का पता नही चलेगा। जब वर्तुल निर्मित होता है तब आप सिर्फ पुकारने वाले नही हैं, पाने वाले भी हो जाते हैं। और उस लौटती हुई ध्वनि के साथ दिव्यता की प्रतीति प्रवेश करने लगती है। आपकी की हुई ध्वनि तो मनुष्य की है, लेकिन जैसे ही वह लौटती है वह नये वेग और नयी शक्तियो को समाहित करके वापस लौट आती है। इस मन्दिर को, इस मन्दिर के गुम्बज को, मत्र के द्वारा ध्वनि-वर्तुल निर्मित करने के लिए प्रयोग किया गया था। (अगर बिल्कुल शात, एकान्त स्थिति मे आप बैठकर उच्चार करते हो, तो जैसे ही वर्तुल निर्मित होगा, विचार बन्द हो जायेंगे। वर्तुल इधर निर्मित हुआ, उधर विचार बन्द हुए।) जैसा कि मैंने कई बार कहा है, स्त्री-पुरुष के समोग में वर्तुल निर्मित हो जाता है शक्ति का, और जब वर्तुल निर्मित होता है तभी समोग का क्षण समाधि का इशारा करता है। अगर पद्मासन या सिद्धासन में बैठे बुद्ध और महावीर की मूर्तिया देखें तो वह भी वर्तुल ही निर्मित करने के अलग ढग है। जब दोनो पैर जोड लिए जाते हैं और दोनो हाथ

पैरो के ऊपर रख दिये जाते है तो पूरा शरीर वर्तुल का काम करने लगता है। (खुद के शरीर की विद्युत फिर कही से बाहर नहीं निकलती। पूरी वर्तुलाकार बनने लगती है। एक सर्किट निर्मित होता है, और जैसे ही सर्किट निर्मित होता है वैसे ही विचार शून्य हो जाते है। अगर इसे विद्युत की भाषा में कहें तो आपके भीतर विचारो का जो कोलाहल है वह आपकी ऊर्जा के वर्तुल न बनने की वजह से है। वर्तुल बना कि ऊर्जा शान्त और समाहित होने लगती है।) तो मन्दिर के गुम्बज से वर्तुल बनाने की बडी अद्भुत प्रक्रिया है और यही अतरग अर्थ भी है उसका।

मन्दिर के द्वार पर हमने घण्टा लटका रखा है, वह भी सिर्फ इसीलिये; आप जब ओम् का उच्चार करेंगे, हो सकता है बहुत धीमे करे कि ख्याल में भी न आये। पर जोर से घण्टे की आवाज उस वर्तुल का आपको स्मरण दिला जायेगी तत्काल,—उस गूजती हुई ध्वनि का—वर्तुल पर वर्तुल। जैसे पानी मे फेंका गया पत्थर हो और लहर पर लहर, रिपल पर रिपल उठाता चला गया हो।

तिब्बती मन्दिर मे तो घण्टा नही रखते, सर्व धातुओ का बना हुआ एक बर्तन रखते हैं घडे की भाति और उसमें लकडी का डण्डा रखते है घुमाने के लिए। उसको सात बार अन्दर घुमाकर जोर से चोट करते है। सात बार घुमाने पर, और चोट करने पर "मणि पद्मे हु", इसकी पूरी आवाज निकलती है—पूरा मत्र! पूरा घडा चिल्लाकर कहता है, "मणि पद्मे हु"! और एक दफा नही, सात बार। आप सात राउण्ड लेकर चोट मारे उस पर और हाथ बाहर कर लें, फिर सात बार सुने – ओम् मणि पद्मे हु, ओम् मणि पद्मे हु, ओम् मणि पद्मे हु—आवाज धीमी होती जायगी और सात वर्तुल उसके बन जायेंगे। ठीक आप भी मन्दिर के भीतर एक घडे की तरह जोर से अपने भीतर चोट करेंगे — ओम् मणि पद्मे हु। मन्दिर भी दोहराएगा। आपका रोया रोया उसे ग्रहण करके वापस फेंकेगा। थोडी ही देर मे न आप रह जायेंगे, न मन्दिर रह जायेगा, सिर्फ विद्युत् के वर्तुल रह जायेंगे।

ध्यान रहे, ध्वनि जो है विद्युत का सूक्ष्मतम रूप है, यह भी थोडा ख्याल में ले लेना जरूरी है। क्योंकि अब विज्ञान भी कहता है कि ध्वनि विद्युत का एक रूप है—सभी कुछ विद्युत का रूप है। लेकिन भारतीय मनीषी की पकड थोडी सी भिन्न है। वह कहता है, विद्युत भी ध्वनि का रूप है। साउण्ड इज दी बेस, इलेक्ट्रिसिटी बेस नही है। इसलिए कहा है शब्द ब्रह्म। विद्युत् सिर्फ ध्वनि का ही एक रूप है। इसमें बहुत दूर तक समानता खडी हो गई। अभी विज्ञान कहने लगा है कि ध्वनि जो है, वह विद्युत का एक रूप है। अब ये थोडा सा फर्क रह

गया है कि प्राथमिक कौन है ? विज्ञान कहता है कि विद्युत प्राथमिक है। लेकिन भारत की मनीषा तो कहती है कि ध्वनि प्राथमिक है। और ध्वनि की ही सघनता विद्युत है। विज्ञान कहता है कि विद्युत का एक प्रकार, ध्वनि है। इस बात की बहुत सभावना है कि शब्द ब्रह्म की खोज बहुत निकट में विज्ञान को करनी पड़ेगी। ये मन्दिर के गुम्बज के नीचे पैदा की गयी ध्वनियो का ही अनुभव है। क्योंकि जब ओम् की सघन ध्वनि की गयी तो साधक ने मदिर के भीतर थोडी देर में जाना कि मदिर भी मिट गया और मैं भी मिट गया हू, सिर्फ विद्युत रह गयी। यह किसी प्रयोगशाला में लिया गया निष्कर्ष नहीं है। जिन्होंने ये कहा है, उनके पास कोई प्रयोगशाला नहीं। उनके पास तो एक ही प्रयोगशाला थी, जो उनका मदिर था। उस मदिर में उन्होने जाना है, और यह जाना है कि हम तो ध्वनि से शुरू करते हैं लेकिन अतत विद्युत ही रह जाती है। इस ध्वनि के अनुभव के लिए मन्दिर का गुम्बज निर्मित किया गया था।

जब पहली दफा पश्चिम के लोगो को भारतीय मन्दिर देखने को मिले, तो वे उन्हें 'अनहाईजीनिक' मालूम पडे। स्वभावत खिडकी-दरवाजे ज्यादा नहीं हो सकते, एक ही रखा जा सकता था, वह भी बहुत छोटा। इसका कारण था कि यह किसी भी तरह, ध्वनि जो पैदा हो रही है भीतर, उसके वर्तुल को तोडने वाला न बन जाय। उन विदेशियो को लगा कि ये मदिर बिल्कुल ही अधेरे, गन्दे और बन्द हैं, जिनमें हवा भी नहीं जाती। उनका चर्च साफ-सुथरा है, खिडकिया हैं, दरवाजे हैं, बडी खिडकिया है, बडे दरवाजे हैं। रोशनी भी जाती है, हवा भी जाती है, पूरे 'हाईजीनिक' हैं। मैंने कहा कि जब चाभी भूल जाती है तो कठिनाइया खडी होती हैं। आज कोई नही कह सकता हिन्दुस्तान में, एक आदमी भी, कि हमारे मन्दिर मे खिडकी क्यो नही है, दरवाजा क्यो नही है ? हमको भी लगा कि सच तो है कि मन्दिर 'अनहाईजीनिक' हैं। परन्तु कोई यह तर्क न दे सका कि इन मन्दिरो में इस मुल्क के स्वस्थतम लोग रहे हैं, इन मन्दिरो के भीतर बीमारी नहीं जाने दी गई। इन मन्दिरो मे बैठा हुआ पूजा और प्रार्थना करने वाला आदमी, स्वस्थतम लोगो मे से है।

तब यह भी धीरे धीरे अनुभव में आना शुरू हुआ कि ओम् की ध्वनि का जो आघात है वह अपूर्व रूप से 'प्यूरीफाई' करता है। विशेष ध्वनियां हैं जिनके आघात शुद्धता लाते हैं, विशेष ध्वनिया हैं जिनके आघात अशुद्धता लाते हैं। विशेष ध्वनियां हैं जो वहा बीमारियो को प्रवेश ही नही करने देंगी, विशेष ध्वनिया हैं जो वहा बीमारियो को निमन्त्रित करती हैं। पर ध्वनि का पूरा शास्त्र खो गया। जिन्होने कहा था—शब्द ही ब्रह्म है, उन्होने शब्द के लिए

बड़ी से बड़ी बात जो कही जा सकती थी, वह कही। ब्रह्म से बड़ा कोई अनुभव ही नहीं था, और शब्द से गहरी उन्होंने कोई चीज नही जानी थी, जिसका प्रयोग किया जा सके। सारे राग, सारी रागिनियां, सारा सगीत पूर्व का है। वह शब्द ब्रह्म की ही प्रतीतियों का फैलाव है। समस्त राग, समस्त रागिनियां मन्दिरों में पैदा हुई। समस्त नृत्य पहली दफा मन्दिरो में पैदा हुए, फिर हर जगह विकसित हुए। क्योंकि मन्दिर में ही ध्वनि का अनुभव करने वाला साधक था। उसने ध्वनियो में भेद देखे। उसने इतने भेद देखे जिसका कोई हिसाब नही।

अभी सिर्फ चालीस साल पहले काशी में एक साधु हुए हैं विशुद्धानन्द। सिर्फ ध्वनियो के विशेष आघात से किसी की भी मृत्यु हो सकती थी, ऐसे सैकडो प्रयोग विशुद्धानन्द ने करके दिखाये। वह साधु अपने बन्द मन्दिर के गुम्बज में बैठा था जो बिल्कुल 'अनहाईजीनिक' था। पहली दफा तीन अग्रेज डाक्टरो के सामने प्रयोग किया गया। वे तीनो अग्रेज डाक्टर एक चिडिया को लेकर अन्दर गये। विशुद्धानन्द ने कुछ ध्वनिया की, वह चिडिया तडफडायी और मर गयी। और उन तीनो ने जाच कर ली कि वह मर गयी। तब विशुद्धानन्द ने दूसरी ध्वनियां कीं, वह चिडिया फिर तडफड़ायी और जिन्दा हो गयी! तब पहली दफा शक पैदा हुआ कि ध्वनि के आघात का परिणाम हो सकता है! अभी हम दूसरे आघातो के परिणाम को मान लेते हैं क्योंकि उनको विज्ञान कहता है। हम कहते है कि विशेष किरण आपके शरीर पर पडे तो विशेष परिणाम होगे। विशेष औषधि आपके शरीर में डाली जाय तो विशेष परिणाम होगे। विशेष रग विशेष परिणाम लाते है। लेकिन विशेष ध्वनि क्यो नही? अभी तो कुछ प्रयोगशालाए पश्चिम में, ध्वनियो का जीवन से क्या सम्बन्ध हो सकता है, इसपर बडे काम मे रत हैं। दो-तीन प्रयोगशालाओ मे बडे गहरे परिणाम हुए हैं। इतना तो बिल्कुल साफ हो गया है कि विशेष ध्वनि का परिणाम, जिस मा की छाती से दूध नही निकल रहा है, उसकी छाती से दूध ला सकता है। विशेष ध्वनि करने पर जो पौधा छः महीने में फूल देता है वह दो महीने में फूल दे सकता है। जो गाय जितना दूध देती है उससे दुगुना दे सकती है—विशेष ध्वनि पैदा की जाय तो। आज रूस की सारी डेरीज में बिना ध्वनि के कोई गाय से दूध नहीं दुहा जा रहा है। और बहुत जल्दी कोई फल, कोई सब्जी बिना ध्वनि के पैदा नही होगी। क्योकि प्रयोगशाला मे तो यह सिद्ध हो गया है, अब व्यापक फैलाव की बात है। अगर फल, सब्जी, दूध और गाय ध्वनि से प्रभावित होते है, तो कोई कारण नही है कि आदमी प्रभावित न हो।

स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य ध्वनि की विशेष तरगो पर निर्भर है। इसलिए तब

बहुत गहरी 'हाईजीनिक' व्यवस्था थी जो हवा से बंधी हुई नहीं थी। सिर्फ हवा मिल जाने से ही कोई स्वास्थ्य आ जाने वाला है, ऐसी धारणा नहीं थी। नहीं तो यह असंभव है, कि पांच हजार साल के लम्बे अनुभव में यह ख्याल में न आ गया होता! हिन्दुस्तान का साधु बन्द गुफाओं में बैठा है जहां रोशनी नहीं जाती, हवा नहीं जाती। बन्द मन्दिरों में बैठा है। छोटे दरवाजे हैं, जिन में से झुक कर अन्दर प्रवेश करना पड़ता है। कुछ मन्दिरों में तो रेंग कर ही अन्दर प्रवेश करना पड़ता है। फिर भी स्वास्थ्य पर इसका कोई बुरा परिणाम कभी नहीं हुआ था। हजारों साल के अनुभव में कभी नहीं आया कि इनका स्वास्थ्य पर बुरा परिणाम हुआ है। पर जब पहली दफा संदेह उठा तो हमने अपने मंदिरों के दरवाजे बड़े कर लिए। खिड़कियां लगा दीं। हमने उनको 'माडर्नाईज' किया, बिना यह जाने हुए कि वह 'माडर्नाइज' होकर साधारण मकान हो जाते हैं। उनकी वह 'रिसेप्टि-विटी' खो जाती है जिसके लिए वह कुंजी हैं।

ध्वनि से गहरा सम्बन्ध है मन्दिर की वास्तु-कला का, आर्किटेक्चर का। वह सारा ध्वनि-शास्त्र ही है। किस कोण से ध्वनि चोट की जाय, उसका हिसाब है। कौन सी ध्वनि खड़े होकर की जाय और कौन सी बैठ कर की जाय, उसका भी हिसाब है। कौन सी लेट के की जाय उसका भी हिसाब है। क्योंकि खड़े होके उसके आघात बदल जायेंगे, बैठ के उसके आघात बदल जायेंगे। कौन सी ध्वनियां साथ में की जायं तो परिणाम अलग होंगे। कौन सी ध्वनियां अलग-अलग की जाय तो परिणाम अलग होंगे। इसलिए बड़े मजे की बात है कि जब वैदिक साहित्य का पश्चिम की भाषा में अनुवाद शुरू हुआ तो स्वभावत' पश्चिम में भाषा का जो जोर है वह भाषागत है, ध्वनिगत नहीं है, फोनेटिक नहीं है। कोई शब्द लिखा जाय तो वैदिक दृष्टि में उस शब्द के लिखने और बोलने का उतना मूल्य नहीं है जितना उसके भीतर वह विशेष ध्वनि और विशेष ध्वनि की मात्राओं का समाहित होना जरूरी है। संस्कृत का जोर फोनेटिक है, लिंग्वि-स्टिक नहीं। शब्दगत नहीं है, ध्वनिगत है। इसीलिए हजारों साल तक कीमती शास्त्रों को न लिखने की जिद की गयी। क्योंकि लिखते ही जोर बदल जायगा। 'एम्फेसिस' बदल जायगा। बोल के ही दिया जाय दूसरे को, लिख के न दिया जाय, क्योंकि लिखे जाने पर शब्द बन जायेगा, और ध्वनि की जो बारीक संवेदनाएं थीं वह मर जायेंगी। उनका कोई अर्थ नहीं रह जायगा।

अगर राम को लिख दें हम, तो पढ़ने वाले पचास तरह से पढ़ सकते हैं। कोई 'र' पर थोड़ा कम जोर दे, कोई 'अ' पर थोड़ा ज्यादा जोर दे, कोई 'म' पर थोड़ा कम जोर दे। वह कैसा जोर देगा, वह पढ़ने वाले पर निर्भर

करेगा। लिखने के बाद ध्वनिगत जोर समाप्त हो जाता है। अब उसको फिर डिकोड करना पड़ेगा। इसलिए हजारो साल तक जिद थी कि कोई शास्त्र लिखा न जाय। कारण? कारण सिर्फ एकमात्र यही था कि उसकी जो ध्वनिगत व्यवस्था है वह न खो जाय। सीधा व्यक्ति के द्वारा ही वह दूसरे को सुनाया जाय। इसलिए शास्त्र को 'श्रुति' कहते हैं, जो सुन के मिले वही शास्त्र था। जो पढ़ के मिले उसको हमने शास्त्र नही कहा कभी। क्योकि उसकी सारी की सारी वैज्ञानिक प्रक्रिया थी, कि उसमें ध्वनि के आघात होंगे—कहां क्षीण होगी ध्वनि, कहां तीव्र होगी। परन्तु उसको लिपिबद्ध करने पर कठिनाई खडी हो जायगी। और कठिनाई खड़ी हुई। जिस दिन लिपिबद्ध हुए ये शास्त्र, उसी दिन इनकी जो मौलिक आंतरिक व्यवस्था थी वह खण्डित हो गयी। फिर कोई जरूरत न रही कि आप किसी से सुनके ग्रहण करें। आप किताब पढ़ सकते हैं, वह बाजार में उपलब्ध है। फिर उसके साथ ध्वनि का कोई सवाल नहीं रहा।

यह भी मजे की बात है कि इन शास्त्रो का कभी जोर न था अर्थ पर। जोर ही नही था अर्थ पर। अर्थ पर जोर तो पीछे हमारी पकड में आना शुरू हुआ जब हमने उनको लिपिबद्ध किया। क्योकि लिपिबद्ध कोई भी चीज अगर अर्थहीन हो तो हम पागल मालूम पड़ेंगे। उनको उससे अर्थ देना ही पडेगा। अभी भी वैदिक वचनो में ऐसे वचन हैं जिनके अर्थ नही लगाये जा सके। और जिनके अर्थ नहीं लगाये जा सके वही वचन असली हैं, क्योकि वे बिल्कुल ही ध्वनिगत हैं, उनमें अर्थ था ही नही। जैसे 'ओम् मणि पद्मे हु'। यह एक तिब्बती मंत्र है। इसमे सवाल अर्थ का नही है। 'ओम्' में भी सवाल अर्थ का नही है। उसमें कोई अर्थ नहीं है। ध्वनिगत चोट है। और उसके परिणाम हैं। अब कोई साधक 'ओम् मणि पद्मे हु' का आवर्तन करता है बार-बार, तो उसके शरीर के विभिन्न चक्रो पर चोट पडनी शुरू होती है और वे चक्र सक्रिय होने शुरू होते हैं। इसमें क्या अर्थ है यह सवाल नही है, इसकी क्या 'युटीलिटी' उपयोगिता है, यह सवाल है। इसको ख्याल में ले लेना जरूरी है कि पुराने शास्त्र अर्थ पर जोर नही देते, उपादेयता पर जोर देते हैं — उपयोगिता क्या है, उपयोग क्या है इस पर जोर देते हैं।

बुद्ध से किसी ने पूछा है कि सत्य क्या है? तो बुद्ध ने कहा, जो उपयोग में आये। सत्य की परिभाषा—जो उपयोग में आ सके। विज्ञान भी यही करेगा सत्य की परिभाषा। विज्ञान भी यही करता है। वह प्रेगमेटिक परिभाषा करेगा। वह यह नहीं कहेगा कि सत्य क्या है, जिसको आप सिद्ध कर देंगे, यह सवाल नही है। सत्य क्या है, जो उपयोग में आ सके। आप उपयोग करके दिखा दें। आप कहते हैं कि

हाइड्रोजन-आक्सीजन मिलकर पानी बनते हैं। हमें फिक्र नहीं है कि ये सत्य है या असत्य। आप पानी बनाकर दिखा दें तो सत्य हो जायेगा, न बन सके पानी तो असत्य है। हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलकर पानी बनते हैं कि नहीं, यह कोई लाजिकल, कोई तर्कगत इसकी वैलिडिटी नहीं है। बनते हों तो बनाकर दिखा दें। बन जाय तो सत्य हैं, न बनते हो तो सिद्ध हो जायगा कि असत्य है। विज्ञान ने अब आकर वही व्याख्या पकड़ी है सत्य की, जो पांच हजार साल पहले धर्म की व्याख्या थी। धर्म कहता था, जो उपयोग में आ जाये। जिसका आप उपयोग कर सकें। वैसे ओम् का कोई अर्थ नहीं है, उपयोग है, कोई मीनिंग नहीं है, यूटिलिटी है। मन्दिर का कोई अर्थ नहीं है, उपयोग है। और उपयोग में लाना एक कला है और सभी कलाओं के साथ एक खराबी है, कि उनका जीवत हस्तांतरण नहीं हो सकता।

इधर मैं पढ़ता था, चीन में कोई पन्द्रह सौ साल पहले एक सम्राट था। वह मास का बहुत शौकीन है, और इतना शौकीन है कि वह अपने सामने ही गाय-बैल को कटवाता है। जो उसका कसाई है, वह पन्द्रह साल से नियमित सुबह आकर उसके सामने जानवर काटता है। एक दिन वह सम्राट पूछता है कि यह तू जो फरसा लाता है काटने को, इसे मैंने तुझे कभी बदलते नहीं देखा। पन्द्रह-साल हो गये, इसकी धार मरती नहीं? तो वह कसाई कहता है कि इसकी धार नहीं मरती। धार तभी मरती है जब कसाई कुशल न हो। धार तभी मरती है जब कसाई को पता न हो कि कहा ठीक जगह है, जहा कि फरसा आर-पार हो जाता है और दो हड्डियो के बीच में नहीं आता। यानी 'ज्वाइंट्स' कहा हैं? यह मेरी पुश्तैनी कला है। इस फरसे की धार सिर्फ मरती ही नहीं, बल्कि रोज जानवर काट के इसकी धार और तेज हो जाती है। उस सम्राट ने कहा, क्या तू यह कला मुझे भी सिखा सकता है? कसाई ने कहा कि यह बहुत कठिन है। यह तो मैं अपने बाप के पास, जबसे मुझे होश है, तबसे मैं खड़ा रहा और इसको मैंने 'इम्बाइब' किया है, इसको मैंने सीखा नहीं। इसको मैं पी गया हूं। मैं बाप के पास खड़ा रहता था। रोज रोज यही हो रहा था, दिन में जानवर कट रहे थे, मैं पास खड़ा रहता था। कभी उसका फरसा उठाकर लाता था, कभी जानवर के कटे हुए अगो को उठाकर रखता था। बस मैं पी गया। अगर तुम भी राजी हो तो मेरे पास खड़े रहो, कभी फरसा उठाकर लाओ, कभी रखो, कभी बैठो, कभी देखते रहो। इस हुनर को पी जाओ। मैं वह हुनर सिखा नहीं सकता।

साइंस सिखायी जा सकती है, आर्ट्स सिखाया नहीं जा सकता। विज्ञान हम सिखा सकते हैं, पढ़ा सकते हैं। कला हम सिखा नहीं सकते, कला को तो

'इम्बाइब' करना पड़ता है। ये सारे मत्र अर्थ नहीं रखते, किन्तु इनका कलात्मक उपयोग है। छोटे छोटे बच्चों को हम 'इम्बाइब' करवा देते थे। वह मंदिर की कला सीख जाते थे। उन्हे कभी पता भी नहीं चलता था कि वे क्या सीख गये! वे मदिर मे जाने की कला सीख जाते थे। वे मंदिर में बैठने की कला सीख जाते थे, वे मदिर का उपयोग सीख जाते थे। जब भी मुसीबतें होती थी वे भागे मंदिर चले आते थे। मंदिर से वे शांत होकर लौट आते थे। रोज सवेरे वे मन्दिर चले आते थे, क्योंकि जो मन्दिर में मिलता था वह कही भी मिलना मुश्किल था। पर उन्होंने इतने बचपन से पकड़ी थी बात कि उन्हें कभी सिखाया, ऐसा नहीं —इम्बाइब्ड कर गये थे वे, पी गये थे। बहुत सी चीजे है जो सिखायी नहीं जा सकतीं। जहा भी कला है वहां सिखाना मुश्किल है।

इस मन्दिर की, इन मन्दिरो के बीच ध्वनि की जो सारी की सारी सयोजना थी, उसकी एक प्रायोगिक व्यवस्था है। और जबतक शब्द का ठीक ध्वनिगत रूप ख्याल में न हो, उसका कोई मतलब नहीं होता। जैसे मत्र है, हमारे यहाँ गुरु के द्वारा ही दिया जाय, इसपर जोर था। वह मत्र आप जानते रहे हैं सदा। हो सकता है गुरु आपके कान में कहे—'राम राम का जाप करो'। और आप हैरान होंगे और कहेंगे कि यह क्या? क्या यह मत्र गुरु के बिना नहीं मिलता? यह तो दुनिया जानती है कि राम राम कहो, और इस आदमी ने कान में कहा कि राम राम कहो। यह तो पागलपन की बात है। नही, गुरु के दिये मत्र में राम के ध्वनिगत रूप पर जोर होगा, जिसे दुनिया नही जानती। वैसे राम के भी पचासो प्रयोग है।

वाल्मीकि की सारी कथा हमने सुनी है, लेकिन अब वह कथा बचकानी हो गयी। ऐसी कथा हो गयी कि हम समझने लगे कि वाल्मीकि नासमझ था, गर पढा-लिखा था, गवार था। वह भूल गया कि गुरु ने कहा था कि 'राम राम' का पाठ करना, तो वह 'मरा मरा' का पाठ करने लगा, और 'मरा मरा' का पाठ करते हुए ज्ञान को उपलब्ध हो गया। ये खामियाँ जब हो जाती हैं तो ऐसी गड़बड खड़ी हो जाती है। सच बात यह है कि राम के मत्र के एक रूप का यही हिस्सा है, कि 'राम राम' कहते कहते जब आपके भीतर से 'मरा मरा' निकलने लगे तभी वर्तुल बना। राम राम गति से कहते हुए, जब बिल्कुल स्थिति उल्टी हो जाय और मरा मरा निकलने लगे, तब ठीक ध्वनिगत हो गया। और जब मरा मरा निकलेगा तब एक अद्भुत घटना घटती है। और वह घटना यह है कि आप नही रहे, आप मर गये। (और जब आप मर गये होते हैं, वही क्षण आपके जप के पूरे होने का है। वही क्षण अनुभव का है, जब आप नही हैं, मिट गये) और यह बड़े मजे की बात है कि अगर यह प्रक्रिया

ठीक से की जाय, तो राम का पाठ आप शुरू करेंगे, बहुत शीघ्र वह घड़ी आ जायेगी जब राम की जगह 'मरा मरा' निकलने लगेगा और आप चाहेंगे भी कहना राम, तो न कह पायेंगे। सारा व्यक्तित्व मरा मरा कहेगा। उस वक्त आपकी मृत्यु घटित होगी, जो कि ध्यान का पहला चरण है। और जब आपकी मृत्यु पूरी घटित हो जायेगी तो आप अचानक पायेंगे कि मरा मरा, राम में रूपांतरित होने लगा। फिर आपके भीतर से राम की ध्वनि निकलनी शुरू होगी। और जो राम की ध्वनि अब निकलेगी आपके भीतर से, तब आपको राम का साक्षात्कार होगा, इसके पहले नहीं होगा। बीच में मरा की ध्वनि में रूपांतरण अनिवार्य है। इसके तीन हिस्से हुए। राम से आप शुरू करेंगे, मरा में आप मिटेंगे, और राम पर फिर पूरा होगा। और जब तक बीच में मरा-मरा की प्रक्रिया पकड़ न ले आपको, तबतक असली राम की प्रक्रिया, जो तीसरे चरण में पूरी होने वाली है, वह नहीं होगी। अगर आप राम राम कहते ही गये, और मरा मरा नहीं आया बीच में, तो आपको पता ही नहीं है, —उसके फोनेटिक 'एमफेसिस' का पता ही नहीं है। उसका ध्वनिगत जो जोर है उसजोर को अगर ठीक से आपने दिया—जैसे अगर आपने 'र' जोर से कहा, 'म' धीमे कहा तो ही 'मरा' बनेगा, नहीं तो नहीं बनेगा। 'र' पर सारी ताकत लग जायगी और 'म' को ढीला छोड़ दिया तो 'म' गड्ढे की तरह हो जायगा, 'र' शिखर की तरह हो जायगा। 'र' एक उत्तुंग चोटी हो जायगा और 'म' एक खाई हो जायेगा। और इस स्थिति में, राम में 'म' को छोटा करते आप चले जायें, तो बहुत शीघ्र आप पायेंगे कि रूपातरण हुआ। 'म' शिखर बन जायेगा और 'र' खाई बन जायेगा। और 'मरा' शुरू हो जायेगा।

जैसे लहरे हैं, हर शिखर के बाद खाई और हर खाई के बाद शिखर! अभी अभी जो शिखर था वह कुछ देर में खाई हो जायेगा, जो खाई थी फिर शिखर बन जायेगी। ठीक लहर की तरह। ध्वनि की भी लहरें हैं। ठीक ध्वनि के भी उतार-चढ़ाव हैं, आरोह-अवरोह हैं। तो ठीक ध्वनि की व्यवस्था अगर ज्ञात न हो तो आप राम राम कहते रहें कोई परिणाम नहीं होगा। अब जिन्होंने बाल्मीकि के संबंध में यह कहानी प्रचलित की थी कि वह नासमझ था, वह पढ़ा-लिखा न था, वह गवार था, ये सब बातें सत्य हैं कि वह नासमझ था, वे पढ़ा-लिखा था, गवार था, लेकिन यह बात सच नहीं है कि इसलिए वह 'मरा मरा' कहने लगा। जहाँ तक इस सूत्र का संबंध है, इस मामले में तो वह पूरा होशियार था। उसे ठीक, पूरे गणित का पता था। इतने ममाले का तो उसे पूरा पता था कि 'राम' कैसे कहना है कि 'मरा' बन जाय। जब मरा बन जाय तभी आप संक्रमण से गुजरेंगे और फिर राम पैदा होगा। वह राम आपके द्वारा कहा हुआ राम नहीं होगा। फिर आप तो मर गये। वह राम जन्मेगा आपके भीतर, वह अजपा होगा। आप उसका जाप नहीं कर रहे, वह हो रहा है आप।

ध्वनिगत जोर की वजह से श्रुति है। और उसे कोई जानने वाला, जो ध्वनियों को जानता हो, वही व्यक्ति उसे किसी को दे, तो ही उपयोगी होगा। वही शब्द होंगे, जो किताब में लिखे होंगे, सबको मालूम होंगे, फिर भी उनका गणित अलग हो जायेगा। और गणित में ही सारा खेल है। ध्वनि का जो गणित है, आरोह-अवरोह के जो अन्तर हैं, उनका ही सारा खेल है। तो एक पूरा मन्त्र-शास्त्र था, और मंदिर उनकी एक प्रयोगशाला थी। यह उसका आंतरिक मूल्य था, साधक का। और मदिर में जितने लोगो को परमात्मा का अनुभव हुआ, मन्दिर के बाहर नहीं हो सका—यह जानते हुए कि परमात्मा मन्दिर के बाहर भी है। वह अनुभव आज मन्दिर में भी नहीं हो रहा है। लेकिन मन्दिर के भीतर जितने लोगो को अनुभव हुआ उतने लोगों को कभी मन्दिर के बाहर नही हुआ। या जिन लोगो को मन्दिर के बाहर प्रयोग करने पड़े—जैसे महावीर, तो फिर उनको, जो मन्दिर में हो रहा था, उसके अलावा दूसरा उपकरण खोजना पडा जो ज्यादा जटिल है। महावीर को उन आसनो को साधना पडा वर्षों तक, जिनसे कि वर्तुल भीतर बन जाय। वह जो मन्दिर का सहारा था वह न लिया जाय। लेकिन वह वर्षों की प्रक्रिया है, और महावीर जैसे सकल्पी के लिए ही सभव है। बाकी अति कठिन हो जायेगी। बुद्ध ने भी मन्दिर का सहारा नहीं लिया। लेकिन महावीर के मरने के थोडे दिन बाद ही मन्दिर बनाना शुरू करना पड़ा, और बुद्ध के मरने के बाद भी बनाना शुरू करना पडा। क्योंकि जो मन्दिर दे सकता है बिल्कुल सामान्य जन को, वह बुद्ध और महावीर नही दे सकते। बुद्ध और महावीर जो कह रहे हैं करने को, वह सामान्य जन नही कर पायेगा।

आज तो अगर हम इस विज्ञान को पूरा समझ ले तो मदिर से भी श्रेष्ठतर उपकरण खोजे जा सकते हैं। अभी इस पर थोडा काम भी चलता है। मदिर से भी श्रेष्ठतर उपकरण इसलिये खोजे जा सकते हैं क्यो कि अब हम विद्युत के सबध में ज्यादा जानते हैं। परतु इस तरह के बहुत से प्रयोग, खतरे में भी ले जा सकते हैं, भयानक भी है। लेकिन ठीक उपयोग किया जाय तो जो मदिर करता था, उसकी हम साइंटिफिक व्यवस्था कर सकते हैं। क्योंकि मदिर में जो वर्तुल पैदा होता था वह वर्तुल अब और तरह से भी पैदा किया जा सकता है। आप जेब में छोटा-सा यत्र भी रख सकते है जो आपके भीतर विद्युत का वर्तुल बना सके। आप उस विद्युत् के यत्र में उन ध्वनियो को भी रेकार्डेड रख सकते हैं, जो आपके भीतर ध्वनियो का वर्तुल बना दें। अभी इस पर कुछ काम चलता है। बहुत हैरानी का काम है।

अमरीका में कोई सात-आठ वैज्ञानिक बहुत अद्भुत काम में लगे हुए

हैं। वह काम यह है कि हमारे जितने सुख-दुख के अनुभव हैं, सभी हमारे शरीर के किन्ही केन्द्रो पर विद्युत के प्रवाह के अनुभव हैं, और कुछ भी नहीं। जैसे, आपके अगर शरीर में सुई चुभाई जाय, पूरे शरीर में, तो सब जगह आपको सुई की चुभन पता नहीं चलेगी। कुछ डेड स्पाट्स हैं आपके शरीर में, जहां आपकी पीठ में हम सुई चुभाते रहेंगे और आपसे पूछेंगे, सुई चुभ रही है ? आप कहेंगे नहीं। किसी की भी पीठ में सुई चुभाकर आप दस-बीस, जगह देखें तो आपको दो-चार डेड स्पाट मिल जायेंगे। जहाँ आप चुभायेंगे और वह कहेगा चुभ नही रही है। ठीक वैसे ही दस-पाँच ऐसी जगहें हैं जहाँ आप जरा ही चुभायेंगे, वह कहेगा बहुत चुभ रही है। ठीक ऐसा ही मस्तिष्क का मामला है। मस्तिष्क के 'सेंस' की बहुत-सी ग्रथियाँ हैं, लाखो की सख्या में। और प्रत्येक ग्रथि का अनुभव है। जब आप कहते हैं, मुझे सुख हो रहा है तब आपके मस्तिष्क की किसी खास ग्रथि में से विद्युत् बहती है। समझें कि आप अपनी प्रेयसी के पास बैठे हैं। उसका हाथ, हाथ में लिये हैं और कहते हैं, मुझे सुख हो रहा है। जहाँ तक वैज्ञानिक का सबध है वह आपकी खोपडी में बतायेगा कि फला जगह से विद्युत बह रही है। और इस स्त्री के साथ सिर्फ दिमाग का एसोसिएशन है आपका, कि इसके पास बैठने से सुख मिलता है। तो उस सहयोग, साहचर्य की धारणा की वजह से खास बिन्दु से आपकी धार बहनी शुरू हो जाती है। लेकिन दो-चार महीने बाद नहीं मिलेगा सुख। क्योकि किसी बिन्दु से अगर आपने बहुत ज्यादा विद्युत की धारा बहायी तो वह 'इनसेंसिटिव' हो जाता है। उसकी सवेदनशीलता मर जाती है। जैसे एक जगह हम काटा चुभाये जाय बार बार, तो आज जितना दर्द आपको होगा, कल नही होगा, परसो और नही होगा। हम चुभाये चले जाए तो वह जगह ग्रथि बना लेगी, काँटे को झेल जायेगी, और दर्द बिल्कुल नही होगा। जो लोग सितार बजाते हैं तो उनकी उगली कट जाती है। पहले बहुत तकलीफ होती है, फिर बजाते ही चले जाते हैं तो उगली सवेदनहीन हो जाती है। फिर कितने ही तार-चार खींचे जायें, उगली को पता नही चलता। तो आपका जो प्रेम क्षीण हो जाता है कि तीन महीने के बाद प्रेम क्षीण हो गया, बडा कच्चा प्रेम था, —उसका और कोई कारण नही है। जिस बिन्दु से आपका सुख का प्रवाह हो रहा था वह आदी हो गया। यही स्त्री दो-चार दस साल आपसे छूट जाय तो फिर सुख दे सकती है।

यह जो वैज्ञानिको का काम है इसमें अभी तो उनके जो प्राथमिक प्रयोग थे, वह पशुओ पर थे। चूहो पर अभी उनका एक प्रयोग चलता था जिसने उनको भी घबडा दिया। चूहा जब सभोग में रत होता है तो उसके मस्तिक

को उन्होंने खोल के रखा। खिड़की खुली थी उसके मस्तिष्क की, ताकि उस पूरे मस्तिष्क की जाँच हो सके कि जब वह संभोग में आता है, जब उसका वीर्य क्षरण होता है, तो उसके मस्तिष्क में कहां से विद्युत बहती है? जब उसके मस्तिष्क की विद्युत की एक किरण पकड़ ली उन्होंने कि यहां से बहती है, तब वहां उन्होने 'इलेक्ट्राड' लगा लिया। मस्तिष्क बन्द कर दिया और 'इलेक्ट्राड' से जुड़े हुए तार की एक मशीन लगा दी। उस मशीन से उसी मात्रा की, उसी अनुपात की विद्युत बहेगी, जितने अनुपात की विद्युत उसके वीर्य क्षरण में बहती थी। और सामने उसके बटन लगा हुआ है। उस चूहे को बटन दबाना एक दफा बता दिया, कि जैसे बटन दबाया उसे वही आनंद आया, जो उसको संभोग में आया था। आप हैरान होंगे कि चूहे ने फिर कोई काम ही नहीं किया चौबीस घण्टे तक। एक घण्टे में छ छ हजार बार वह बटन दबाता रहा। खाना पीना बन्द उसका, और जब तक 'इलेक्ट्राड' काट नही दिया उसका, तब तक न खाया, न पिया, न सोया, न इधर-उधर देखा, बस वह एक ही काम—पूरे चौबीस घंटे, सतत! थक के गिर पड़ा वह बिल्कुल, लेकिन वह थकते वक्त तक उसको दबाये चला गया। वह वैज्ञानिक जो उसपर प्रयोग कर रहा था, उसका कहना है कि उस चूहे ने जितना संभोग का रस जाना, आज तक पृथ्वी पर किसी चूहे ने नही जाना। हालाकि संभोग वह कर नही रहा था, सिर्फ उस जगह से विद्युत प्रवाहित थी। उस वैज्ञानिक का दावा है कि बहुत जल्दी ही सेक्स बहुत साधारण सुख रह जायगा। जिस दिन हम आदमी को 'इलेक्ट्राड' दे देंगे, तब ऐसा आदमी खोजना मुश्किल होगा जो 'सेक्स' के लिए राजी हो जाय। क्योकि बहुत शक्ति गवा के कुछ खास पाता नही। हम उसके खीसे में एक बैटरी लगा छोटा-सा यन्त्र दे सकते हैं, वह अपने खीसे मे जब भी चाहे दबा ले बटन—सरसराहट फैलेगी, जैसी सेक्स मे फैलती है। पर यह खतरनाक भी है। क्योकि एक बार मनुष्य के मस्तिष्क की सारी व्यवस्था का पता चल जाय तो उसमे कौन-सा हिस्सा सदेह करता है वह काटकर फेंका जा सकता है, कौन-सा हिस्सा क्रोध करता है वह अलग किया जा सकता है,—या उसके सारे शरीर का कौन-सा हिस्सा बगावती है, उसके सारे संबंध, उसके सारे तार, डिस्कनेक्ट किये जा सकते हैं। सरकार उसके खतरनाक उपयोग कर सकती है।

लेकिन मनुष्य को सुख देने की दिशा में भी उनसे बहुत उपयोग नही हो सकते हैं। उनको तो पता नही है, लेकिन मै मानता हूँ कि हम मनुष्य को मन्दिर भी दे सकते हैं उस व्यवस्था से। वह और भी सरल होगा, इस मन्दिर से भी सरल होगा। इस मंदिर में आपके लिए घण्टो, महीनो, वर्षों ध्वनि का आघात पैदा करके जो स्थितियाँ बनतीं, वे स्थितियाँ और भी सरलता से पैदा की जा सकती हैं। तो मन्दिर मेरे हिसाब से एक बहुत वैज्ञानिक प्रक्रिया थी जो ध्वनि के माध्यम से आपके

भीतर सुखद, शांतिदायी, आनंददायी और प्रीतिकर भाव को जगाने का अद्भुत काम करती रही। और उस भाव की उपस्थिति में आपका जीवन के प्रति पूरा दृष्टिकोण बदलता जाता । हाँ, वैज्ञानिक जो कर रहे हैं उसमें खतरे हैं। खतरा एक ही है कि विज्ञान जो भी करता है वह 'टेक्नोलाजिकल' हो जाता है। तकनीकी हो जाता है। चेतना की उसमें बहुत जरूरत नही रह जाती। हो सकता है कि ठीक मदिर जैसी स्थिति भी विद्युत के प्रभाव से पैदा कर दी जाय, लेकिन चेतना के जो चारित्रिक परिवर्तन होते थे वह न हो सकेंगे। जो चेतना को ऊँचाइयाँ मिलती थीं, जो रूपांतरण, 'ट्रांसफर्मेशन' होता था, वह न हो। आदमी को बटन दबाने से जो मिल जायगा उससे कोई मूल रूपांतरण नही हो सकते। वह उपकरण होंगे। इसलिए मदिर की जरूरत समाप्त होगी, ऐसा मैं नही मानता हूँ।

और आप पूछते हैं कि क्या आज भी वे वापस इस परिवर्तित समय में उपयोग में लाये जा सकते है ?

वे लाये जा सकते हैं। लेकिन पुराना पुरोहित मदिर में जो बैठा है वह इसको उपयोग में लाने के लिए लोगो को नही समझा पायेगा। उसके पास चाभी है, लेकिन उसके पास चाभी के पीछे कोई व्यवस्था नही है। मदिर की पूरी दृष्टि और पूरे दर्शन को पुनर्स्थापित करना आज भी काम में आ सकता है। और पुराने से भी बेहतर मन्दिर हम आज बना सकते है, क्योकि आज सब साधन हमारे पास ज्यादा बेहतर है। ज्यादा बेहतर सामान का उपयोग किया जा सकता है जो ध्वनि को हजारगुना कर दे, मैग्नीफाई कर दे। इतनी सवेदनशील दीवालें बनायी जा सकती है कि आप एक बार ओम् कहें और दीवालें लाख बार ओम् दोहरा दें। आज हमारे पास सारे उपकरण ज्यादा बेहतर है, हो सकते है, यदि कुजी ख्याल में हो। पहले तो हमें एक दरवाजा रखना भी पडता था, अब हम बिल्कुल बिना दरवाजे का मदिर रख सकते हैं। उसको हम बिल्कुल ही बन्द कर सकते है। आज हमारे पास ज्यादा बेहतर उपकरण है, ज्यादा बेहतर मन्दिर बनाया जा सकता है। तब जिन लोगो ने मदिर बनाये थे वे बिल्कुल झोपडे में रह रहे थे, उनके पास कोई उपकरण नही थे। मिट्टी-गारे से जो वे कर सकते थे, जो सभव था उस सीमा के भीतर, उन्होने वह किया। फिर भी अद्भुत किया! हमारे पास आज बहुत अद्भुत उपकरण है, लेकिन हम कुछ भी नही कर पा रहे है। यह उसकी अतरवस्तु है, मदिर की।

उसकी बहिर्वस्तु भी है। उसका बाह्य उपयोग भी है। यह तो साधक की बात हुई जो मदिर जायेगा, साधेगा, व्यवस्था में गहरा उतरेगा और साधना में डूबेगा। जो डुबकी लेगा, उसकी बात हुई। लेकिन जो मदिर के पास से गुजरता था उसको भी फर्क पडता था, यद्यपि अब नही पडता है। अब तो भीतर जाने वाले पर भी

नहीं पड़ता। फर्क पड़ता था उसी दिन, जब भीतर जाने वाला सच में भीतर कुछ कर रहा था। जब मन्दिर में निरंतर दिन में पच्चीसों, सैकड़ों साधक आकर एक विशेष ध्वनि-व्यवस्था का सचरण करते हैं तो मन्दिर चार्ज्ड हो जाते हैं। मन्दिर फिर भीतर ही ध्वनि नही फेंकता, बाहर भी बहुत सूक्ष्म ध्वनियाँ फेंकना शुरू कर कर देता है। जीवित हो जाता है। जीवित मदिर का अर्थ यही था। जीवित प्रतिमा का भी अर्थ यही था कि उस प्रतिमा से ऐसे व्यक्ति को भी सस्पर्श हो जाय, जो उससे सस्पर्श करने आया नही था। जो उत्तर दे सके, जो कुछ कर सके। मदिर जीवित वही कहा जाता था, जिस मदिर के पास से आप अनजाने गुजर रहे हो और एकदम आपको लगे कि हवा बदल गयी, एकदम आपको लगे कि कुछ वातावरण और हो गया। आपको पता भी न हो कि मन्दिर है पड़ोस में। आप अंधेरी रात में गुजर रहे हो और मदिर के पास आकर आपको भीतर लगे कि जैसे कोई चीज बदल गयी हो। आप जो सोच रहे थे वह धारा टूट गयी, आप कुछ और सोचने लगे। हत्या की सोच रहे थे और एकदम दया से भर गये। लेकिन यह तभी हो सकता है जब मन्दिर चार्ज्ड हो। वहाँ का हर जर्रा-जर्रा, मदिर की ईंट-ईंट का टुकड़ा-टुकड़ा, द्वार-दरवाजे सब आविष्ठ हो गये हो। मदिर अब जीवित ध्वनियो का हो।

हर मन्दिर के सामने लटका हुआ जो घण्टा है उसे भी चार्ज करने के लिए बड़े अद्‌भुत ढग से प्रयोग होता है। जो आदमी मदिर में प्रवेश करे वह घण्टा बजायेगा। यानी वह मदिर में आने की अपनी सूचना दे रहा है। कभी मन्दिर में जाकर घण्टा बजाए, सोये मन से नही, पूरे होशपूर्वक घण्टा बजाए। घण्टा बजाने से आपके विचार में डिसकटीन्युटी पैदा होती है। आप जो सोचते आ रहे थे उसमे ब्रेक लगता है। घण्टे की आवाज विचारों को अस्त-व्यस्त कर जाती है। ये आपके नया होने का एक क्षण है। और घण्टे की जो आवाज है, उस आवाज में तथा 'ओम्' की आवाज में आतरिक सबध है। घण्टे की आवाज मन्दिर को चार्ज करती जाती है दिन भर। इसी प्रकार ओम् की आवाज भी चार्ज करती जाती है। ऐसे अन्तर-सबधो की मदिर में कितनी चीजें उपयोग की जाती थीं, चाहे घी से जलने वाला दिया हो, चाहे जलती हुआ सुगन्ध हो, चन्दन हो, फूल हो। और हर देवता के लिए विशेष फूल प्रिय थे। ये कोई देवता के प्रिय होने का सवाल न था, लेकिन हर मदिर की अपनी ध्वनिसचरण व्यवस्था थी। उसमें कौन-सी ध्वनि हार्मोनियस है कौन-सी सुगन्ध के साथ, इस पर पूरा पूरा ध्यान था। सिर्फ वही फूल लाना है अन्दर मदिर के, जिससे मन्दिर में पैदा होने वाली ध्वनि के साथ हार्मोनी रहती है और वही सुगध भी। फिर दूसरे फूल अन्दर नही लाये जा सकते। मस्जिद मे लोबान जलाया जायगा, मदिर में अगरबती जलेगी, धूप जलेगी, उन सबका ध्वनियो से सम्बन्ध था। 'अल्लाह' का जो उच्चार है, उसका जो सघन रूप है, उस रूप के साथ लोबान

की सुगन्ध का तालमेल है। ये तालमेल बड़ी भीतरी खोज से मिले थे। यह ऐसे नहीं सोच लिये गये थे। ऊपर से सोचा भी नहीं जा सकता। इनके खोजने की बात आपसे कह दूं। अगर आप अल्लाह का उच्चार करते जाय अपने कमरे में बैठ कर, उस कमरे में जहां कि पहले कभी लोबान नहीं लाया गया है, और कमरा बन्द कर लें। अल्लाह का उच्चारण भी सिर्फ अल्लाह नहीं, 'अल्लाहू', उसका ठीक उच्चारण है अल्ला हू। हू पर जोर होना चाहिए। धीरे धीरे अल्लाह छूटता जायगा और हू शेष रह जायेगा, अपने आप। और जिस दिन हू का ही उच्चार रह जायगा उस दिन आप अचानक पायेंगे कि आपके कमरे में लोबान की गंध फैल गई है। यह आपके भीतर से आती हुई गन्ध होगी। लोबान तो सिर्फ उसकी पैरेलल गंध है जो बाद में बाजार में खोजी गयी। खोजी इसलिये गई कि 'हू' के उच्चार से आपके भीतर से जो गन्ध आनी शुरू होती है उससे कोई मेल खाती गन्ध मिल जाय, तो हम मस्जिद में जला दें। क्योंकि वहां वह 'हू' के उच्चार करने वाले को सहयोगी हो जायेगी। दोहरा प्रयोग हो जायेगा। उसके भीतर से तो गंध जब उठेगी तब उठेगी, हम उसके बाहर पैदा कर देंगे। ओम् के साथ कभी भी भूल के भी किसी को लोबान का स्मरण नहीं आ सकता। उसकी चोट अलग जगह है, जहां से वह गन्ध नही निकल सकती।

हमारे शरीर मे गन्ध के भी क्षेत्र हैं। और हमारे मनोभावो से गन्ध के सम्बन्ध हैं। इसलिए जैन कहते हैं कि महावीर के शरीर से दुर्गन्ध नही निकलती, सुगन्ध ही निकलती थी,—और एक विशेष सुगन्ध ही। उस सुगन्ध के आधार पर तीर्थंकर पहचाना जाता रहा। महावीर के वक्त में आठ लोगो का दावा था कि वह तीर्थंकर थे, लेकिन सुगंध ने साथ नही दिया। आठ लोग दावेदार थे और महावीर से कोई कम नही था उन आठो में। ठीक उसी हैसियत के लोग थे। किलेन उस मत्र की धारा के लोग नही थे जिससे वह सुगन्ध निकले। इस वजह से वे दावे गलत हो गये। बुद्ध के बाबत भी लोगो का दावा था कि वह भी तीर्थंकर हैं। महावीर से कम उनकी हैसियत जरा भी न थी। बिल्कुल उसी हैसियत के आदमी थे। वही स्थिति थी उनकी, लेकिन उस मत्र परम्परा के नही थे इसलिए महावीर का शरीर जो गन्ध दे पाता था वह बुद्ध का शरीर नहीं दे पाता था। निर्णय गन्ध से हुआ अन्तत। महावीर के पास जाके एक विशेष गन्ध आनी शुरू हो जाती थी। उस वक्त ऐसे लोग जिन्दा थे जिन्होंने कहा कि ठीक यही पार्श्वनाथ के शरीर से भी गंध आती थी। अभी ज्यादा दिन पार्श्वनाथ को मरे नहीं हुए थे। गन्ध की यह स्मृतिसूचक व्यवस्था थी कि जब भी तीर्थंकर पैदा होगा, यही गन्ध होगी। एक विशेष मत्र की जो अतिम प्रक्रिया है उसके बाद ही तीर्थंकर हो सकता है। उससे यह गंध निकलेगी, वह उसका प्रमाण होगी, उसका दावा नही होगा। इसलिए महावीर ने कोई दावा नही

किया, वह तीर्थंकर हो गये। मक्खलीगोशाल ने बहुत दावा किया लेकिन वे तीर्थंकर नहीं हो सके। आपको हैरानी मालूम होगी कि गन्ध से तीर्थंकर तय होते थे। आसान नहीं था मामला। उतनी ही गहरी परीक्षा चाहिए थी, शब्द कुछ कह नहीं सकते थे। पूरा व्यक्तित्व गन्ध देना चाहिए कि उस व्यक्ति के भीतर वह फूल खिला है। उस मत्र की अतिम प्रक्रिया पूरी हो गयी, जहां से तीर्थंकर जन्मता है। नहीं तो उसको तीर्थंकर नही मानते। मक्खलीगोशाल का दावा था, अजितकेश कंबल कह रहा था, संजय, बिलेटीपुत्र सब दावेदार थे। ये सब बड़े लोग थे किंतु इन सबके नाम खो गये। उस वक्त ये सब महावीर की हैसियत के लोग थे। इनमें से प्रत्येक के लाखो शिष्य थे और उनका दावा था कि हमारा आदमी तीर्थंकर है। उधर महावीर बिलकुल चुप थे इस मामले में, कभी उन्होने दावा नही किया। और अन्तत लोगो ने कहा कि तीर्थंकर तो वही आदमी है जिसके शरीर से वही गन्ध प्रवाहित हो रही है।

प्रत्येक मत्र से होने वाली अपनी गध है। ओम् का जिन्होने पाठ किया है उन्होने गध जानी है। प्रत्येक मत्र से, भीतर पैदा होने वाले प्रकाश का भी अनुभव है। उस प्रकाश के आधार पर मदिर में कितना प्रकाश हो, उसका इन्तजाम किया गया। उससे ज्यादा नहीं। आज जो बिजली के बल्ब मदिर में लगा के बैठे हैं उनके पागलपन का कोई अत नही। इससे कोई लेना-देना नहीं है। क्योकि वहां, ठीक अतर आकाश मे जितना प्रकाश होता था, उतनी ही प्रकाश की व्यवस्था मन्दिर में करनी थी। बहुत मद्धिम, अनाक्रमक प्रकाश। इसलिए घी को चुना। बहुत अनाक्रमक, आख को चोट करता हुआ नहीं। यह एकदम से ख्याल नहीं आयेगा कि हमने कभी प्रकाश पर आख के टिकाने का कोई अभ्यास नही किया था। मिट्टी के तेल का दिया जला लें और उस पर घण्टे भर आख को रोक कर बैठ जाय। फिर घी का दिया जलायें, उस पर घण्टे भर आख को रोक कर देखें। मिट्टी के तेल के दिये पर घण्टे भर के बाद आख जलेगी, दुख पायेगी और थक जायेगी। और घी के दिये पर घटे भर में आपके आख की ज्योति बढ़ेगी और आखें ज्यादा शांत और स्निग्ध हो जायेगी। यह हजारो लोगों के अन्तर-अनुभव थे, जिनको बाहर व्यवस्था दी गयी। पैरेलल थे बाहर के। निश्चित ही कोई बाहर ठीक वह दिया नही खोज सकते जो भीतर हो सकता, लेकिन निकटतम, एप्रोक्सिमैट, जो हो सकता था उस वक्त वह उन्होने खोज लिया। बाहर हम ठीक वह सुगन्ध नही खोज सकते जो भीतर पैदा होगी मत्र के उच्चार से, लेकिन फिर भी निकटतम हम खोज लेते है।

चन्दन सारे मदिरो मे प्रीतिकर हो गया। चदन का टीका हम जहां लगाते हैं

वह आज्ञाचक्र है। मन्त्र हैं, जिनके अनुभव से भीतर चन्दन की सुगन्ध पैदा होनी शुरू होती है, लेकिन उस सुगन्ध का स्रोत सदा ही आज्ञाचक्र होता है। अब भी वह अनुभव आता है तो ऐसा ही लगता है कि आज्ञाचक्र से सुगन्ध निकल रही है और चारों तरफ फैल रही है। वही पैरेलल प्रतीक! हमने चन्दन चित्त के आज्ञाचक्र पर लगाया। अब भीतर आज्ञाचक्र पर सुगन्ध पैदा होती है तो इतनी शीतलता का अनुभव होता है जैसे बर्फ का टुकड़ा रख दिया है। ध्यान रहे, शीतल और ठण्डी चीज में फर्क है। ठीक वैसा ही फर्क, जैसे कि मिट्टी के तेल के दिये में और घी के तेल के दिये में है। बर्फ ठण्डा जरूर है, शीतल नही है। बर्फ का, थोडी देर के बाद का अनुभव गर्मी का होगा, उत्ताप का होगा। ठडक जरूर है, शीतल नही। जो अतिम फलश्रुति निकलेगी वह तो उत्ताप ही निकलने वाली है। आप और गर्म हो गये होते हैं। लेकिन चन्दन शीतल है, ठण्डा नही है। सिर्फ शीतल है। यह बहुत आर्द्र स्थिति है, और जिसमें डेप्थ है। आपके सिर को हम बर्फ से छुआ दें तो वह सिर्फ सतह को छूता है। अब चन्दन को लगा के देखें। आज्ञाचक्र पर बर्फ को लगाकर देखें थोडी देर, और बर्फ को अलग रख दें, तो आप पायेंगे कि एक सतह पर उसने छुआ, चमडी के पार वह नही गया, वहा उत्ताप पैदा कर गया। फिर चन्दन को लगा लें। थोडी देर के बाद आपको लगेगा कि चमडी के पार उसकी शीतलता उतरती आ रही है। चमडी के पार! चमडी के पार न पहुचे तो बेकार है, क्योंकि जो चक्र है वह तो चमडी के पार है। जिन लोगो को आज्ञाचक्र की गति का अनुभव हुआ और उन्होंने वहा शीतलता जानी, उन्होंने चन्दन को खोज लिया। उसकी सुगन्ध भी ठीक वैसी है जैसी भीतर अनुभव हुई। ये सारे के सारे उपकरण समानान्तर हैं। और जब मदिर इन सबसे भरा होता है तो आविष्ठ होता है। इसलिए मदिर में कोई बगैर स्नान किए न जाय। हम उसके व्यक्तित्व के, क्षण भर को ही सही, पुराने तारतम्य को तोडना चाहते हैं। बिना घण्टा बजाये न जाय, बासे कपडे पहन के न जाय। सच तो यह है कि मदिर में ठीक कपडे पहनने के लिए जो व्यवस्था थी, वह रेशम की थी। क्योंकि रेशम शरीर की विद्युत को पैदा करने में बडा अद्भुत था और उसको सरक्षित करने मे भी। और कितना ही पहनें, बासेपन का ख्याल नही पकडता। किसी गहरे अर्थ में ताजा बना रहता है। इस सारी व्यवस्था से अगर कोई मदिर चलता हो तो वह मदिर चार्ज्ड, आविष्ठ हो जाता है। उसके पास से भी कोई गुजरेगा तो उस मदिर का फील्ड पैदा हो जाता है।

महावीर के बाबत कहा जाता है कि महावीर जहां चलते उससे इतनी-इतनी सीमा के भीतर हिंसा नहीं हो सकती थी। वह उनका चार्ज्ड फील्ड था। इतनी-इतनी सीमा के भीतर हिंसा नहीं हो सकती थी। वह जहा से गुजरेंगे उनका फील्ड उनके साथ चलेगा। वह चलते हुए मन्दिर हैं। उतनी सीमा के भीतर कुछ भी हो

रहा हो, वह तत्काल बदल जायगा। पूरा नो स्फियर हो जायगा। तिलार जार्जिन ने नया एक शब्द गढ़ा है 'नो स्फियर', एटमास्फियर की जगह। एटमास्फियर का तो मतलब होता है वातावरण। नो स्फियर को हिंदी में हम कह सकते हैं 'विचार-आवरण', 'मनस आवरण'। एक मन का भी आवरण है। उस फील्ड में ऐसी घटनाए नही घटती। इसलिए पुराने गुरु के आश्रम मे अगर कोई गलत काम हो जाय तो शिष्यों को सजा नही दी जाती थी, गुरु अपने को सजा देता था। उसका मतलब है कि फील्ड नही रहा। उसका कोई कारण नही था कि शिष्य को कुछ कहा जाय। व्यर्थ है कहना उसको। उसका मतलब यह है कि गुरु की क्षमता नही रही। नही तो एक विशेष सीमा के भीतर तो वह नही हो सकता था जो हुआ है। दोष देने का किसी को कोई कारण नही है। गुरु स्वय पश्चात्ताप करेगा, तपश्चर्या करेगा, उपवास करेगा, आत्मशुद्धि करेगा। मगर गाधी जी ने उसको बहुत गलत पकडा। वह आत्मशुद्धि दूसरे के लिए प्रताडना नही है। वह ऐसी नही है कि इस तरह हम अपने को सताये, तो उससे दूसरे पर दबाव डाल देगे, और उसका अन्त करण बदल देंगे। वह समझ नही पाये। उनको उसका पता भी नही था। गुरु ऐसा करता था, वह उसको बदलने के लिए नही करता था, वह सिर्फ जो फील्ड है उसके आसपास, उसको बदलने के लिए करता था। और अगर वह फील्ड बदलता है, वह विचार-आवरण बदलता है, तो वह आदमी बदलेगा। वह दबाने के लिए, सताने के लिए नही था कि मैं अपने को सता रहा हू, तो तू अब बदल। ऐसा उसके अन्त करण-शुद्धि का सवाल नही था। अत करण का सवाल नही, चारो तरफ की हवा बदल जाने की बात है। वह एक मैगनेटिक फील्ड है, जो हर ऐसा व्यक्ति लेकर चलता है।

ये व्यक्ति गतिमान मदिर थे। महावीर जैसे व्यक्तियो को हम एक जगह नही बिठा सकते हैं। सदा के लिए नही बिठा सकते हैं। हमे कुछ ज्यादा स्थिर चाहिये जो गाव की जिन्दगी का केन्द्र बन जाय, जिसके आस-पास गाव बदलता रहे। जहा निरन्तर हम कुछ डालते रहे मदिर मे जाकर, और मदिर से हम लेते रहे। जिसका हमे पता भी न चले, यह सब अनजान चुपचाप हो जाय। मन्दिर के पास से निकलें तो कुछ हो जाय। कोई भी निकले मन्दिर के पास से तो कुछ हो जाय। एक बहुत बडा मैगनेटिक फील्ड है मदिर, बाहर के लिए। एक बाहरी प्रयोग के लिए उसको खडा किया था। जैसे कि चुम्बक के पास लोहा भी आये तो चुम्बकीय मालूम पडने लगे, वैसे ही मदिर के पास कोई आये तो मदिर उसे घेर ले और छा ले। तो ऐसा मन्दिर का क्षेत्र था।

मूसा के जीवन मे उल्लेख है कि जब मूसा पहाड पर गये। उन्होने पहाड पर

दिव्य अग्नि जलते देखी। एक झाड़ी में आग लगी है। पूरी झाड़ी जलती है, चारो तरफ आग है, फिर भी बीच में झाड़ी में फूल खिले हैं और झाड़ी में हरे पत्ते हैं। मूसा परमात्मा की खोज में है, वह एकदम आगे बढ़ा, तो झाड़ी से ओर से आवाज आयी कि 'नासमझ, जूते सीमा के बाहर छोड दें'। सीमा वहां कोई न थी, खुला जंगल था। तो मूसा ने चल कर देखा कि सीमा कहां है? और जब उसको अनुभव हो गया कि सीमा यहां है, यानी जहा तक मूसा मूसा रहा, और जहा से एक कदम आगे बढ़ा और उसे लगा कि कुछ बदला, वहां उसने जूते बाहर रख दिये। यह है मैगनेटिक फील्ड! उसने जूते बाहर रख दिये और माफी मांगी कि मुझे क्षमा कर देना, पवित्र भूमि मे जूता ले आया।

मन्दिर का एक वर्तुल है, उसके अपने आविष्ठ क्षेत्र का, जो बहुत जीवन्त है। उस जीवन्त वर्तुल का पूरे गाव के लिए उपयोग था। और उससे परिणाम आये थे। हजारो हजारो साल तक भारत के गाव की जो निर्दोषता, पवित्रता थी, उसके लिये गाव कम जिम्मेवार था, उस गाव का मन्दिर आविष्ठ था, वही ज्यादा जिम्मेवार था। तो जिस गाव में मदिर नही था, उससे दीन गाव नहीं था। कितना ही गरीब गाव हो, मदिर तो उसका होना ही था। मन्दिर के बिना सब अस्त-व्यस्त था। हजारो वर्ष तक गाव ने एक तरह की पवित्रता कायम रखी। उस पवित्रता के बडे अदृश्य स्रोत है। पूरब की सस्कृति को तोडने के लिए जो सबसे बडा काम हो सकता था वह मदिर के आविष्ठ रूप को तोड देना था। मन्दिर का आविष्ठ रूप टूट जाय तो पूरब की पूरी सस्कृति का जो आत्मस्रोत है वह बिखर जाता है।

इसलिए आज मन्दिर पर भारी सदेह है। और जो भी थोडा पढ़ा-लिखा हुआ, जिसे मदिर के जीवन्त रूप का कोई अनुभव नही रहा, उसने केवल शब्द और तर्क सीखे स्कूल और कालेज में। जिसके पास सिर्फ बुद्धि रही और हृदयगत कोई द्वार न रहा, उसे मन्दिर के पास जाकर कुछ दिखायी नही पडा। उसने कहा, कुछ भी नही है मदिर में। धीरे धीरे मदिर का अर्थ टूटता चला गया। भारत पुन कभी भारत नही हो सकता जब तक उसका मन्दिर जीवन्त न हो जाय। उसकी सारी कीमिया, सारी अल्केमी ही मदिर में थी, जहा से उसने सब कुछ लिया था। चाहे बीमार हुआ हो तो मन्दिर भाग कर गया था, चाहे दुखी हुआ तो मन्दिर भाग कर गया, चाहे सुखी हुआ तो मदिर धन्यवाद देने गया था। घर में खुशी आयी हो तो मन्दिर में प्रसाद चढ़ा आया। घर में तकलीफ आयी हो तो मन्दिर मे निवेदन कर आया। सब कुछ उसका मन्दिर था। सारी आशाए, सारी आकांक्षाए, सारी अभीप्साए उसकी मन्दिर के आस-पास थी। खुद कितना ही दीन रहा हो, मदिर को उसने सोने और हीरे-जवाहरातो से सजा रखा था। आज जब हम सोचने बैठते है तो यह बिल्कुल

पागलपन मालूम पड़ता है कि आदमी भूखों मर रहा है और मदिर की प्रतिष्ठा हो रही है। मंदिर को हटाओ, एक अस्पताल बना लो। एक स्कूल खोल दो। इसमें शरणार्थी ही ठहरा दो। इस मन्दिर का कुछ उपयोग कर लो। क्योंकि मन्दिर का वास्तविक उपयोग हमें पता नहीं है, इसलिए वह बिल्कुल निरुपयोगी मालूम हो रहा है। लगता है उसमें कुछ भी तो नहीं है। फिर मदिर में क्या जरूरत है सोने की, क्या जरूरत है चादी की, और मदिर में क्या जरूरत है हीरो की, जब कि लोग भूखो मर रहे हैं! लेकिन ध्यान रहे भूखो मरने वाले लोगो ने ही हीरा और सोना बहुत दिन से लगा रखा है। उसके कुछ कारण थे। जो भी उन लोगो के पास श्रेष्ठ था वह मन्दिर में रख आये थे। क्योंकि जो भी उन्होंने श्रेष्ठ जाना था वह मन्दिर से ही जाना था। इसके उत्तर में उनके पास कुछ देने को नही था। न सोना कोई उत्तर था, न हीरे कोई उत्तर थे। लेकिन जो मिला था मन्दिर से, उसके प्रति कृतज्ञता से भर कर हम सब कुछ वहां दे सकते थे। जो भी था हम वहा रख आये थे। अकारण नहीं था वह। क्योंकि लाखो साल तक अकारण कुछ नही चलता। ये मदिर के बाहरी, उसके आविष्ठ रूप के अदृश्य परिणाम थे, जो चौबीस घण्टे तरगायित होते रहते थे। उसके चेतन परिणाम भी थे। उसके चेतन परिणाम बहुत सीधे साफ थे।

(आदमी को निरन्तर विस्मरण है। जो महान है विस्मृत हो जाता है, और जो क्षुद्र है चौबीस घण्टे याद रहता है। परमात्मा को याद रखना पड़ता है, वासना को याद रखना नही पड़ता, वह याद रहती है। गड्ढे में उतर जाने में कोई कठिनाई नही होती, पहाड़ चढ़ने में कठिनाई होती है) तो मन्दिर गाव के बीच में निर्मित करते थे ताकि दिन में दस बार आते-जाते रहें। वह हमारी आकाक्षा को भी निरन्तर जगाये रखे। और ध्यान रहे, हममे से बहुत कम ऐसे है जिनकी आकाक्षा सहज आतरिक रूप से जगती है। हममें से बहुतो की आकांक्षाए सिर्फ चीजो को देखकर ही जगती हैं। अगर हवाई जहाज नही था दुनिया में तो आपको हवाई जहाज में उड़ने की कोई आकाक्षा नही जगती थी। हा, किसी राइट ब्रदर्स को जगती। जो एकाध आदमी है जो हवाई जहाज बनाता है—उसको जगती है क्योंकि वह तो हवाई जहाज निर्माण करता है, लेकिन आप को कभी नही जगती। आप हवाई जहाज देखेंगे तो अवश्य जगेगी। हमें चीजे दिखायी पड़ती हैं तो हमारे भीतर उन्हें पाने की आकांक्षा जगती है। तो मदिर के रूप में परमात्मा का कही न कही कोई साकार रूप हमें दिखायी पड़ता था, जो हम अन्धो के मन में कही प्रवेश करता था। खास तौर से उन लोगो के मन मे जो कि निराकार के लिए आतुर नही हो सकते थे। जो हो सकते थे निराकार के लिए राजी, उनके लिए तो कोई सवाल नही था मदिर का। उन्होने तो इस लिहाज से मन्दिर को नुकसान पहुचा दिया। उसमे भूल हुई। जो हो सकते थे निराकार से आविष्ठ, उन्होने कहा बेकार है मदिर, उन्हें हटा दो। मैं

खुद ही निरन्तर कहता रहा हू कि बेकार हैं, हटा दो। लेकिन धीरे धीरे मुझे ख्याल में आया कि यह मैं कह रहा हू, और मन्दिर हट गया तो जिनको आकार से कुछ स्मरण नहीं आया उनको निराकार से कैसे आ सकेगा ? तो इस लिहाज से कई बार कठिनाई हुई है। महावीर अगर अपनी हैसियत से बोलेंगे तो कहेंगे, हटा दो। क्योंकि महावीर को कोई जरूरत नही पडी। लेकिन कभी आपका ख्याल आ जाय तो इसे रोक लेना पड़ेगा। (यह आपके लिए चौबीस घण्टे आकांक्षा का एक नया स्रोत बना रहता है। एक और द्वार भी है जीवन में—दुकान और घर ही नहीं, धन और स्त्री ही नही —एक और द्वार भी है जीवन में जो न बाजार का हिस्सा है, न वासना का हिस्सा है। न धन मिलता है वहा, न यश मिलता है वहां, न काम तृप्ति होती है वहा। एक जगह और भी है, यह गाव में ही नही है, जीवन में एक जगह और है। इसके लिए धीरे धीरे यह मन्दिर रोज आपको याद दिलाता है। और ऐसे क्षण हैं, जब बाजार से भी आप ऊब जाते हैं और ऐसे क्षण हैं जब घर से भी ऊब जाते हैं। तब मन्दिर का द्वार खुला है। ऐसे क्षण में तत्काल आप मदिर में ठहर पाते हैं। मन्दिर सदा तैयार है। जहाँ मदिर गिर गया वहा फिर बडी कठिनाई है, विकल्प नही कोई है। घर से ऊब जाय तो होटल हो सकता है, रेस्तरा हो सकता है। बाजार से ऊब जाय, पर जाय कहा ? कोई अलग डायमेंशन, कोई अलग आयाम नही है। बस वही है, —वही के वही घूमते रहते हैं। मन्दिर एक बिल्कुल अलग डायमेंशन है जहा लेन-देन की दुनिया नही है। इसलिए जिन्होने मदिर को लेन-देन की दुनिया बनाया उन्होने मन्दिर को गिराया। जिन्होने मन्दिर को बाजार बनाया, उन्होंने मन्दिर को नष्ट किया। जिन्होंने मन्दिर को भी दुकान बना लिया, उन्होने मन्दिर को नष्ट कर दिया। मन्दिर लेन-देन की दुनिया नही है। सिर्फ एक विश्राम है। एक विराम है, जहां आप सब तरफ से थके-मांदे चुपचाप सिर छिपाते हैं। वहा की कोई शर्त नहीं है कि आप इस शर्त से आओ। इतना धन हो तो आओ, इतना ज्ञान हो तो आओ, कि इतनी प्रतिष्ठा हो तो आओ, कि ऐसे कपड़े पहनकर आओ कि मत आओ। वहा की कोई शर्त नही है। आप जैसे हो, मदिर आपको स्वीकार कर लेगा। कही कोई जगह है जहां जैसे आप हो वैसे ही आप स्वीकृत हो जाओगे, ऐसा भी सरल स्थल है। आपकी जिन्दगी में हर वक्त ऐसे मौके आये होंगे जबकि जो जिन्दगी है तथाकथित, उससे आप ऊबे होंगे, उस क्षण प्रार्थना का दरवाजा खुला होगा। और एक दफा भी वह दरवाजा आपके भीतर भी खुल जाय तो फिर दुकान में भी खुला रहेगा, मकान में भी खुला रहेगा। वह द्वार निरन्तर पास होना चाहिए, जब आप चाहो वहां पहुच सको। क्योंकि आपके बीच जिसको हम विराट का क्षण कहे वह बहुत अल्प है। कभी क्षण भर को होता है।) जरूरी नहीं कि आप तीर्थ जा सको, जरूरी नही कि महावीर को खोज सको कि बुद्ध को खोज सको। वह क्षण अल्प है, उस

क्षण बिल्कुल निकटतम आपके कोई जगह होनी चाहिए जहां आप प्रवेश कर सकें। इस स्मृति के अद्भुत परिणाम हैं। जैसे छोटे बच्चे हैं—हम सभी छोटे बच्चे थे, और जो भी होगा वह छोटा बच्चा ही होगा पहले तो। वैज्ञानिक कहते हैं कि सात साल में बच्चा करीब करीब जो भी आधारभूत है, वह सीख लेता है। फिर इसी आधारभूत पर फैलाव हो सकता है। लेकिन नया बहुत कम जोडा जाता है। जुडता है, उसी दायरे मे। कुछ नया नही जोडा जाता। अगर हमने सात साल के बच्चे नक की जिन्दगी में मन्दिर नहीं जोडा, तो आप दोबारा नही जोड पायेंगे। बहुत कठिन हो जायगा फिर जोडना। और यदि जोडने की मेहनत की भी गई तो वह कभी गहरा नही हो पायेगा, ऊपर ऊपर से रह जायेगा। तो बच्चा पहले दिन पैदा हुआ और उसकी पहली स्मृति हम मदिर की बनाना चाहते थे। वह मन्दिर के पास ही बडा हो, वह मदिर को जानता हुआ बडा हो, वह मन्दिर को पहचानता हुआ बडा हो। मदिर उसके अतरग का हिस्सा बन जाय। जब वह जिन्दगी में प्रवेश करे तो उसके भीतर मन्दिर की एक जगह बन जाय। क्योकि अतत वही जगह उसका विश्रामस्थल बनेगी जीवन के अत में। सारी दौड-धूप के बाद वही कोना उसका आखिरी घर और निवास होने वाला है। वह हमें पहले ही बना देना है। एक दफा वह नही बना तो फिर बहुत कठिनाई हो जाती है। अभी तो इतनी सरलता से बन सकती है, फिर वह जगह निर्मित नही हो सकती।

बाहर जो भी लोग जी रहे हैं मदिर के प्रतिबिब उनके चित्त मे उतरने चाहिए। वह उनके अचेतन मे इतने गहरे उतर जाय कि सोच-विचार का भी हिस्सा न रह जाय, वह उनके हिस्से ही हो जाय। इसलिए सारी पृथ्वी पर, चाहे रूप कोई भी हो,—अलग अलग रूप रहे, लेकिन मन्दिर अनिवार्य था। मनुष्य जिस सभ्यता और सस्कृति में जिया, उसका वह अनिवार्य अग था। अब हम जो दुनिया बनाने जा रहे हैं उसमे मदिर अनिवार्य नही रह गया। कुछ और चीजे अनिवार्य हो गयी। स्कूल है, अस्पताल है, पुस्तकालय है, पर ये सब अति लौकिक है, इनसे कुछ पार का, 'बियोन्ड' का, कोई सबध नहीं जुडता है। सदा ही, वह जो अतिक्रमण कर जाना है जीवन का, उसकी तरफ इशारा बना रहे। सुबह हमारी आखे खुले तो मदिर की घण्टी बजती हुई सुनायी पडे। रात में सोने जाते हो तो मदिर का भजन हमे सुनायी पडे। हम न भी करे, तो भी मदिर का भजन हमारे कान मे पडे।

महावीर के जीवन में एक कथा है, कि एक आदमी है चोर। मर रहा है, अपने बेटे को उसने कहा, जब बेटे ने पूछा है कि कोई आखिरी शिक्षा है मेरे लिये? तो उसने कहा, एक ही शिक्षा है कि यह जो महावीर नाम का आदमी है इसके पास मत खडे होना। यह अगर तुम्हारे गाव में बोलता हो तो दूसरे गाव में भाग जाना। यह

अगर रास्ते से गुजरता हो तो फौरन गली-कूचे मे कही भी निकल के छिप जाना। अगर पता न चले और तुम ऐसी जगह पहुच जाओ जहा उसकी आवाज सुनायी पड़ गयी तो फौरन काम बन्द करके, आख बन्द करके दौड आना। इस आदमी से बचना। चोर के लड़के ने कहा, लेकिन इतना डरने की इस आदमी से क्या जरूरत है? उसने कहा, मै तुमसे कहता हू, वह मानो। ऐसे आदमियो के पास गये तो अपना धधा सदा खतरे मे होगा, फिर हम नही जी सकते। इनसे बचना। फिर बडी मजेदार कथा है। वह बचता है जिन्दगी भर। सदा भागता रहा। जहा महावीर आते, वह वहा से भाग जाता। लेकिन एक दिन भूल हो गयी। वह एक रास्ते से गुजरता था और आम्रवन में महावीर बैठे थे, उसे कुछ पता न था। बोल नही रहे थे, जब वह आया था पास, तब बोल नही रहे थे। अचानक उन्होने बोलना शुरू किया तो आधा वाक्य उसको सुनायी पड गया। उसने कान बन्द किये और भागा। लेकिन आधा वाक्य सुनायी पड ही गया। अब वह बडी मुश्किल में पड गया। आधा वाक्य! पुलिस उसके पीछे थी, राज्य उसके पीछे था—कोई दस-पन्द्रह दिन बाद वह पकडा गया। वह कुशल चोर था, पीढी दर पीढी का उसका धन्धा था। इतना कुशल चोर था कि राज्य के पास कोई भी प्रमाण न था। जाहिर था चोर वही है, जाहिर था बडी चोरिया उसी ने की है। सबको पता था। इसमे छिपा भी कुछ न था। जाहिर रहस्य था। लेकिन फिर भी प्रमाण कुछ न था। कुशल इतना था कि लोगो के घरो मे खबर करके चोरी कर लेता था, पर प्रमाण नही मिलते। तो सिवाय इसके कोई रास्ता नही था कि कोई प्रमाण उससे ही निकलवाया जाय। उसे गहरा नशा करके बेहोश किया गया, इतना बेहोश रखा कि उसे दो-तीन दिन बिलकुल होश मे नही आने दिया। दो-तीन दिन के बाद वह होश मे आया। उसने आख खोली, तो तीन दिन की बेहोशी थी, खुमारी थी। देखा चारो तरफ कि अप्सराए खडी है। उसने पूछा—मै कहा हू? तुम मर गये हो और तुम्हे स्वर्ग या नर्क ले जाने की तैयारी की जा रही है। हम सिर्फ ले जाने वाले है। तुम होश में आ जाओ, इसकी प्रतीक्षा कर रहे है, ताकि हम तुमसे पूछ ले। अगर तुमने जो जो पाप किये है वह तुम कह दो तो तुम स्वर्ग जा सकते हो, और न कहो तो नर्क। सत्य बोल दो, बस इतना काफी है। उसका मन हुआ कि बोल दे सत्य, स्वर्ग जाने का मौका न चूके। जब मर ही गया तो अब क्या डर है? लेकिन तभी उसे महावीर का वह आधा वचन याद आया। जब वह गुजर रहा था उस वक्त महावीर कुछ देवताओ और प्रेतो के सबध मे बोल रहे थे। मृत्यु के पार जो यम ले जाते है उनके सबध मे कुछ इशारे थे। आधा वाक्य उसने सुना था। महावीर कह रहे थे कि वह जो ले जाते है मृत्यु के बाद, उनके पैर उल्टे होते है। उसने उनके पैर देख लिये, वे सब तो सीधे थे। वह सजग हो गया। उसने सोचा इस झझट में पडने की कोई जरूरत नही है। समझ गया कि कुछ गडबड

मामला है। होश आ गया। उसने कुछ कहा नहीं। उसने कहा, पाप तो कुछ किये नही, तो वक्तव्य क्या दू। नर्क ही ले चलो। पर जब पाप मैंने कुछ किये नहीं तो नर्क तुम ले जाओगे कैसे ? उसे छोड दिया गया। वह भागा हुआ महावीर के पास पहुचा, आ कर उनका पैर पकड लिया और कहा कि पूरा वाक्य करो, आधे वाक्य ने बचा लिया। अब तुम्हारा पूरा वाक्य सुन लू। मै तो भाग रहा था। आधा ऐसे ही सुन लिया था भागते भागते। उसने बचा ली जिन्दगी, नही तो फांसी लग गयी होती ! अब तुम पूरा कह दो प्रभु ! कि क्या कहना है, नही तो फांसी कभी न कभी लगेगी। अब मै आ गया तुम्हारी शरण ! तो महावीर अक्सर कहा करते थे कि आधा वाक्य भागते हुए जबरदस्ती सुना गया भी कभी काम का हो जाता है। तो मदिर के पास से कभी भागता हुआ आदमी, ऐसे अकारण गुजरता हुआ आदमी, कभी उसके भीतर से उठती हुई ध्वनि को, कभी उसके भीतर से आती सुगन्ध को ऐसे ही सुन ले, तो भी काम आ सकती है। ●

तीर्थ

प्रशान्त महासागर में एक छोटे से द्वीप ईस्टर आईलैंड में एक हजार विशाल मूर्तिया है जिनमे कोई भी मूर्ति बीस फीट से छोटी नही है। और निवासियो की कुल सख्या दो सौ है। जरा अन्दाजा लगाइये, एक हजार, बीस फीट से सत्तर फीट के बीच की, विशाल मूर्तिया! जब पहली दफा इस छोटे से द्वीप का पता लगा तो बडी कठिनाई हुई। कठिनाई यह हुई कि उस द्वीप की सामर्थ्य ही नही है दो सौ से ज्यादा लोगो को बसाने की और जो पैदावार हो सकती है वह इससे ज्यादा लोगो को पाल नही सकती। फिर जहा सिर्फ दो सौ लोग रह सकते हो, वहा एक हजार मूर्तियां विशाल पत्थर की खोदने का प्रयोजन नही मालूम पडता। ये तो एक आदमी के पीछे पाच मूर्तियां हो गयी। और इतनी बडी मूर्तिया ये दो सौ लोग खोदना भी चाहें, इतना महगा काम ये गरीब आदिवासी करना भी चाहें, तो भी नही कर सकते। क्योंकि इनकी जिन्दगी तो सुबह से सांझ तक रोटी कमाने में ही व्यतीत हो जाती है। और इन मूर्तियो को बनाने में हजारो वर्ष लगे होंगे!

क्या होगा प्रयोजन इतनी मूर्तियों का? किसने इन मूर्तियो को बनाया होगा? क्यो बनाया होगा? इतिहासविद् के सामने बहुत से सवाल थे।

ऐसी ही एक जगह मध्य एशिया में है। जब तक हवाई जहाज नही उपलब्ध

था, तब तक उस जगह को समझना बहुत मुश्किल पडा। हवाई जहाज के बन जाने के बाद ही यह ख्याल मे आया कि वह जगह कभी जमीन से हवाई जहाज उडने के लिए एयरपोर्ट का काम करती रही होगी। उस तरह की जगह के बनाने का और कोई प्रयोजन नही हो सकता। फिर वह जगह नयी नही है। उसको बने हुए अन्दाजन बीस हजार और पन्द्रह हजार वर्ष के बीच का वक्त हुआ होगा। लेकिन जब तक हवाई जहाज नही बने थे तब तक तो हमारी समझ के बाहर था उसे समझना। हवाई जहाज बने, और जब हमने एयरपोर्ट बनाये, तब हमारी समझ मे आया कि उस जगह ने कभी एयरपोर्ट का काम किया होगा। यह मै इसलिए कह रहा हू कि तीर्थ को हम न समझ पायेगे, जब तक कि तीर्थ पुन आविष्कृत न हो जाय।

अब जाकर, उन ईस्टर आईलैण्ड की मूर्तियो के एयरव्यू से, आकाश से हवाई जहाज के द्वारा लिये गये चित्रो से अन्दाज लगता है कि वह इस ढग से बनायी गयी है, इस विशेष व्यवस्था मे बनायी गयी है कि किन्ही खास रातो मे चाद पर से देखी जा सकें। वह ज्यामिति के जिन कोणो मे खडी की गयी है, वहा वह कोण बनाती है पूरा का पूरा। जो लोग इस सबध मे खोज करते है, उनका ख्याल यह है कि यह पहला मौका नही है कि हमने दूसरे ग्रहो पर जो जीवन है, उससे सबध स्थापित करने की कामना की है। इसके पहले भी जमीन पर बहुत प्रयोग किये गये, कि दूसरे ग्रहो पर अगर कोई जीवन हो, कोई प्राणी हो, तो उनसे हमारा सबध स्थापित हो सके। इतना ही नही दूसरे प्राणी-लोको से पृथ्वी के सबध स्थापित हो सकें, इसके बहुत से सांकेतिक इन्तजाम किये गये। यह जो बीस फीट से ऊची मूर्तिया है, ये अपने आप मे अर्थपूर्ण नही है, लेकिन जब ऊपर से उडकर उनके पूरे पैटर्न को देखा जाय, तब पता चलता है कि इनका पैटर्न किसी सकेत की सूचना देता है। वह सकेत चाद से पढा जा सकता है। पर जिन लोगो ने वह बनाया होगा! जब तक हम हवाई जहाज में उडकर न देख सके, तब तक हम उसकी कल्पना भी न कर सके और तब तक ये हमारे लिए सिर्फ मूर्तिया ही थी। ऐसी इस पृथ्वी पर बहुत सी चीजे है, जिनके सबध में तब तक हम कुछ भी नही जान पाते, जब तक कि किसी रूप मे हमारी सभ्यता, उस घटना का पुनर्आविष्कार न कर ले।

अभी मै दो-तीन दिन पहले बात कर रहा था। तेहरान में एक छोटा-सा लोहे का डिब्बा मिला था। वह ब्रिटिश म्यूजियम मे पडा रहा। वर्षों प्रतीक्षा की उस डिब्बे ने वहा। वह तो अभी अभी जाकर पता लगा है कि वह बैट्री है, जो दो हजार साल पहले तेहरान मे उपयोग मे आती रही। उसकी बनावट का ढग ऐसा था कि ख्याल मे नही आ सका। लेकिन अब उसकी पूरी खोज-बीन हो गयी। तेहरान में दो हजार साल पहले बैट्री हो सकती है, इसकी हम कल्पना भी नही कर सकते।

लेकिन अब पूरा साफ हो गया है कि वह बैट्री ही है। अगर हमारे पास बट्री न होती तो हम कभी भी, किसी भी तरह से, इस डिब्बे को बैट्री के रूप में खोज नही पाते। ख्याल भी नही आता, धारणा भी नही बनती।

तीर्थ पुरानी सभ्यता के खोजे हुए बहुत गहरे, साकेतिक, और बहुत अनूठे आविष्कार हैं। लेकिन हमारी सभ्यता के पास उनको समझने के सब रूप खो गये है। सिर्फ एक मुर्दा व्यवस्था रह गयी है। हम उसको ढोये चले जाते हैं बिना यह जाने कि वह क्यो निर्मित हुए, क्या उनका उपयोग किया जाता रहा, किन लोगो ने उन्हे बनाया, क्या प्रयोजन था ? जो ऊपर से दिखायी पडता है वही सब कुछ नही है, भीतर कुछ और भी है जो ऊपर से कभी दिखायी नही पडता। पहली बात तो यह समझ लेनी चाहिए कि हमारी सभ्यता ने तीर्थ का अर्थ खो दिया है। इसलिए जो आज तीर्थ को जाते हैं वह भी करीब करीब व्यर्थ जाते है। जो उसका विरोध करते हैं वह भी करीब करीब व्यर्थ विरोध करते हैं। बल्कि विरोध करने वाला ठीक मालूम पड़ेगा, यद्यपि उसे भी कुछ पता नही है इस बारे मे। जिस तीर्थ का वह विरोध कर रहा है वह तीर्थ की धारणा नही है। और तीर्थ जाने वाला जिस तीर्थ में जा रहा है वह भी तीर्थ की धारणा नही है। इस सबध में चार-पाच चीजें पहले ख्याल में ले लेनी चाहिए —

जैसे कि जैनो का तीर्थ है—समेतशिखर। जैनो के चौबीस तीर्थंकर में से बाईस तीर्थंकरो का समाधि-स्थल है वह। चौबीस में से बाईस तीर्थंकरो ने समेतशिखर पर शरीर विसर्जन किए है। आयोजित थी यह सारी व्यवस्था। अन्यथा एक जगह पर जाकर इतने तीर्थंकरो का, चौबीस मे से बाईस का, जीवन अत होना आसान मामला नही है बिना आयोजन के। एक ही स्थान पर, हजारों साल के लबे फासले में ऐसी घटना घटे ! अगर हम जैनो का हिसाब मानें, और मै मानता हू कि हमें जहा तक बन सके जिसका हिसाब हो उसका पहले मानने की कोशिश करनी चाहिए, तब तो लाखो वर्षों का फासला है—उनके पहले तीर्थंकर में और चौबीसवें तीर्थंकर में। लाखो वर्षों के फासले पर एक ही स्थान पर बाईस तीर्थंकरो का जाकर अपने शरीर को छोडना विचारणीय है।

मुसलमानो का तीर्थ है काबा। काबा में मुहम्मद के वक्त तक तीन सौ पैसठ मूर्तिया थी। हर दिन की एक अलग मूर्ति थी। वह तीन सौ पैसठ मूर्तियां हटा दी गयी। फेक दी गयी। लेकिन जो केन्द्रीय पत्थर था मूर्तियो का, जो मदिर का केन्द्र था, वह नही हटाया गया। तो काबा मुसलमानो से बहुत ज्यादा पुरानी जगह है। मुसलमानो की तो उम्र बहुत लम्बी नही है, केवल चौदह सौ वर्ष है। लेकिन काबा मे लाखो वर्ष पुराना पत्थर है—वह जो काला पत्थर है। दूसरे एक मजे की बात

है कि वह पत्थर जमीन का पत्थर नही है, यह तय है। पर आया कैसे वहां यह पत्थर ? एक ही उपाय था हमारे पास जानने का कि वह उल्कापात में गिरा हुआ पत्थर है। क्योंकि उल्कापात में सदा पत्थर जमीन पर गिरते हैं, और थोड़े पत्थर नहीं गिरते, रोज दस हजार पत्थर जमीन पर गिरते है, चौबीस घण्टे में। जो आपको रात तारे गिरते हुए दिखायी पड़ते है वह तारे नही होते, वह उल्काए हैं, पत्थर हैं, जो जमीन पर गिरते हैं। जोर से घर्षण खाकर हवा का, वे जल उठते हैं। अधिकतर तो बीच में ही राख हो जाते है, कोई कोई जमीन तक पहुच जाते है। कभी कभी जमीन पर बहुत बडे पत्थर भी पहुच जाते हैं। उन पत्थरो की बनावट और निर्मिति सारी भिन्न होती है। यह जो काबा का पत्थर है, यह जमीन का पत्थर नहीं है। इसकी सीधी व्याख्या तो यह है कि वह उल्कापात में गिरा है। लेकिन जो और गहरे जानते है, उनका मानना है, वह उल्कापात मे गिरा हुआ पत्थर नही है। जैसे हम आज जाकर चाद पर जमीन के चिन्ह छोड आये हैं—समझ लें कि एक लाख साल बाद यह पृथ्वी नष्ट हो चुकी हो, इसकी आबादी खो चुकी हो। अथवा कल अगर तीसरा महायुद्ध हो जाय तो यह पृथ्वी सूनी हो जाय, तो चाद पर जो हम चिन्ह छोड आये है, हमारे अत-रिक्ष यात्री चाद पर जो वस्तुए छोड आये हैं वे वही बनी रहेंगी, सुरक्षित रहेंगी। उन्हें बनाया भी इस ढग से गया है कि लाखो वर्षों तक सुरक्षित रह सकें। अगर कभी कोई जीवन चाद पर विकसित हुआ, या किसी और ग्रह से चाँद पर पहुचा, तो उसे वे चीजें मिलेंगी, और उसके लिए यह कठिनाई होगी कि वे कहा से आयी हैं ? इसी भांति काबा का जो पत्थर है वह सिर्फ उल्कापात म गिरा हुआ पत्थर नही है, वह पत्थर पृथ्वी पर किन्ही और ग्रहो के यात्रियो द्वारा छोडा गया पत्थर है। और उस पत्थर के माध्यम से उस ग्रह के यात्रियो से सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते थे। लेकिन पीछे सिर्फ उसकी पूजा रह गयी। उसका पूरा का पूरा विज्ञान खो गया, उससे कैसे सबध स्थापित किया जा सके, वह सारी बात खो गयी।

रूस का एक आतरिक्ष यान, जिसमें कोई मनुष्य यात्री नही था, खो गया और उसकी जो रेडियो व्यवस्था थी, हमसे सपर्क स्थापित करने की, वह टूट गयी। जैसे उसका रेडियो खराब हुआ, हम यह भी पता न लगा सके कि वह कहां गया ? कहा है ? बचा, जला, समाप्त हुआ, हम कुछ भी पता न लगा सके। इस अनन्त अत-रिक्ष में अब हम उसका कभी भी पता नही लगा सकेंगे, क्योकि उससे सबध के सब सूत्र खो गये। वह अगर किसी ग्रह पर गिर जाय तो उस ग्रह के वासी क्या करेंगे ? अगर उनके पास इतनी वैज्ञानिक उपलब्धि हो कि उसके रेडियो को ठीक कर सकें, तो हमसे सबंध स्थापित हो सकता है। अन्यथा उसको तोड-फोड करके, उनके पास अगर कोई म्यूजियम होगा तो उसमे रख लेंगे और किसी तरह की व्याख्या करेंगे कि वह क्या है ? अगर रेडियो तक उनका विकास हुआ हो तो उन्हें व्याख्या करने की

जरूरत न पड़ेगी। तब वह उसके राज को खोल लेंगे। अगर ऐसा न हुआ हो तो वह भयभीत हो सकते हैं उससे, डर सकते हैं, अभिभूत हो सकते हैं, आश्चर्यचकित हो सकते हैं, पूजा कर सकते हैं।

काबा का पत्थर उन छोटे से उपकरणों में से एक है जो कि कभी दूसरे ग्रह के अंतरिक्ष यात्रियों ने छोड़े और जिनसे कभी सम्बन्ध स्थापित हो सकते थे। यह मैं उदाहरण के लिए कह रहा हू आपको, कि तीर्थ हमारी ऐसी व्यवस्थाए हैं जिनसे हम अंतरिक्ष के जीवन से संबंध स्थापित नहीं करते बल्कि इस पृथ्वी पर ही जो चेतनाए विकसित होकर विदा हो गयी, उनसे पुन पुन संबंध स्थापित कर सकते हैं। और इन संभावनाओं को बढ़ाने के लिए जैसे समेतशिखर पर बहुत गहरा प्रयोग हुआ। बाईस तीर्थंकरो का समेत शिखर पर जाकर समाधि लेना, गहरा प्रयोग था। वह इस चेष्टा में था कि उस स्थल पर चेतना-तरंगो की इतनी सघनता हो जाय कि सम्बन्ध स्थापित करने आसान हो जाय। उस स्थान से इतनी चेतनाए यात्रा करे दूसरे लोक में कि उस स्थान और दूसरे लोक के बीच सुनिश्चित मार्ग बन जाय। वह सुनिश्चित मार्ग रहा है। जैसे जमीन पर सब जगह एक-सी वर्षा नही होती, घनी वर्षा के स्थल हैं, विरल वर्षा के स्थल है, रेगिस्तान है जहां कोई वर्षा नहीं होती, और ऐसे स्थान है जहा पांच सौ इंच वर्षा होती है। ऐसी जगह है जहा ठण्डा है सब और बर्फ के सिवाय कुछ भी नही बनता, और ऐसे स्थान है जहां सब गर्म है, और बर्फ बन नही सकती। ठीक वैसे ही पृथ्वी पर चेतना की डेंसिटी और नान-डेंसिटी के स्थल है। और उनको निरन्तर बनाने की कोशिश की गयी है। उनको निर्मित करने की कोशिश की गयी है। क्योंकि वह अपने आप निर्मित नही होगे, वह मनुष्य की चेतना से निर्मित होगे। समेतशिखर पर बाईस तीर्थंकरो की यात्रा करना, समाधि में प्रवेश करना, और उसी एक जगह शरीर को छोड़ना, उस जगह पर इतनी घनी चेतना का प्रयोग है कि वह जगह चार्ज्ड हो जायेगी विशेष अर्थों में। फिर कोई भी व्यक्ति वहा बैठे और उन विशेष मन्त्रो का प्रयोग करे, जिन मन्त्रो को उन बाईस लोगो ने दिया है, तो तत्काल उसकी चेतना शरीर को छोडकर यात्रा करना शुरू कर देगी। वह प्रक्रिया वैसी ही विज्ञान की है जैसी कि और विज्ञान की सारी प्रक्रियाए हैं।

तीर्थों को बनाने का एक तो प्रयोजन यह था कि हम इस तरह के चार्ज्ड, ऊर्जा से भरे हुए स्थल पैदा कर ले जहा से कोई भी व्यक्ति सुगमता से यात्रा कर सके। जैसे दो ढग है नाव खेने के—एक तो होता है कि हम नाव में पतवार लगाकर नाव खेवे। दूसरा यह होता है कि हम पतवार को चलाये ही न, सिर्फ नाव के पाल खोल दें उचित समय पर, और उचित हवा की दिशा में नाव को बहने दें। तीर्थ वैसी

जगह है, जहा से चेतना की एक धारा अपने आप प्रवाहित हो रही है, जिसको प्रवाहित करने के लिए सदियो ने मेहनत की है। आप सिर्फ उस धारा में खड़े हो जाय जहा आपकी चेतना का पाल तन जाय और आप एक यात्रा पर निकल जाय। जितनी मेहनत आपको अकेले में करनी पडे, उससे बहुत अल्प मेहनत में यात्रा संभव हो सकती है। विपरीत स्थल पर खडे होकर यात्रा अत्यत कठिन भी हो सकती है। हवाए जब उलटी तरफ बह रही हो और आप पाल खोल दें, तो बजाय इसके कि आप पहुचें, आप और भटक जाय, इसकी पूरी सभावना है।

अब जैसे, आप किसी ऐसी जगह मे ध्यान कर रहे हैं जहां चारो ओर नकारात्मक भावावेश प्रवाहित होते हैं, निगेटिव इमोशस प्रवाहित होते है। यो समझ लें कि आप एक जगह बैठ कर ध्यान कर रहे हैं और आपके चारो तरफ हत्यारे बैठे हुए है। ध्यान करने के क्षण मे आप इतने रिसेप्टिव हो जाते है कि आस-पास जो भी हो रहा है वह तत्काल आपमें प्रवेश कर जाता है। ध्यान एक रिसेप्टिविटी है, एक ग्राहकता है। ध्यान में आप 'वल्नरेबल' हो जाते है, खुल जाते है और कोई भी चीज आपमें प्रवेश कर सकती है। इसलिये ध्यान के क्षण में, आस-पास कैसी तरगें है चेतना की, वह विचार कर लेना बहुत उपयोगी है। अगर ऐसी तरगे आपके चारो तरफ है, जो कि आपको गलत दिशा में झुका सकती है, तो ध्यान महगा भी पड सकता है। तब ध्यान एक जद्दोजहद और एक सघर्ष बन जायेगा। जब कभी ध्यान में अचानक आपको ऐसे ख्याल आने लगे जो आपको कभी नही आये थे, जब ध्यान के क्षण में आपको एक क्षण भी शात होना मुश्किल होने लगे और ऐसा लगे कि इससे ज्यादा शात तो आप बिना ध्यान के ही रहते है, तब स्थिति यह होती है कि उस ध्यान के क्षण में भाव तरगो के रूप मे आस-पास जो भी प्रवाहित हो रहा है वह आप में सुगमता से प्रवेश पा जाता है। वैसे कारागृह मे भी बैठकर ध्यान किया जा सकता है, पर उसके लिए बडा सबल व्यक्तित्व चाहिए। और कारागृह में बैठकर ध्यान करना हो तो प्रक्रियाए भिन्न चाहिए। ऐसी प्रक्रियाए चाहिए जो पहले आपके चारो तरफ अवरोध की एक सीमा रेखा निर्मित कर दे, जिसके भीतर कुछ प्रवेश न कर सके। परन्तु तीर्थ मे वैसे अवरोध की कोई जरूरत नही है। तीर्थ में तो आप सब 'रेसिस्टेंस', सब द्वार-दरवाजे खुले छोड दे। हवाए वहा बह रही है। सैकडो लोगो ने उस जगह से अनत मे प्रवाहित होकर एक मार्ग निर्मित किया है। ठीक वैसा ही मार्ग कहना चाहिए जैसे कि हम जगल में दरख्त गिरा कर एक पक्का रास्ता बना लेते है, ताकि पीछे चलने वाले दूसरे यात्री को बडी सुगमता हो जाय। आत्मिक अर्थो मे भी सदा इस तरह के रास्ते निर्मित करने की कोशिश की गयी। कमजोर आदमिया को जिस तरह भी सहायता पहुचाई जा सके, उस तरह सहायता, जो शक्तिशाली थे, उन्होने सदा पहुचाने की कोशिश की। तीर्थ उनमें एक बहुत बडा प्रयोग है।

तीर्थ वह स्थान है जहां हवाए शरीर से आत्मा की तरफ बह ही रही है, जहां वायुमण्डल पूरा तरगायित है, जहां से लोग ऊर्ध्वगामी हुए, जहां बैठकर लोग समाधिस्थ हुए, जहा बैठकर लोगों ने परमात्मा का दर्शन पाया, जहा इन अनूठी घटनाओ के सैकड़ो वर्षों तक घटते रहने से वह जगह एक विशेष आविष्ठ जगह हो गयी। उस आविष्ठ जगह में आप अपने पाल को खुला भर छोड दें, कुछ और न करे, तो भी आपकी यात्रा शुरू हो जायगी। यह तीर्थ का पहला प्रयोग था। इसलिए सभी धर्मों ने तीर्थ निर्मित किये। उन धर्मों ने भी तीर्थ निर्मित किये जो मदिर के पक्ष में नही थे। यह बडे मजे की बात है कि मदिर के पक्ष मे कोई धर्म तीर्थ निर्मित करे, समझ मे आता है। लेकिन जो धर्म मदिर के पक्ष मे न थे, जो धर्म मूर्ति के विरोधी थे, उनको भी तीर्थ तो निर्मित करना ही पडा। मूर्ति का विरोध आसान हुआ, मूर्ति हटा दी वह भी कठिन न हुआ, लेकिन तीर्थ को हटाया नही जा सका। क्योकि तीर्थ का और भी व्यापक उपयोग था जिसको कोई धर्म इन्कार न कर सका। जैन भी मूलत मूर्तिपूजक नही हैं, मुसलमान मूर्तिपूजक नही हैं, सिख मूर्तिपूजक नही हैं।, बुद्ध भी मूर्तिपूजक नही थे प्रारम्भ में—लेकिन इन सबने भी तीर्थ निर्मित किये हैं। तीर्थ निर्मित करने ही पडे। सच तो यह है कि बिना तीर्थ के धर्म का कोई अर्थ ही नही रह जाता। बिना तीर्थ के धर्म फिर ऐसा है कि एक एक व्यक्ति जो कर सकता है, करे। लेकिन फिर समूह मे खडे होने का कोई प्रयोजन, कोई अर्थवत्ता नही है।

तीर्थ शब्द का अर्थ होता है घाट। उसका अर्थ होता है ऐसी जगह जहा से हम उस अनन्त सागर मे उतर सकते हैं। जैनो का शब्द तीर्थंकर तीर्थ से बना है। उसका अर्थ है तीर्थ को बनाने वाला, और कोई अर्थ नही है उसका। असल में उसको ही तीर्थंकर कहा जा सकता है जिसने ऐसा तीर्थ निर्मित किया हो जहा साधारण जन खडे हो, पाल खोले, और यात्रा पर सलग्न हो जाय। जैनो ने उन्हें अवतार न कहकर तीर्थंकर कहा। और अवतार से बडी घटना तीर्थंकर है। क्योंकि परमात्मा, आदमी में अवतरित हो यह तो एक बात है, लेकिन आदमी परमात्मा में प्रवेश का तीर्थ बना ले, यह और भी बडी बात है।

(जैन, परमात्मा मे भरोसा करने वाला धर्म नही है, आदमी की सामर्थ्य मे भरोसा करने वाला धर्म है। इसलिए तीर्थ और तीर्थंकर का जितना गहरा उपयोग जैन कर पाये उतना कोई भी नही कर पाया। क्योकि यहा तो कोई ईश्वर की कृपा का उनको ख्याल नही है। ईश्वर कोई सहारा दे सकता है, इसका कोई अर्थ नही है। आदमी अकेला है, और आदमी को अपनी ही मेहनत से यात्रा करनी है) इसके दो रास्ते हो सकते हैं। एक तो यह कि एक एक आदमी अपनी अपनी मेहनत करे।

पर तब शायद कभी करोडो में एक आदमी उपलब्ध हो पायेगा। चप्पू से भी नाव चला कर यात्रा तो की ही जा सकती है, लेकिन तब कभी कोई एकाध पार हो पायेगा। लेकिन हवाओ का सहारा लेकर यात्रा बड़ी आसान होती है, यह दूसरा रास्ता है। तो क्या आध्यात्मिक हवाएँ संभव हैं ? उसपर ही तीर्थ का सब कुछ निर्भर है। क्या यह संभव है कि जब महावीर जैसा एक व्यक्ति खडा होता है तो उसके आस-पास किसी अनजाने आयाम में कोई प्रवाह शुरू होता है ? क्या वह किसी एक ऐसी दिशा में बहाव को निर्मित करता है कि बहाव में कोई पड जाय, तो बह जाय ? असल में वही बहाव तीर्थ है। इस पृथ्वी पर तो उसके जो निशान हैं वह भौतिक निशान हैं, लेकिन वे स्थान न खो जायें इसलिए उन भौतिक निशानो की बडी सुरक्षा की गयी है। मन्दिर बनाये गये हैं उन जगहो पर, या पैरो के चिन्ह बनाये गये हैं उन जगहो पर, या बडी बडी मूर्तियाँ खडी की गयी हैं उन जगहो पर। और उन जगहो को हजारो वर्षों तक वैसा का वैसा बनाये रखने की चेष्टा की गयी है। इंच भर भी वह जगह न हिल जाय, जहाँ घटना घटी है कभी ! बडे बडे खजाने गडाये गये हैं, आज भी उनकी खोज चलती है। जैसे कि रूस के आखिरी जार का खजाना अमरीका में कही गडा है, जो पृथ्वी का सबसे बडा खजाना है और आज भी खोज चलती है। वह खजाना है, यह पक्का है, क्योकि १९१७ को घटे बहुत दिन नही हुए। उसका इंच इंच हिसाब भी रखा गया है कि वह कहाँ होगा। लेकिन डिकोड नही हो पा रहा है, वह जो हिसाब रखा गया है उसको समझा नही जा पा रहा है कि एक्जैक्ट जगह क्या है। जैसे कि ग्वालियर में एक खजाना ग्वालियर फेमिली का है, जिसका फेमिली के पास सारा का सारा हिसाब है, लेकिन फिर भी जगह नही पकडी जा रही है कि वह जगह कहाँ है। वह डिकोड नही हो रहा है। नक्शा है—पर इस तरह के सब नक्शे गुप्त भाषा में ही निर्मित किये जाते हैं, अन्यथा कोई भी डिकोड कर लेगा। सामान्य भाषा में वे नही लिखे जाते।

इन तीर्थों का भी पूरा का पूरा सूचन है। इसलिए जरूरी नही है वह ठीक वही स्थान हो जैसा कि आम लोग समझ लेते हैं। आम लोग गडबड न कर पायें इसलिए बडे उपाय किये जाते हैं। वह मैं आपको कहूँ तो बहुत हैरानी होगी। जैसे कही आप जाते हैं और आपसे कहा जाता है कि यह जगह है जहाँ महावीर निर्वाण को उपलब्ध हुए। बहुत संभावना तो यह है कि वह जगह नही होगी। उससे थोडी हटकर वह जगह होगी जहाँ उनका निर्वाण हुआ। उस जगह पर तो प्रवेश उनको ही मिल सकेगा जो सच मे ही पात्र हैं और उस यात्रा पर निकल सकते हैं। एक फाल्स जगह, एक झूठी जगह आम आदमी के लिए खडी की जायेगी, जहाँ तीर्थयात्री जाता रहेगा, नमस्कार करता रहेगा और लौटता रहेगा। असली जगह तो आम आदमी से बचाई जायेगी और उनको ही बतायी जायेगी जो सचमुच उस जगह आ गये हैं जहाँ से वह

सहायता लेने के योग्य हैं और उनको सहायता मिलनी चाहिए। ऐसी बहुत सी जगह हैं।

अरब में एक गाँव है जिसमें आज तक किसी सभ्य आदमी को प्रवेश नही मिल सका। आज तक, अभी भी ! चाँद पर आप प्रवेश कर गये, लेकिन छोटे-से गाँव अल्कुफा में आज तक किसी यात्री को प्रवेश नही मिल सका। सच तो यह है कि आज तक यह ठीक नही हो सका कि वह जगह कहाँ है ! और वह गाँव है, इसमें कोई शक-शुबहा नही, क्योकि हजारो साल से इतिहास उसकी खबर देता है। किताबें उसकी खबर देती हैं। उसके नक्शे हैं। वह गाँव बहुत प्रयोजन से छिपा कर रखा गया है। सूफियो मे जब कोई बहुत गहरी अवस्था मे होता है तभी उसको उस गाँव में प्रवेश मिलता है। उसकी सीक्रेट कुजी है। अल्कुफा के गाँव मे उसी सूफी को प्रवेश मिलता है जो ध्यान मे उसका रास्ता खोज लेता है, अन्यथा नही। फिर तो उसे कोई रोक भी नही सकता। अन्यथा कोई उपाय नही है। नक्शे हैं, सब तैयारी है लेकिन फिर भी उसका पता नही लगता है कि वह कहाँ है। एक अर्थ में नक्शे थोडे से झूठ हैं और भटकाने के लिए हैं। उन नक्शो को जो मान कर चलेगा वह अल्कुफा कभी नही पहुच पायेगा। इसलिए बहुत यात्री योरोप के पिछले तीन सौ वर्षो मे अल्कुफा को ढूँढने गये। उनमे से कुछ तो कभी लौटे नही, मर गये। जो लौटे वह कभी पहुचे नही। वह सिर्फ चक्कर मारकर वापस आ गये। सब तरह से कोशिश की जा चुकी है। पर उसकी कुँजी है। और वह कुँजी एक विशेष ध्यान है, उस विशेष ध्यान मे ही अल्कुफा पूरा का पूरा प्रगट होता है। तब वह ध्यानी सूफी उठता है और चल पडता है। जब इतनी योग्यता हो तभी उस गाँव में गति है। वह एक सीक्रेट तीर्थ है जो इस्लाम से बहुत पुराना है। लेकिन उसको गुप्त रखा गया है। इन तीर्थों मे भी जो जाहिर हैं, इन तीर्थों मे भी जो जाहिर दिखायी पडते हैं, वह असली तीर्थ नही है। असली तीर्थ कही आस-पास होते हैं।

जैसे एक मजेदार घटना घटी। विश्वनाथ के मन्दिर मे, काशी मे, जब विनोबा हरिजनो को लेकर प्रवेश कर गये, तो करपात्री ने कहा कि कोई हर्ज नही, हम दूसरा मदिर बना लेंगे, और दूसरा मदिर बनाना शुरू कर दिया। वह मदिर तो बेकार हो गया। साधारणत देखने मे विनोबा ज्यादा समझदार आदमी मालूम पडते हैं करपात्री से। असलियत ऐसी नही है। साधारणत देखने मे करपात्री निपट पुराण-पथी, नासमझ, आधुनिक जगत और ज्ञान से वचित मालूम पडते हैं। यह थोडी दूर तक सच है बात। लेकिन फिर भी जिस गहरी बात की वह ताईद कर रहे हैं उसके मामले मे वह ज्यादा जानकार हैं। सच बात यह है कि विश्वनाथ का यह मन्दिर भी असली नही है, और वह जो दूसरा बनायेंगे वह भी असली नही होगा। असली

मंदिर तो तीसरा है। लेकिन उसकी जानकारी सीधी नहीं दी जा सकती। असली मन्दिर को छिपा कर रखना पड़ेगा, नहीं तो कभी भी कोई धर्म सुधारक और समाज सुधारक उसको भ्रष्ट कर सकता है। अभी जो विश्वनाथ का मन्दिर है खड़ा हुआ, इसको तो नष्ट किया जा चुका है। इसमें कोई उपाय नहीं है, इसमें कोई कठिनाई भी नही है, चाहे नष्ट कर दो। वह जो दूसरा बनाया जा रहा है वह भी 'फाल्स' है। लेकिन एक फाल्स बनाये ही रखना पड़ेगा, ताकि असली पर नजर न जाय। और असली को सदा छिपाकर रखना पड़ेगा। विश्वनाथ के मंन्दिर में भी प्रवेश की कुंजियाँ हैं, जैसे अल्कुफा में प्रवेश की कुंजियाँ है जिसमें किसी गृहस्थ ने कभी प्रवेश नही पाया और कभी पा नही सकेगा। सभी सन्यासी भी उसमे प्रवेश नही पाते। कभी कोई सौभाग्यशाली सन्यासी उसमें प्रवेश पाता है। उसे सब भाँति छिपा कर रखा गया है। उसके मत्र है जिनके प्रयोग से उसका द्वार खुलेगा, नहीं तो द्वार नहीं खुलेगा। उसका बोध ही नही होगा, उसका ख्याल ही नही आयेगा। काशी में लोग जाकर इस फाल्स मन्दिर की पूजा, प्रार्थना करके वापस लौट आयेंगे। मगर इस मदिर की भी अपनी एक सेंक्टिटी बन गयी यह यद्यपि झूठा था, लेकिन फिर भी लाखो वर्षों से उसको सच्चा मानकर चला जा रहा था। उसमें भी एक तरह की पवित्रता आ गयी।

सारे धर्मों ने कोशिश की है कि उनके मदिर में या उनके तीर्थ मे दूसरे धर्म का व्यक्ति प्रवेश न करे। आज हमें बेहूदी लगती है यह बात। हम कहेंगे, इससे क्या मतलब ? लेकिन जिन्होने व्यवस्था की थी, उनके कुछ कारण थे। यह करीब करीब मामला ऐसा ही है जैसे कि एटामिक इनर्जी की एक लेबोरेटरी हो और उस पर यह लिखा हो कि यहाँ सिवाय एटामिक साइटिस्ट के कोई प्रवेश नही करेगा, तो हमें कोई कठिनाई नही होगी। हम कहेंगे, बिल्कुल ठीक है। बिल्कुल दुरुस्त है। खतरे से खाली नही है दूसरे आदमी का भीतर प्रवेश करना! लेकिन यही बात हम मदिर और तीर्थ के सम्बन्ध मे मानने को राजी नही हैं, क्योकि हमे यह ख्याल ही नही है कि मदिर और तीर्थ की अपनी साइस है। और वह मन्दिर या तीर्थ विशेष लोगो के प्रवेश के लिए है। इसे यो समझे कि एक आदमी बीमार पडा है और उसके चारो तरफ डाक्टर खडे होकर बात करते हैं। मरीज सुनता है, समझ कुछ नही पाता । क्योकि डाक्टर एक कोड लेंग्वेज मे बात कर रहे हैं। वह लैटिन या ग्रीक शब्दो का उपयोग कर रहे हैं। मरीज सब सुन रहा है, लेकिन समझ नही सकता। क्योकि मरीज के हित मे नही है कि वह उसे समझे। ठीक इसी भाँति सारे धर्मों ने अपनी कोड लेंग्वेज विकसित की थी। उन धर्मों के गुप्त तीर्थ थे, उनकी गुप्त भाषाएँ थी, उनके गुप्त शास्त्र थे। आज जिनको तीर्थ समझ रहे है उनमें भी बहुत कम संभावनाएँ है सही होने की।

वह जो सीक्रेट ट्रेडीशन है, उसे तो छिपाने की निरन्तर कोशिश की जाती है।

क्योंकि जैसे ही वह आम आदमी के हाथ में पड़ती है, उसके विकृत हो जाने का डर है। और आम आदमी उससे परेशान ही होगा, लाभ नहीं उठा सकता। जैसे सूफियों के गाँव अल्कुफा में अचानक आपको प्रवेश करवा दिया जाय, तो पागल हो जायेंगे। अल्कुफा की यह परम्परा है कि वहाँ अगर कोई आदमी आकस्मिक प्रवेश कर जाय तो पागल होकर लौटेगा। वह लौटेगा ही। इसमें किसी का कोई कसूर नहीं है। क्योंकि अल्कुफा इस तरह की पूरी की पूरी मनस्तरगों से निर्मित है कि आपका मन उनको झेल नहीं पायेगा। आप विक्षिप्त हो जायेंगे। उतनी सामर्थ्य और पात्रता के बिना उचित नहीं है कि वहाँ प्रवेश हो। अल्कुफा के बाबत कुछ बातें ख्याल में ले लें तो और तीर्थों का ख्याल भी थोड़ा आ जायगा आपको।

जैसे अल्कुफा में नींद असंभव है। कोई आदमी सो नहीं सकता। तो स्वाभाविक है कि आप पागल हो ही जायेंगे जब तक कि आपने जागरण का गहन प्रयोग न किया हो। इसलिए सूफी फकीर की सबसे बड़ी जो साधना है वह रात्रि जागरण है। वे रात भर जागते रहेंगे। यह बहुत सोचने जैसी बात है। एक आदमी नब्बे दिन तक खाना न खाये तो भी सिर्फ दुर्बल होगा, मर नहीं जायेगा। पागल नहीं हो जायेगा। साधारण स्वस्थ आदमी आसानी से नब्बे दिन, बिना खाना खाये रह सकता है। लेकिन साधारण स्वस्थ आदमी इक्कीस दिन भी बिना सोये नहीं रह सकता। वह तीन महीने बिना खाये रह सकता है, तीन सप्ताह बिना सोये नहीं रह सकता। तीन सप्ताह तो बहुत ज्यादा कह रहा हूँ, एक सप्ताह भी बिना सोये रहना कठिन मामला है। पर अल्कुफा में नींद असंभव है। एक बौद्ध भिक्षुक को सीलोन से किसी ने मेरे पास भेजा। तीन साल से नींद खो गयी थी उसकी, तो उसकी जो हालत हो सकती थी हो गयी। पूरे वक्त हाथ-पैर कपते रहते थे, पसीना छूटता रहता था और घबड़ाहट होती रहती थी। एक कदम भी उठाता था तो डरता था, भरोसा अपने ऊपर का सब खो गया था। नींद आती नहीं थी। बिल्कुल विक्षिप्त था और अजीब ही हालत थी। बहुत इलाज करवाया उसका कुछ फायदा हुआ नहीं, कोई ट्रैंकोलाइजर उसको सुला नहीं सकता था। गहरे से गहरे ट्रैंकोलाइजर दिये गये तो भी उसने कहा कि मैं बाहर से सुस्त होकर पड़ जाता हूँ लेकिन भीतर तो मुझे पता चलता ही रहता है कि मैं जगा हुआ हूँ। मैंने उसको कहा कि तुम्हें कभी नींद आयेगी नहीं, ट्रैंकोलाइजर से या और किसी उपाय से। तुम बुद्ध का अनापान सती योग तो नहीं कर रहे हो? क्योंकि बौद्ध भिक्षु के लिए वह अनिवार्य है। उसने कहा, वह तो मैं कर ही रहा हूँ। फिर मैंने कहा, अब तुम नींद का ख्याल छोड़ दो। अनापान सती योग का प्रयोग ऐसा है कि नींद खो जायेगी। मगर वह प्राथमिक प्रयोग है। और जब नींद खो जाय तब दूसरा प्रयोग तत्काल जोड़ा जाना चाहिए उसमें। अगर उसको ही करते रहोगे तो पागल हो जाओगे, मुश्किल में पड़ जाओगे। वह सिर्फ नींद हटाने

का प्रयोग है। एक दफा भीतर से नींद हट जाय तो आपके भीतर इतना फर्क पडता है चेतना में कि उस क्षण का उपयोग करके आगे गति की जा सकती है। तो मैंने पूछा, दूसरी प्रक्रिया तुझे मालूम है? उसने कहा, मुझे दूसरी किसी ने बतायी नही, बस अनापान सती किताब में लिखी हुई है, और सबको मालूम है। मगर खतरनाक है उसका किताब में लिखा जाना। क्योंकि उसको करके कोई भी आदमी नीद से वंचित हो सकता है। और जब नीद से वंचित हो जायेगा, तो दूसरी प्रक्रिया का कोई पता नहीं!

यही कारण था कि सदा बहुत सी चीजें गुप्त रखी गयी। गुप्त रखने का और कोई कारण नही था। किसी से छिपाने का कोई और कारण नही था। जिनको हम लाभ पहुँचाना चाहते हैं उनको नुकसान पहुँच जाय तो फिर कोई अर्थ नही रह जाता उसका। इसी भाँति तीर्थ जरूर हैं, पर वास्तविक तीर्थ छिपे हुए और गुप्त हैं। करीब करीब निकट हैं उन्ही तीर्थों के, जहाँ आपके 'फाल्स' तीर्थ खडे हुए हैं। और वह जो फाल्स तीर्थ है, वह जो झूठे तीर्थ हैं, धोखा देने के लिए खडे किये गये है। वह इसलिए कि ठीक स्थल पर कही गलत आदमी न पहुँच जाय। ठीक आदमी तो ठीक पहुँच ही जाता है। और हरेक तीर्थ की अपनी कुँजियाँ हैं। इसलिए अगर सूफियों का तीर्थ खोजना हो तो जैनियो के तीर्थ की कुँजी से नही खोजा जा सकता। अगर जैनियो का तीर्थ खोजना है तो सूफियो की कुँजी से नही खोजा जा सकता। सबकी अपनी कुँजियाँ हैं। उन कुंजियो का उपयोग करके तत्काल खोजा जा सकता है। मैं नाम नही लेता, किंतु किसी के तीर्थ की कुँजी आपको बताता हूँ।

एक विशेष यंत्र जैसे कि तिब्बतियो के होते हैं, जिसमे खास तरह की आकृतियाँ बनी होती हैं। वह यंत्र कुँजियाँ है। जैसे हिन्दुओ के पास भी यंत्र हैं, और हजार यंत्र हैं। आप घरो मे भी 'लाभ शुभ' बना कर कभी कभी आँकडे लिखकर यंत्र बना लेते हैं, बिना जाने कि किस लिए बना रहे हैं। क्यो लिख रहे हैं यह? आपको ख्याल भी नही हो सकता है कि आप अपने मकान मे एक ऐसा यंत्र बनाये हुए हैं जो किसी तीर्थ की कुँजी हो सकती है। मगर बाप-दादे आपके बनाते रहे थे इसलिए आप बनाये चले जा रहे हैं। एक विशेष आकृति पर ध्यान करने से आपकी चेतना विशेष आकृति लेती है। हर आकृति आपके भीतर चेतना को आकृति देती है। जैसे कि आप बहुत देर तक खिडकी पर आँख लगाकर देखते रहे, फिर आँख बन्द करे तो खिडकी का निगेटिव चौखटा आपकी आँख के भीतर बन जाता है। वह निगेटिव है। अगर किसी यंत्र पर आप ध्यान करें तो उसके ठीक उल्टा निगेटिव चौखटा और निगेटिव आँकडे आपके भीतर निर्मित होते हैं। वह, विशेष ध्यान के बाद आपको भीतर दिखायी पडना शुरू होता है। और जब वह दिखायी पडना शुरू हो जाय, तब विशेष आह्वान करने से तत्काल आपकी यात्रा शुरू हो जाती है।

नसरुद्दीन के जीवन में एक कहानी है। नसरुद्दीन का गधा खो गया है। वह उसकी संपत्ति है, उसका सब कुछ है। सारा गाँव खोज डाला, सारे गाँव के लोग खोज खोज कर परेशान हो गये, कहीं कोई पता नहीं चला। लोगों ने कहा, ऐसा मालूम होता है कि —यात्री निकल रहे हैं, तीर्थ का महीना है, गधा शायद इन्ही तीर्थयात्रियो के साथ निकल गया है। गाँव में तो नहीं है, गाँव के आसपास भी नही है, सब.जगह खोज डाला गया। नसरुद्दीन से लोगों ने कहा, अब तुम माफ करो, समझो कि खो गया। अब वह मिलेगा नहीं। नसरुद्दीन ने कहा कि मै आखिरी उपाय और कर लूं। वह खड़ा हो गया, आँख उसने बन्द कर ली। थोडी देर में वह झुक गया चारो हाथ-पैर से, और उसने चलना शुरू कर दिया। वह उस मकान का चक्कर लगाकर, उस बगीचे का चक्कर लगाकर उस जगह पहुँच गया जहाँ एक खड्डे में उसका गधा गिर पडा था। लोगो ने कहा, नसरुद्दीन हद्द कर दी तुम्हारी खोज ने! ये तरकीब क्या है? उसने कहा, मैंने सोचा कि जब आदमी नहीं खोज सका, तो मतलब यह है कि गधे की कुँजी आदमी के पास नहीं है। मैंने सोचा कि मै गधा बन जाऊँ। तो मैंने अपने मन में सिर्फ यही भावना की कि मैं गधा हो गया। अगर मै गधा होता तो खोजने कहाँ जाता? फिर कब मेरे हाथ झुककर जमीन पर लग गये, और कब मै गधे की तरह चलने लगा, मुझे कुछ पता नहीं। कैसे मै चलकर वहाँ पहुँच गया, वह मुझे पता नही। जब मैंने आँख खोली तो मैंने देखा, मेरा गधा खड्डे में पड़ा हुआ है।

नसरुद्दीन तो एक सूफी फकीर है। यह कहानी कोई भी पढ़ लेगा और मजाक समझकर छोड देगा। लेकिन एक 'की' है इस छोटी सी कहानी में। इसमें एक 'कुजी' है खोज की। खोजने का एक ढग वह भी है। और आत्मिक अर्थों मे तो ढग वही है। तो प्रत्येक तीर्थ कुँजियाँ है, यत्र है। तीर्थों का पहला प्रयोजन यह है कि आपको उस आविष्ठ धारा में खड़ा कर दें जहाँ धारा बह रही हो और आप उसमे बह जायें।

दूसरी बात, मनुष्य के जीवन मे जो भी है वह सब पदार्थ से निर्मित है, सिर्फ उसकी आतरिक चेतना को छोडकर। लेकिन आतरिक चेतना का तो आपको कोई पता नही है। पता तो आपको सिर्फ शरीर का है। और शरीर के सारे सबध पदार्थ से है। थोडी सी अल्केमी समझ लें तो तीर्थ का दूसरा अर्थ ख्याल में आ जाय।

अल्केमिस्ट की प्रक्रियाएँ है, वह सब गहरी धर्म की प्रक्रियाएँ है। अब अल्केमिस्ट कहते हैं कि अगर पानी को एक बार भाप बनाया जाय फिर पानी बनाया जाय, फिर भाप बनाया जाय उसको, फिर पानी बनाया जाय,—ऐसा एक हजार बार किया जाय तो उस पानी में विशेष गुण आ जाते है जो साधारण पानी में नही है। इस बात को पहले मजाक समझा जाता था। क्योंकि इससे क्या फर्क पडेगा? आप एक

दफा पानी को डिस्टिल्ड कर लें, फिर दुबारा उस पानी को भाप बनाकर फिर डिस्टिल्ड कर लें, फिर तीसरी बार कर लें, फिर चौथी बार कर लें। इससे फर्क क्या पड़ेगा, पानी डिस्टिल्ड ही रहेगा। लेकिन अब विज्ञान ने स्वीकार किया है कि इसमें क्वालिटी बदलती है। एक हजार बार उपयोग करने पर उस पानी में विशिष्टता आ जाती है। वह कहाँ से आती है यह अब तक साफ नहीं है। लेकिन वह पानी विशेष हो जाता है। लाख बार भी उसको करने के प्रयोग हैं और तब वह और विशेष हो जाता है। आदमी के शरीर में हैरान होंगे जानकर आप, कि पचहत्तर प्रतिशत पानी है। थोड़ा बहुत नहीं, पचहत्तर प्रतिशत ! उस पानी का केमिकल ढंग वही है, जो समुद्र के पानी का है। इसलिए नमक के बिना आप मुश्किल में पड़ जाते हैं। आपके शरीर के भीतर जो पानी है उसमें नमक की मात्रा उतनी ही होनी चाहिए जितनी समुद्र के पानी में है। अगर इस पानी की व्यवस्था को भीतर बदला जा सके तो आपकी चेतना की व्यवस्था को बदलने में सुविधा होती है। तो लाख बार डिस्टिल्ड किया हुआ पानी अगर आपको पिलाया जा सके तो आपके भीतर बहुत सी वृत्तियों में एकदम परिवर्तन होगा। यह अल्केमिस्ट हजारों प्रयोग ऐसे कर रहे थे। एक लाख दफा पानी को डिस्टिल्ड करने में सालों लग जाते हैं और एक आदमी चौबीस घण्टे यही काम कर रहा था। इसके दोहरे परिणाम होते हैं। एक तो उस आदमी का चंचल मन ठहर जाता था क्योंकि यह ऐसा काम था, जिसमें चंचल होने का कोई उपाय नहीं था। रोज सुबह से साँझ तक वह यही कर रहा था। थक के मर जाता था, दिन भर उसने किया क्या ? हाथ में कुल इतना है कि पानी को उसने पच्चीस दफा डिस्टिल्ड कर दिया। वर्षों बीत जाते, वह आदमी पानी ही डिस्टिल्ड करता रहता। हमें सोचने में कठिनाई होगी, क्योंकि थोड़े दिन में हम ऊब जायेंगे। ऊबेंगे तो हम बन्द कर देंगे। यह मजे कि बात है कि जहाँ भी ऊब आ जाय वही टर्निंग प्वाइंट होता है। अगर आपने बन्द कर दिया तो आप अपनी पुरानी स्थिति में लौट जाते हैं, और अगर जारी रखा तो आप नयी चेतना को जन्म दे लेते हैं। जैसे रात को आपको नींद आती है। रोज आप दस बजे सोते हैं, दस बजे नींद आने लगेगी। अगर आप टिक जायँ दस बजे और सोने से मना कर दें, तो आप पायेंगे कि आधा घण्टे में होना तो यह चाहिए था कि नींद और जोर से आती, लेकिन आधा घण्टे में यह होगा कि अचानक आप पायेंगे कि सुबह से भी ज्यादा फ्रेश हो गये हैं। और अब नींद आना मुश्किल हो जायेगा। वह टर्निंग प्वाइंट था, जहाँ से आप अपनी स्थिति में वापस गिर सकते थे, अगर सो गये होते तो। लेकिन आपने कंटीन्यु रखा। आपने भीतर की व्यवस्था तोड़ दी। तो शरीर से नयी शक्ति वापस आ गयी। शरीर ने देख लिया कि आप सोने की तैयारी नहीं दिखा रहे हैं, जागना ही पड़ेगा। तो शरीर के पास जो रिजर्वायर है, जहाँ वह शक्ति सरक्षित रखता है, जरूरत के वक्त के लिए, वह

उसने छोड दी और आप ताजे हो गये। इतनेताजे जितने आप सुबह भी नहीं होते।

अब एक आदमी ऊब गया है, एक हजार दफे पानी को बदल चुका है। कहते हैं, उसका गुरु कह रहा है, लाख दफे बदलना है चाहे दस साल लगें, पन्द्रह साल लगें, कि कितने साल लगें। वह ऊब गया है, लेकिन बदले चला जा रहा है, बदले चला जा रहा है। एक घडी आयेगी, जब कि उसे ऐसा लगेगा कि अब अगर मैंने एक दफा और बदला तो मैं गिर कर मर ही जाऊँगा। अब बहुत हो गया। इसको अब मैं न सह सकूँगा, लेकिन उसका गुरु कह रहा है कि अभी भी बदले जाओ। और वह बदलता ही चला जाता है, लौटता नहीं है। यह पानी तो इधर परिवर्तित हो ही रहा है, उसकी चेतना भीतर परिवर्तित होती है। और फिर इस विशिष्ट पानी के प्रयोग से चेतना में परिणाम होते हैं। जैसे गगा का पानी, —अभी तक साफ नही हो सका है वैज्ञानिक को कि कैसे उसमें बहुत सी विशेषताएँ हैं, जो दुनिया की किसी नदी के पानी मे नही है। माना कि दुनिया की नदियो के पानी में न हो, लेकिन ठीक गगा की बगल से भी जो नदियाँ निकलती हैं उनके पानी में भी नही हैं। ठीक उसी पहाड से जो नदी निकलती है उसके पानी में भी नही । एक ही बादल दोनो नदियो में पानी गिराता है और एक ही पहाड का बर्फ पिघलकर दोनो नदियो में जाता है, फिर भी उस पानी मे वह क्वालिटी नही है जो गगा के पानी में है।

अब इस बात को सिद्ध करना मुश्किल होगा। कुछ बाते हैं जिनको सिद्ध करना एकदम मुश्किल है। लेकिन पूरी की पूरी गगा अल्केमिस्ट का प्रयोग है, पूरी गगा! इसको सिद्ध करना मुश्किल होगा, मैं आपसे कहता हूँ। लेकिन पूरी की पूरी गगा साधारण नदी नही है। पूरी की पूरी गगा को अल्केमिकली तैयार करने की चेष्टा की गयी है। और इसलिए हिन्दुओ ने सारे तीर्थ अपने, गगा के किनारे निर्मित किये। एक महान प्रयोग था गगा को एक विशिष्टता देने का, जो कि दुनिया की किसी नदी मे नही है। अब तो केमिस्ट भी राजी हैं कि गगा का पानी विशेष है। किसी नदी का पानी रख ले, सड जायेगा, गगा का पानी वर्षों नही सडेगा। सडेगा ही नही, सडता ही नही। इसलिए गगा-जल आप मजे मे रख सकते हैं। उसके पास आप दूसरी किसी बोतल में पानी भरके रख दें, वह पन्द्रह दिन मे सड जायेगा। पर गगा जल अपनी पवित्रता और शुद्धता को पूरा कायम रखेगा। किसी जल भी में, आप लाशें डाल दें, वह नदी गदी हो जायेगी। गगा कितनी ही लाशो को हजम कर जायेगी और कभी गन्दी नही होगी। एक और हैरानी की बात है कि हड्डी साधारणत गलती नही, पर गगा में गल जाती है। गगा पूरा पचा डालती है, कुछ भी नही बचता उसमें। सभी लीन हो जाता है पच तत्व में। इसलिए गगा में फेंकने का

काश को, आग्रह बना। क्योकि बाकी सब जगह से पूरे पच तत्वो में लीन होने में सैकडो, हजारो और कभी लाखो वर्ष लग जाते हैं। गगा का समस्त तत्वो में वापस लौटा देने के लिए बिल्कुल केमिकल काम है। वह निर्मित इसलिए की गयी, वह पूरी की पूरी नदी साधारण पहाड से बही हुई नदी नही है। बहाई गयी नदी है। पर वह हमारे ख्याल मे नही आ सकता। और गगोत्री बहुत छोटी-सी जगह है, जहाँ से गगा बहती है। बडे मजे की बात यह है कि जहाँ गगोत्री को यात्री नमस्कार करके लौट आते हैं, वह फाल्स गगोत्री है। वह सही गगोत्री नही है। सही को सदा बचाना पडता है। वह सिर्फ शो है, वह सिर्फ दिखावा है जहाँ से यात्री को लौटा दिया जाता है, और यात्री नमस्कार करके लौट आता है। सही गगोत्री को तो हजारो साल से बचाया गया है। और इस तरह निर्मित किया गया है कि वहाँ साधारणत पहुँचना सभव नही है। सिर्फ एस्ट्रल ट्रावेलिंग हो सकती है सही गगोत्री पर, सशरीर पहुँ-चना सभव नही है।

जैसा मैंने कहा कि सूफियो का अल्कुफा है। इसमे सशरीर पहुँचा जा सकता है। इसलिए कभी कोई भूल-चूक से पहुँच सकता है। यानी चाहे कोई खोजने वाला न पहुँच सके, क्योकि खोजने वाले को आप धोखा दे सकते हैं, गलत नकशे पकडा सकते हैं। लेकिन जो खोजने नही निकला है, अकारण पहुँच जाय तो उसको आप नही धोखा दे सकते। वह पहुँच सकता है। लेकिन गगोत्री पर पहुँचने के लिए, सिर्फ सूक्ष्म शरीर मे ही पहुँचा जा सकता है, इस शरीर में से नही पहुँचा जा सकता। इस तरह का सारा इन्तजाम है। गगोत्री का दर्शन सशरीर कभी नही हो सकता। वह एस्ट्रल ट्रावलिंग है। ध्यान में इस शरीर को यही छोडकर यात्रा की जा सकती है। और जब कोई गगोत्री को देख ले, एस्ट्रल ट्रावेलिंग मे, तब उसको पता चले कि इस गगा का पूरा राज़ क्या है? इसलिए मैंने कहा कि सिद्ध नही किया जा सकता, क्योकि सिद्ध करने का कोई उपाय नही है। जिस जगह से वह गगा बह रही है वह जगह बहुत ही विशिष्ट रूप से निर्मित है। और वहाँ से जो पानी प्रवाहित हो रहा है वह अल्केमिकल है। उस अल्केमिकल धारा के दोनो तरफ हिन्दुओ ने अपने तीर्थ खडे किये।

आप यह जानकर हैरान होगे कि हिन्दुओ के सब तीर्थ नदी के किनारे हैं और जैनो के सब तीर्थ पहाडो पर हैं। जैन उस पहाड पर ही तीर्थ बनायेंगे जो कि बिल्कुल रूखा हो। जिस पर हरियाली भी न हो। हरियाली वाले पहाड पर वह न चढेगे। हिमालय जैसा बढिया पहाड जैनो ने बिल्कुल छोड दिया। अगर पहाड ही चुनना था तो हिमालय से बेहतर कुछ भी न था। पर हिमालय को बिल्कुल छोड दिया। उन्हे सूखा पहाड चाहिए, खुला पहाड चाहिए, कम से कम हरियाली हो,

कम से कम पानी हो, क्योंकि जैन जिस अल्केमी के प्रयोग कर रहे थे वह अल्केमी शरीर के भीतर जो अग्नि तत्व है, उससे सबंधित है। और हिन्दू जो प्रयोग कर रहे थे वह अल्केमी शरीर के भीतर जो पानी तत्व है, उससे सबंधित है। दोनो की अपनी कुंजियाँ है, और अलग हैं। हिन्दू तो सोच ही नहीं सकता कि नदी के बिना, कैसे तीर्थ हो सकता है ? नदी के बिना तीर्थ होने का कोई अर्थ हिन्दुओ की समझ में नहीं आ सकता। हरियाली और सौंदर्य, और इन सबके बिना तीर्थ हो सकना, उसकी समझ के बाहर की बात है। वह जिस तत्व पर काम कर रहा था, वह जल है। इसलिये उसके सब तीर्थ जल आधारित है, जल से निर्मित हैं। जैन जो मेहनत कर रहा था उसका मूल तत्व अग्नि है, इसलिए तप पर बहुत जोर है। इधर हिन्दू शास्त्र और हिन्दू साधु का जोर बहुत भिन्न है। हिन्दू साधना का सूत्र यह है कि सन्यासी को, योगी को दूध, घी, दही, इनकी पर्याप्त मात्रा का उपयोग करना चाहिए। ताकि भीतर आर्द्रतार हे। सूखापन न आ जाय, भीतर सूखापन आ जायेगा तो उनकी 'की' काम नही कर सकेगी। वह आर्द्र रहे। जैन की सारी की सारी चेष्टा यह है कि भीतर सब सूख जाय, आर्द्रता रहे हो नहीं। इसलिए अगर जैन मुनि ने स्नान भी बन्द कर दिया, तो उसके कारण हैं। उतना भी पानी का उपयोग नहीं करना है। अब आज वह सिवाय गन्दगी के कुछ नहीं दिखायी पड़ेगा। यह जैन मुनि भी नहीं बता सकता कि वह किस लिए नही नहा रहा है ? काहे के लिए परेशान है वह बिना नहाये, या क्यो चोरी से स्पंज कर रहा है ? लेकिन जल में उनकी 'की' नही है, उनकी कुंजी नही है। पंच महाभूतो मे उनकी कुंजी है—वह है तप, वह है अग्नि। तो सब तरफ से भीतर अग्नि को जगाना है। ऊपर से पानी डाला तो उस अग्नि को जगाने में बाधा पड़ेगी। इसलिए सूखे पहाड पर जहाँ हरियाली नहीं, पानी नही, जहाँ सब तप्त है, वहाँ जैन साधक खड़ा है। वह धीरे धीरे पत्थरो में ही खड़ा रहेगा। जहाँ सब बाहर भी सूखा हुआ है।

दुनिया में सब जगह उपवास हैं लेकिन सिर्फ जैनो को छोडकर उपवास मे पानी लेने की मनाही कोई नही करेगा। सब दुनिया के उपवास में, सब चीजें बन्द कर दो, पानी जारी रखो। सिर्फ जैन है, जो उपवास में पानी का भी निषेध करेंगे, कि पानी भी नही ! साधारण गृहस्थ के लिए भी कहेंगे कि और नही हो सकता तो कम से कम रात का पानी त्याग कर दो। साधारण गृहस्थ यही समझता है कि रात्रि का पानी इसलिए त्याग करवाया जा रहा है कि कहीं पानी में कोई कीडा-मकोडा न मिल जाय, कोई फर्क न हो जाय। पर उससे कोई लेना-देना नहीं। असल में अग्नितत्व की कुंजी के लिए तैयारी करवायी जा रही है। और बड़े मजे की बात है कि अगर पानी कम लिया जाय,—अगर कम से कम, न्यूनतम, जितना महावीर की चेष्टा है उतना पानी लिया जाय, तो ब्रह्मचर्य के लिए अनूठी सहायता मिलती है। क्योकि वीर्य

सूखना शुरू हो जाता है। और अतर अग्नि के जलाने के, जो इसके सयुक्त प्रयोग हैं वह बिल्कुल सुखा डालते हैं। जरा सी भी आर्द्रता वीर्य को प्रवाहित करती है। यह उनकी कुंजी है। जैनो ने सारे के सारे अपने तीर्थों का निर्माण नदियो से दूर किया। फिर नकल में कुछ पीछे के तीर्थ खड़े कर लिये, उनका कोई प्रयोजन नही है, वह अथेंटिक नही है।

जैन अथेंटिक तीर्थ पहाड पर होगा। हिन्दू अथेंटिक तीर्थ नदी के किनारे होगा, हरियाली में होगा, सुन्दर जगह होगा। जैन जो भी पहाड चुनेंगे वह कई हिसाब से कुरूप होगा, क्योंकि पहाड का सौंदर्य उसकी हरियाली के साथ खो जाता है। वे स्नान नहीं करेंगे, दतुअन नही करेंगे। इतना कम पानी का उपयोग करना है कि दतुअन भी नही करेंगे। अगर यह पूरी बात समझ ली जाय उनकी, तो फिर उनके जो सूत्र हैं वह कारगर होंगे, नही तो नही कारगर होंगे। उन सूत्रो की साधना से भीतर की अग्नि भडकती है, और भीतर की अग्नि के भडकाने का यह निगेटिव उपाय है कि पानी का सतुलन तोड दिया जाय। इन सारे तत्वो का, भीतर एक बैलेंस है। इस मात्रा में भीतर पानी, इस मात्रा में अग्नि, इन सबका बैलेंस है। अगर आपको एक तत्व से यात्रा करनी है तो बैलेंस तोड देना पडेगा और विपरीत से तोडना पडेगा। तो जो भी अग्नि पर मेहनत करेगा वह पानी का दुश्मन हो जायेगा। क्योंकि पानी जितना कम हो जाय उसके भीतर, उतना उस अग्नि का सचार हो जाय।

गगा एक अल्केमिक प्रयोग है, एक बहुत गहरा रासायनिक प्रयोग है। इसमें स्नान करके व्यक्ति तीर्थ मे प्रवेश करेगा। इसमें स्नान के साथ ही उसके शरीर के भीतर के पानी का जो तत्व है वह रूपातरित होता है। वह रूपातरण थोडी देर ही टिकेगा। लेकिन उस थोडी देर मे, अगर ठीक प्रयोग किये जायँ तो गति शुरू हो जायेगी। रूपांतरण तो थोडी देर मे विदा हो जायेगा लेकिन गति शुरू हो जायेगी। और ध्यान रहे, जिसने एक बार गगा के पानी को ही पीकर जीना शुरू कर दिया, वह फिर दूसरा पानी नही पी सकेगा। फिर बहुत कठिनाई हो जायगी। क्योंकि दूसरा पानी फिर उसके लिए हजार तरह की अडचनें पैदा करेगा। और भी बहुत जगह इस तरह गगा जैसी गगा पैदा करने की कोशिशें की गयी लेकिन कोई भी सफल नही हुई। बहुत नदियो में प्रयोग किये है, वह सफल नही हो सके। क्योंकि पूरी कुंजियाँ खो गयी हैं। लोगो को थोडा ख्याल भले ही होगा कि क्या किया गया होगा। पर मैं नही जानता, कितने लोगो को ख्याल है। शायद ही दो-चार आदमी हो, जिनको ख्याल हो कि अल्केमी का इतना बडा प्रयोग हो सकता है।

गगा में स्नान, तत्काल प्रार्थना या पूजा, या मदिर में प्रवेश, या तीर्थ मे प्रवेश, यह पदार्थ का उपयोग है अन्तर-यात्रा के लिए। सब तीर्थ बहुत ख्याल से बनाये गये

हैं। अब जैसे कि मिस्र में पिरामिड हैं; वे मिस्र में पुरानी खो गयी सभ्यता के तीर्थ हैं। और एक बडी मजे की बात है कि इन पिरामिड्स के अन्दर। पिरामिड जब बने तब, वैज्ञानिको का ख्याल है, उस काल में इलेक्ट्रिसिटी हो नही सकती। आदमी के पास बिजली नही हो सकती। बिजली का आविष्कार उस वक्त कहाँ? कोई दस हजार वर्ष पुराना पिरामिड है, कोई बीस हजार वर्ष पुराना पिरामिड है। तब बिजली का तो कोई उपाय नही था। और इनके अन्दर इतना अन्धेरा है कि उस अंधेरे मे जाने का कोई उपाय नहीं। अनुमान यह लगाया जा सकता है कि लोग मशाल ले जाते हो, या दिये ले जाते हो। लेकिन धुएँ का एक भी निशान नही है इतने पिरामिड्स में कही। इसलिए बडी मुश्किल है। एक छोटा-सा दिया घर में जला-इए तो पता चल जाता है। अगर लोग मशालें भीतर ले गये हो तो इन पत्थरों पर कही न कही धुएँ के निशान तो होनें चाहिए। रास्ते इतने लंबे, इतने मोड़ वाले हैं, और गहन अंधकार है! तो दो ही उपाय हैं, या तो हम मानें कि बिजली रही होगी, लेकिन बिजली की किसी तरह की फिटिंग का कही कोई निशान नही है। बिजली पहुँचाने का कुछ तो इन्तजाम होना चाहिए। दूसरा, आदमी सोच सकता है—तेल, घी के दियो या मशालों का। पर उन सबसे किसी न किसी तरह के धुएँ के निशान पडते हैं, जो कही भी नही हैं। फिर, उनके भीतर आदमी कैसे जाता रहा है? कोई कहे—नही जाता रहा होगा, तो इतने रास्ते बनाने की कोई जरूरत नही है। पर सीढियाँ हैं, रास्ते हैं, द्वार हैं, दरवाजे हैं। अन्दर चलने-फिरने का बडा इन्तजाम है। एक एक पिरामिड मे बहुत से लोग प्रवेश कर सकते है। बैठने के स्थान हैं अन्दर। यह सब किसलिए होगे? यह पहेली बनी रह गयी है, और साफ नही हो पायेगी कभी भी। क्योंकि पिरामिड की समझ नहीं है साफ, कि ये किसलिए बनाये गये हैं? लोग समझते हैं, किसी सम्राट का फितूर होगा, कुछ और होगा। लेकिन ये तीर्थ हैं। और इन पिरामिड्स में प्रवेश का सूत्र ही यही है कि जब कोई अन्तर-अग्नि पर ठीक से प्रयोग करता है तो उसका शरीर आभा फेंकने लगता है। और तब वह अंधेरे में प्रवेश कर सकता है। तो, न तो यहाँ बिजली उपयोग की गयी है, न यहाँ कभी दिये उपयोग किये गये हैं, न कभी मशाल उपयोग की गयी है, सिर्फ शरीर की दीप्ति उप-योग की गयी है। लेकिन वह शरीर की दीप्ति अग्नि के विशेष प्रयोग से ही होती है। इनमें प्रवेश ही वही करेगा, जो इस अंधकार में मजे से चल सके। वह उसकी कसौटी भी है, परीक्षा भी है, और उसको प्रवेश का हक भी है। वह हकदार भी है।

जब पहली दफा १९०५ या १० में एक एक पिरामिड खोजा जा रहा था, तो जो वैज्ञानिक उस पर काम कर रहा था उसका सहयोगी अचानक खो गया। बहुत तलाश की गयी, कुछ पता न चला। यही डर हुआ कि वह किसी गलियारे में, अन्दर है। बहुत प्रकाश और सर्चलाइट ले जाकर खोजा। वह कोई चौबीस घण्टे खोया

रहा। चौबीस घण्टे बाद, कोई रात दो बजे वह भागा हुआ आया करीब करीब पागल हालत में। उसने कहा, मैं टटोल कर अन्दर जा रहा था। कहीं मुझे दरवाजा मालूम पडा, मैं अन्दर गया और फिर ऐसा लगा कि पीछे कोई चीज बन्द हो गयी। मैंने लौटकर देखा तो दरवाजा तो बन्द हो चुका था। अब मैं आया तब खुला था, पर दरवाजा भी नही था कोई, सिर्फ खुला था। जब मैं अन्दर गया तो जैसे कोई चट्टान सरक कर बन्द हो गयी। फिर मैं बहुत चिल्लाया, लेकिन कोई उपाय नही था। फिर इसके सिवाय कोई उपाय नही था कि मैं और आगे चला जाऊँ, और मैं ऐसी अद्भुत चीजें देखकर लौटा हूँ, जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। वह इतनी देर गुम रहा, यह पक्का है, वह इतना परेशान लौटा है, यह पक्का है, लेकिन जो बातें वह कह रहा है वह भरोसे की नही हैं, कि ऐसी चीजें होगी। बहुत खोज-बीन की गयी उस दरवाजे की, लेकिन दरवाजा दुबारा नही मिल सका। न तो वह यह बता पाया कि कहाँ से प्रवेश किया, न वह यह बता पाया कि वह कहाँ से निकला। तो समझा गया कि या तो वह बेहोश हो गया, या उसने कही सपना देखा, या वह कही सो गया। और कुछ समझने का चारा नही था। लेकिन जो चीजें उसने कही थी वह सब नोट कर ली गयीं, —उस साइकिक अवस्था में, स्वप्नवत अवस्था में जो जो उसने वहाँ देखी। फिर खुदाई में कुछ पुस्तकें मिली जिनमें उन चीजो का वर्णन भी मिला, तब बहुत मुसीबत हो गयी। उस वर्णन से लगा कि वह चीजें किसी कमरे मे वहाँ बन्द हैं, लेकिन उस कमरे का द्वार किसी विशेष मनोदशा में खुलता है। अब इस बात की सम्भावना है कि वह एक सांयोगिक घटना थी कि इसकी मनोदशा वैसी रही हो। क्योंकि इसे तो कुछ पता नही था, लेकिन द्वार खुला अवश्य।

तो जिन गुप्त तीर्थों की मैं बात कर रहा हूँ उनके द्वार हैं, उन तक पहुँचने की व्यवस्थाएँ हैं, लेकिन उन सबके आतरिक सूत्र हैं। इन तीर्थों मे ऐसा सारा इन्तजाम है कि जिनका उपयोग करके चेतना गतिमान हो सके। जैसे कि पिरामिड्स के सारे कमरे, उनका आयतन एक हिसाब में है। कभी आपने ख्याल किया, कही छप्पर बहुत नीचा हो, यद्यपि आपके सिर को नहीं छू रहा हो, और यही छप्पर थोडा सरक कर नीचे आने लगे। हम को दबायेगा नही, हम से अभी दो फीट ऊँचा है, लेकिन हमे भास होगा कि हमारे भीतर कोई चीज दबने लगी। जब नीचे छप्पर मे आप प्रवेश करते हैं, तो आपके भीतर कोई चीज सिकुडती है। और आप जब एक बडे छप्पर के नीचे प्रवेश करते हैं तो आपके भीतर कोई चीज फैलती है। कमरे का आयतन इस ढग से निर्मित किया जा सकता है, ठीक उतना किया जा सकता है जितने में आपको ध्यान आसान हो जाय। सरलतम हो जाय ध्यान आपको, उतना आयतन निर्मित किया जा सकता है, उतना आयतन खोज लिया गया था। उस आयतन का उपयोग किया जा सकता है आपके भीतर सिकुडने और फैलने के लिए। उस कमरे

के भीतर रंग, उस कमरे के भीतर गंध, उस कमरे के भीतर ध्वनि इन सबका इन्त-जाम किया जा सकता है जो आपके ध्यान के लिए सहयोगी हो जाय।

सब तीर्थों का अपना संगीत था। सच तो यह है कि सब संगीत, तीर्थों में पैदा हुए। और सब संगीत साधकों ने पैदा किये। सब संगीत किसी दिन मन्दिर में पैदा हुए, सब नृत्य किसी दिन मन्दिर में पैदा हुए। सब सुगंध पहली दफा मन्दिर में उपयोग की गयी। एक दफा जब यह बात पता चल गयी कि संगीत के माध्यम से कोई व्यक्ति परमात्मा की तरफ जा सकता है, तो संगीत के माध्यम से परमात्मा के विपरीत भी जा सकता है, यह भी ख्याल में आ गया। और तब बाहर दूसरे संगीत खोजे गये। किसी गंध से जब कि परमात्मा की तरफ जाया जा सकता है, तो विपरीत किसी गंध से कामुकता की तरफ जाया जा सकता है, वे गंधें भी खोज ली गयीं। किसी विशेष आयतन में ध्यानस्थ हो सकता है तो किसी विशेष आयतन में ध्यान से रोका जा सकता है। वह भी खोज लिया गया। जैसे अभी चीन में ब्रेन वाश के लिए जहाँ कैदियों को खडा करते हैं, उस कोठरी का एक विशेष आयतन है। उस विशेष आयतन में ही खडा करते हैं। और उन्होंने अनुभव किया कि उस आयतन में कमी-बेशी करने से ब्रेन वाश करने में मुसीबत पडती है। एक निश्चित आय-तन, हजारों प्रयोग करके तय हो गया कि इतनी ऊँची, इतनी चौडी, इतने आयतन की कोठरी में कैदी को खडा कर दो तो कितनी देर में डिटीरीओरेशन हो जायेगा, कितनी देर में खो देगा वह अपने दिमाग को। फिर उसमें एक विशेष ध्वनि भी पैदा करो तो और जल्दी खो देगा। खास जगह उसके मस्तिष्क पर हेमरिंग करो तो और जल्दी खो देगा। वे कुछ नहीं करते, एक मटका ऊपर रख देते है और एक एक बूँद पानी उसकी खोपडी पर टपकता रहता है। उसकी अपनी लय है, रिदिम है। बस टिप-टिप टिप-टिप, वह पानी सिर पर टपकता रहता है। चौबीस घण्टे वह आदमी खडा है, बैठ भी नहीं सकता, हिल भी नहीं सकता, आयतन इतना है कोठरी का। वह खडा रहेगा और मस्तिष्क में वह टिप-टिप पानी गिरता रहेगा। आधा घण्टा पूरे होते होते, तीस मिनट पूरे होते होते सिवाय टिप-टिप की आवाज के कुछ नहीं बचेगा और तब आवाज इतनी जोर से मालूम होने लगेगी, जैसे पहाड गिर रहा हो। अकेली आवाज रह जायेगी उस आयतन में और चौबीस घण्टे में वह आपके दिमाग को अस्त-व्यस्त कर देगी। चौबीस घण्टे के बाद जब आपको बाहर निकालेंगे तो आप वही आदमी नहीं होंगे। उन्होंने आपको सब तरह से तोड दिया होगा।

ये सारे के सारे प्रयोग पहली दफा तीर्थों में खोजे गये, मन्दिरों में खोजे गये, जहाँ से आदमी को सहायता पहुँचायी जा सके। मन्दिर के घण्टे हैं, मंदिर की ध्वनियाँ हैं, धूप है, गन्ध है, फूल है, सब नियोजित था। और एक तारतम्य रखने की कोशिश

की गयी। उसकी कटीन्युटी न टूटे, बीच में कही कोई व्यवधान न पड़े, अहर्निश धारा उसकी जारी रखी जाती रही। जैसे सुबह इतने वक्त आरती होगी, इतनी देर चलेगी, इस मन्त्र के साथ होगी, दोपहर आरती होगी, इतनी देर चलेगी, इस मन्त्र के साथ होगी। सांझ आरती होगी, इतनी देर होगी, इस मन्त्र के साथ चलेगी। यह क्रम ध्वनियों का उस कोठरी में गूँजता रहेगा। पहला क्रम टूटे, उसके पहले दूसरा रिप्लेस हो जाये। ये हजारो साल तक चलेगा। जैसा मैंने कहा, पानी को अगर लाख दफा पुन पुन पानी बनाया जाय भाप बनाकर, तो जैसे उसकी क्वालिटी बदलती है अल्केमी के हिसाब से, उसी प्रकार एक ध्वनि को लाखो दफा पैदा किया जाय एक कमरे मे, तो उस कमरे की पूरी तरग, पूरी गुणवत्ता बदल जाती है। उसकी पूरी क्वालिटी बदल जाती है। उसके बीच व्यक्ति को खडा कर देना, उसके पास खडा कर देना, उसके रूपातरित होने के लिए आसानी जुटा देगा, और चूँकि हमारा सारा का सारा व्यक्तित्व पदार्थ से निर्मित है—पदार्थ में जो भी फर्क होते हैं वह हमारे व्यक्तित्व को बदलने लगते हैं। आदमी इतना बाहर है कि पहले बाहर से ही फर्क उसको आसान पडते हैं, भीतर के फर्क तो पहले बहुत कठिन पडते हैं। दूसरा उपाय था पदार्थ के द्वारा सारी ऐसी व्यवस्था दे देना कि आपके शरीर को जो जो सहयोगी हो, वह हो जाय।

तीसरी बात एक और थी। यह हमारा भ्रम ही है आमतौर से कि हम अलग अलग व्यक्ति हैं,— यह बडा थोथा भ्रम है। यहाँ हम इतने लोग बैठे हैं, अगर हम शान्त होकर बैठें तो यहाँ इतने लोग नही रह जाते, एक ही व्यक्तित्व रह जाता है। एक शाति का व्यक्तित्व रह जाता है। और हम सब की चेतनाएँ एक दूसरे मे तरगित और प्रवाहित होने लगती हैं। तीर्थ 'मास एक्सपेरीमेन्ट' है। एक वर्ष में विशेष दिन, करोड़ो लोग एक तीर्थ पर इकट्ठे हो जायेंगे, एक ही आकाक्षा, एक ही अभीप्सा से सैकडो मील की यात्रा करके आ जायेंगे। वे सब एक विशेष घडी में, एक विशेष तारे के साथ, एक विशेष नक्षत्र में एक जगह इकट्ठे हो जाते हैं। इसमें पहली बात समझ लेने की यह है, कि यह करोडो लोग इकट्ठा होकर एक अभीप्सा, एक आकाक्षा, एक प्रार्थना से, एक धुन करते हुए आ गये हैं, यह एक पूल बन गया है चेतना का। अब यहाँ व्यक्ति नही है। अगर कुम्भ मे देखें तो व्यक्ति दिखायी नही पडता। वहाँ भीड है, निपट भीड, जहाँ कोई चेहरा नही है। चेहरा बचेगा कहाँ इतनी भीड में? फेसलेस एक करोड आदमी इकट्ठा हैं। कौन, कौन है? अब कोई अर्थ नही रह गया जानने का। कौन राजा है, कौन रक है? अब कोई मतलब नही रह गया। कौन अमीर है, कौन गरीब है? कोई मतलब नही रहा, यानी सब फेसलेस हो गया। अब यहाँ इन सबकी चेतनाएँ एक दूसरे के भीतर प्रवाहित होनी शुरू होगी। अगर एक करोड लोगो की चेतना का पूल बन सके, एक इकट्ठा रूप बन जाय, तो इस चेतना के भीतर

परमात्मा का प्रवेश जितना आसान है उतना आसान एक-एक व्यक्ति के भीतर नहीं है।

नीत्से ने कहीं लिखा है' वह सुबह एक बगीचे में गुजर रहा है। एक छोटे से कीड़े पर उसका पैर लग जाता है, तो वह कीडा जल्दी से सिकुडकर गोल घुंडी बनाकर बैठ जाता है। नीत्से बडा हैरान हुआ। उसने कई दफा यह बात देखी है कि कीड़ों को जरा चोट लग जाय तो वह तत्काल सिकुड़ के क्यो बैठ जाते हैं ? उसने अपनी डायरी में लिखा कि बहुत सोचकर मुझे ख्याल में आया कि वह अपना काण्टेक्ट फील्ड कम कर लेते हैं। बचाव का ज्यादा उपाय हो जाता है। कीडा पूरा लम्बा है, तो उस पर कही पैर पड सकता है, क्योंकि ज्यादा जगह वह घेर रहा है। वह जल्दी से छोटी जगह में सिकुड गया, अब उस पर पैर पडने की सम्भावना अनुपात में कम हो गयी। वह सुरक्षा कर रहा है अपनी, वह अपना काण्टेक्ट फील्ड छोटा कर रहा है। और जो कीडा जितनी जल्दी यह काण्टेक्ट फील्ड छोटा कर लेता है वह उतना बचाव कर लेता है।

आदमी की चेतना जितना बडा काण्टेक्ट फील्ड निर्मित करती है, परमात्मा का अवतरण उतना आसान हो जाता है। क्योंकि वह इतनी बडी घटना है! एक बडी घटना के लिए, हम जितनी बडी जगह बना सके उतनी उपयोगी है। इन्डीवीजुअल प्रेयर, व्यक्तिगत प्रार्थना तो बहुत बाद में पैदा हुई, प्रार्थना का मूलरूप तो समूहगत है। वैयक्तिक प्रार्थना तो तब पैदा हुई जब एक एक आदमी को भारी अहंकार पकडना शुरू हो गया। किसी के साथ पूलअप होना मुश्किल हो गया कि किसी के साथ हम एक हो सके। इसलिए जबसे इन्डीवीजुअल प्रेयर दुनिया में शुरू हुई तब से प्रेयर का फायदा खो गया। असल में प्रेयर इन्डीवीजुअल नही हो सकती। हम इतनी बडी शक्ति का आह्वान कर रहे हैं—तो हम जितना बडा क्षेत्र दे सके उसके अवतरण के लिए, उतना ही सुगम होगा। तीर्थ इस रूप में एक बड़े क्षेत्र को निर्मित करते हैं। फिर खास घडी में करते हैं, खास नक्षत्र मे करते हैं, खास दिन पर करते हैं, खास वर्ष मे करते है। वह सब सुनिश्चित विधियाँ थी। इसका अर्थ यह कि उस नक्षत्र मे, उस घडी मे पहले भी काण्टेक्ट हुआ है। और जीवन की सारी व्यवस्था पीरियोडिकल है, इसे भी समझ लेना चाहिए।

जीवन की सारी व्यवस्था कैसे पीरियोडिकल है ? जैसे कि वर्षा आती है, एक खास दिन पर आ जाती है। और अगर आज नही आती है खास दिन पर, तो उसका कारण यह है कि हमने छेडछाड की है। अन्यथा दिन बिल्कुल तय है, घडी तय है। गर्मी आती है खास वक्त, सर्दी आती है खास वक्त, वसन्त आता है खास वक्त। सब बँधा है। शरीर भी बिल्कुल वैसा ही काम करता है। स्त्रियो का मासिक धर्म है, ठीक

चाँद के साथ चलता रहता है। ठीक अट्ठाइस दिन में उसे लौट आना चाहिए, अगर बिल्कुल ठीक है, शरीर स्वस्थ है। वह चाँद के साथ यात्रा करता है। वह अट्ठाइस दिन में नही लौटता तो क्रम टूट गया है व्यक्तित्व का, भीतर कही कोई गडबड हो गयी है।

सारी घटनाएँ एक क्रम मे आवर्तित होती हैं। अगर किसी एक घडी में परमात्मा का अवतरण हो गया, तो उस घडी को हम अगले वर्ष के लिए फिर नोट कर सकते हैं। अब समावना उस घडी की बढ़ गयी, वह घडी ज्यादा पोटेंशियल हो गयी। उस घडी में परमात्मा की धारा पुनर्प्रवाहित हो सकती है। इसलिए पुन पुन उस घडी में तीर्थ पर लोग इकट्ठे होते रहेंगे, सैकडो वर्षों तक। अगर यह कई बार हो चुका तो यह घडी सुनिश्चित होती जायेगी। वह बिल्कुल तय हो जायेगी। जैसे कि कुम्भ के मेले पर गगा मे कौन पहले उतरे, वह भारी दगे का कारण होता है। क्योकि इतने लोग इकट्ठे नही उतर सकते एक घडी में, और वह घड़ी तो बहुत सुनिश्चित है, बहुत बारीक है। उसमें कौन उतरे, उस पहली घडी में ? जिन्होंने वह घडी खोजी है या जिनकी परम्परा और जिनकी धारा मे उस घडी का पहले अवतरण हुआ है, वह उसके मालिक हैं। वह उस घडी में पहले उतर जायेंगे। और कभी कभी क्षण का फर्क हो जाता है। (परमात्मा का अवतरण करीब करीब बिजली की कौंध जैसा है। कौंधा, और खो गया। उस क्षण में आप खुले रहे, जगे रहे तो घटना घट जाय। उस क्षण मे आँख बन्द हो गयी, सोये रहे तो घटना खो जाय।) तीर्थ का तीसरा महत्व था मास एक्सपेरीमेंट, समूह प्रयोग। अधिकतम विराट पैमाने पर उस अनन्त शक्ति को उतारा जा सके। और जब लोग सरल थे तो यह घटना बडी आसानी से घटती थी। उन दिनो तीर्थ बडे सार्थक थे। तीर्थ से कभी कोई खाली नही लौटता था। इसलिए तो आज भी खाली लौट आने पर आदमी फिर दोबारा चला जाता है। उन दिनो तो ट्रासफार्म होकर लौटता ही था। पर वह बहुत सरल और इनोसेंट समाज की घटनाये हैं। क्योकि जितना सरल समाज हो, जहाँ व्यक्तित्व का बोध जितना कम हो, वहाँ तीर्थ का यह तीसरा प्रयोग काम करेगा, अन्यथा नही करेगा। आज भी अगर आदिवासियो मे जाये तो पायेंगे कि उनमे व्यक्तित्व का बोध नही है। मैं का ख्याल कम है, हम का ख्याल ज्यादा है। कुछ तो भाषाएँ हैं ऐसी जिनमे 'मैं' नही है, 'हम' ही है। आदिवासी कबीलो की ढेर भाषाएँ हैं जिनमे 'मैं' शब्द नही है। आदिवासी बोलता है, तो बोलता है 'हम'। ऐसा नही है कि भाषा ऐसी है, वहाँ मैं का कन्सेप्ट ही पैदा नही हुआ। और वह इतना जुडा हुआ है आपस मे कि कई दफा तो बहुत अनूठे परिणाम उसके निकले हैं।

सिगापुर के पास एक छोटे से द्वीप पर जब पहली दफा पश्चिमी लोगो ने हमला

किया तो वह बड़े हैरान हुए। जो चीफ था, जो प्रमुख था कबीले का, वह आया किनारे पर, और जो हमलावर थे उनसे उसने कहा कि हम निहत्थे लोग जरूर हैं, पर हम परतन्त्र नही हो सकते। पश्चिमी लोगो ने कहा कि वह तो होना ही पड़ेगा। उन कबीले वालो ने कहा, हमारे पास लडाई का उपाय तो कुछ नही है, लेकिन हम मरना जानते है। हम मर जायेंगे। उन्हे भरोसा नही आया कि कोई ऐसे कैसे मरता है? लेकिन बडी अद्भुत घटना है। ऐतिहासिक घटनाओ में एक घटना घट गयी। जब वे राजी नही हुए और उन्होने कदम रख दिये, द्वीप पर उतर गये, तो पूरा कबीला इकट्ठा हुआ। कोई पाँच सौ लोग तट पर इकट्ठे हुए और वह देखकर दग रहे गये कि उनका प्रमुख पहले मर कर गिर गया, और फिर दूसरे लोग मर कर गिरने लगे। मर के गिरने लगे बिना किसी हथियार की चोट के। शत्रु घबरा गये, वापस लौट गये, यह देख कर। पहले तो उन्होने समझा कि लोग डर के ऐसे ही गिर गये होगे, लेकिन देखा, वह तो खत्म ही हो गये। अभी तक साफ नही हो सका कि यह क्या घटना घटी? असल में 'हम' की कासेसनेस अगर बहुत ज्यादा हो तो मृत्यु ऐसी सक्रामक हो सकती है। एक के मरते ही, फैल सकती है। कई जानवर मर जाते है ऐसे। भेडें मर जाती हैं। एक भेड मरी, कि मरना फैल जाता है। भेड के पास 'मैं' का बोध बहुत कम है, 'हम' का बोध है। भेडो को चलते हुए देखें तो मालूम पड़ेगा कि 'हम' चल रहा है। सब सटी हुई हैं एक दूसरे से। एक ही जीवन जैसे सरकता हो। एक भेड मरी, तो दूसरी भेड को मरने जैसा हो जायेगा। मृत्यु फैल जायेगी भीतर। तो जब समाज बहुत 'हम' के बोध से भरा था और 'मैं' का बोध बहुत कम था, तब तीर्थ बडा कारगर था। उसकी उपयोगिता उसी मात्रा मे कम हो जायेगी, जिस मात्रा मे 'मैं' का बोध बढ जायेगा।।

आखिरी बात जो तीर्थ के बाबत ख्याल मे लेनी चाहिये, वह यह कि सिम्बालिक ऐक्ट का, प्रतीकात्मक कृत्य का भारी मूल्य है। जैसे जीसस के पास कोई आता है और कहता है, मैंने यह यह पाप किये। वह जीसस के सामने कन्फेस कर देता है, सब बता देता है, मैंने यह पाप किये, मैंने यह पाप किये। जीसस सिर पर हाथ रखकर कह देते है कि जा तुझे माफ किया। अब इस आदमी ने पाप किये हैं, जीसस के कहने से माफ कैसे हो जायेंगे? जीसस कौन हैं, और उनके हाथ रखने से माफ हो जायेंगे? जिस आदमी ने खून किया, उसका क्या होगा? या हमने कहा, आदमी पाप करे और गगा मे स्नान कर ले, मुक्त हो जायेगा। बिल्कुल पागलपन मालूम हो रहा है। जिसने हत्या की है, चोरी की है, बेईमानी की है, गगा में स्नान करके मुक्त कैसे हो जायेगा? यहाँ दो बातें समझ लेनी जरूरी है। एक तो यह, कि पाप असली घटना नही है, स्मृति असली घटना है—'मेमोरी'। पाप नही, ऐक्ट नही, असली घटना जो आपमें चिपकी रह जाती है, वह स्मृति है। आपने हत्या की है,

यह उतना बड़ा सवाल नहीं है आखिर में। आपने हत्या की है, यह स्मृति काँटे की तरह पीछा करेगी। जो जानते हैं वह तो जानते हैं कि हत्या की है या नहीं, वह नाटक का हिस्सा है, उसका कोई बहुत मूल्य नहीं है। न कभी मरता है कोई, न कभी मार सकता है कोई। मगर यह स्मृति आपका पीछा करेगी कि मैंने हत्या की, मैंने चोरी की। यह पीछा करेगी, और यह पत्थर की तरह आपकी छाती पर पड़ी रहेगी। वह कृत्य हो गया, अनन्त में खो गया। वह कृत्य तो अनन्त ने सम्हाल लिया। सच तो यह है, सब कृत्य अनन्त के हैं, आप नाहक उसमे परेशान हैं। कभी चोरी भी हुई आपसे, तो भी अनन्त के ही द्वारा आपसे हुई है। हत्या भी हुई है तो भी अनन्त के द्वारा आपसे हुई है। आप नाहक बीच में अपनी स्मृति लेकर खड़े हैं कि मैंने किया। अब यह 'मैंने किया', यह स्मृति आपकी छाती पर बोझ है। क्राइस्ट कहते हैं तुम कन्फेस कर दो, मैं तुम्हें माफ किये देता हूँ। और जो क्राइस्ट पर भरोसा करता है वह पवित्र होकर लौटेगा। असल मे क्राइस्ट पाप से तो मुक्त नही कर सकते, लेकिन स्मृति से मुक्त कर सकते हैं। स्मृति ही असली सवाल है। गगा पाप से मुक्त नही कर सकती, लेकिन स्मृति से मुक्त कर सकती है। अगर कोई भरोसा लेकर गया है कि गगा में डुबकी लगाने से सारे पाप से बाहर हो जाऊँगा, और ऐसा अगर उसके चित्त में है, उसकी कलेक्टिव अनकांसेस में है, उसके समाज की करोड़ो वर्ष की धारणा है कि गगा में डुबकी लगाने से पाप से छुटकारा हो जायेगा तो निश्चित ही हो जायगा। पाप से छुटकारा नहीं होगा वैसे, क्योंकि चोरी को अब कुछ और नही किया जा सकता, हत्या जो हो गयी हो गयी, लेकिन यह व्यक्ति पानी के बाहर जब निकला तो सिम्बालिक एक्ट हो गया।

क्राइस्ट कितने दिन दुनिया में रहेंगे, कितने पापियो से मिलेंगे, कितने पापी कन्फेस कर पायेंगे? इस के लिए हिन्दुओ ने ज्यादा स्थायी व्यवस्था खोजी है। व्यक्ति से नही बाँधा, एक नदी से बाँधा। यह नदी कन्फेशन लेती रहेगी। वह नदी माफ करती रहेगी। ये अनत तक रहेंगी, और ये धाराएँ स्थायी हो जायेंगी। क्राइस्ट कितने दिन रहेंगे? मुश्किल से क्राइस्ट तीन साल काम कर पाये, कुल तीन साल। तीस से लेकर तैंतीस साल की उम्र तक, तीन साल मे कितने पापी कन्फेस करेंगे? कितने पापी उनके पास आयेंगे? कितने लोगो के सिर पर हाथ रखेंगे? यहाँ के मनीषियो ने व्यक्ति से नही बाँधा, धारा से बाँध दिया।

तीर्थ है, वहाँ जायेगा कोई वह मुक्त होकर लौटेगा, तो स्मृति से मुक्त होगा, स्मृति ही तो बन्धन है। वह स्वप्न जो आपने देखा आपका पीछा कर रहा है। असली सवाल वही है और निश्चित ही उससे छुटकारा हो सकता है। लेकिन उस छुटकारे में दो बातें जरूरी हैं। बड़ी बात तो यह जरूरी है कि आपकी ऐसी निष्ठा हो कि मुक्ति

हो जायेगी। और आपकी निष्ठा कैसे होगी ? आपकी निष्ठा तभी होगी जब आपको ऐसा ख्याल हो कि लाखों वर्ष से ऐसा यहाँ होता रहा है। और कोई उपाय नहीं है। इसलिए कुछ तीर्थ तो बिल्कुल सनातन हैं। जैसे काशी, वह सनातन है। सच बात यह है, पृथ्वी पर कोई ऐसा समय नहीं रहा जब काशी तीर्थ नहीं थी। वह एक अर्थ में सनातन है, बिल्कुल सनातन है। यह आदमी का पुराने से पुराना तीर्थ है। उसका मूल्य बढ़ जाता है। क्योंकि उतनी बड़ी धारा, सजेशन है। यहाँ कितने लोग मुक्त हुए, यहाँ कितने लोग शांत हुए हैं, यहाँ कितने लोगो ने पवित्रता को अनुभव किया है, यहाँ कितने लोगो के पाप झड गये,—वह एक लम्बी धारा है। वह सुझाव गहरा होता चला जाता है। वह सरल चित्त में जाकर निष्ठा बन जायेगी। वह निष्ठा बन जाय तो तीर्थ कारगर हो जाता है। वह निष्ठा न बन पाये तो तीर्थ बेकार हो जाता है। तीर्थ आपके बिना कुछ नहीं कर सकता। आपका कोआपरेशन चाहिए। लेकिन आप भी कोआपरेशन तभी देते हैं कि जब तीर्थ की एक धारा हो, एक इतिहास हो।

हिन्दू कहते हैं, काशी इस जमीन का हिस्सा नहीं है, इस पृथ्वी का हिस्सा नहीं है, वह अलग ही टुकडा है। वह शिव की नगरी अलग ही है, वह सनातन है। सब नगर बनेंगे, बिगडेंगे, काशी बनी रहेगी, इसलिए कई दफा हैरानी होती है। व्यक्ति तो खो जाते हैं—बुद्ध काशी आये, जैनो के तीर्थंकर काशी में पैदा हुए, खो गये। काशी ने सब देखा—शंकराचार्य आये, खो गये। कबीर बसे, खो गये। काशी ने तीर्थंकर देखे, अवतार देखे, संत देखे, सब खो गये। उनका तो कही कोई निशान नही रह जायगा, लेकिन काशी बनी रहेगी। वह उन सबकी पवित्रता को, उन सारे लोगो के पुण्य को, उन सारे लोगो की जीवन धारा को, उनकी सब सुगन्ध को आत्मसात कर लेती है और बनी रहती है। यह जो स्थिति है, यह निश्चित ही पृथ्वी से अलग हो जाती है,— मेटाफरीकली। यह इसका अपना एक शाश्वत रूप हो गया, इस नगरी का अपना व्यक्तित्व हो गया। इस नगरी पर से बुद्ध गुजरे, इसकी गलियो में बैठ कर कबीर ने चर्चा की है। वह सब कहानी हो गयी, वह सब स्वप्न हो गया। पर यह नगरी उन सबको आत्मसात किये है। और अगर कभी कोई निष्ठा से इस नगरी में प्रवेश करे तो वह फिर से बुद्ध को चलता हुआ देख सकता है, वह फिर से पार्श्वनाथ को गुजरते हुए देख सकता है। वह फिर से देखेगा तुलसीदास को, वह फिर से देखेगा कबीर को। अगर कोई निष्ठा से इस काशी के निकट आय, तो यह काशी साधारण नगरी न रह जायेगी लन्दन या बम्बई जैसी। एक असाधारण चिन्मय रूप ले लेगी, और इसकी चिन्मयता बड़ी शाश्वत है, बडी पुरातन है। इतिहास खो जाते हैं। सभ्यताएँ बनती और बिगड़ती हैं, आती हैं और चली जाती हैं, और यह अपनी एक अन्त धारा को सजोये हुए चलती है। इसके रास्ते पर खड़ा होना, इसके

घाट पर स्नान करना, इसमें बैठकर ध्यान करने के प्रयोजन हैं। आप भी हिस्सा हो गये हैं एक अंतःधारा के। (यह भरोसा कि मैं ही सब कुछ कर लूँगा, खतरनाक है। प्रभु का सहारा लिया जा सकता है, अनेक रूपो में। उसके तीर्थ में, उसके मन्दिरो में उसका सहारा लिया जा सकता है। सहारे के लिए वह सारा आयोजन है) यह कुछ बातें जो ठीक से समझ में आ सकें, वह मैंने कहीं। पर यह पर्याप्त नही है। बहुत सी बातें हैं तीर्थ के साथ, जो समझ में नहीं आ सकेंगी, पर घटित होती हैं। जिनको बुद्धि साफ साफ नहीं दिखा पायेगी, जिनका गणित नही बताया जा सकेगा, लेकिन घटित होती हैं।

दो-तीन बातें सिर्फ उल्लेख कर दूं जो घटित होती हैं। जैसे कि आप कही भी जाकर एकात में बैठ कर साधना करे तो बहुत कम सभावना है कि आपको अपने आस-पास किन्ही आत्माओ की उपस्थिति का अनुभव हो, लेकिन तीर्थ में करे तो बहुत जोर से होगा। कही भी करे वह अनुभव नही होगा। लेकिन तीर्थ में आपको प्रेजेंस मालूम पड़ेगी। थोडी बहुत नही, बहुत गहन। कभी इतनी गहन हो जाती है कि आप स्वय मालूम पड़ेंगे कि कम हैं, और दूसरे की प्रेजेंस ज्यादा है। जैसे कि कैलाश—कैलाश हिन्दुओ का भी तीर्थ रहा है और तिब्बती बौद्धो का भी। पर कैलाश बिल्कुल निर्जन है। वहाँ कोई आवास नही है। कोई पुजारी नही है, कोई पण्डा नही है, कोई प्रगट आवास नही है कैलाश पर। लेकिन जो भी कैलाश पर जाकर ध्यान का प्रयोग करेगा वह कैलाश को पूरी तरह बसा हुआ पायेगा। जैसे ही कैलाश पर पहुँचेगा, अगर थोडी भी ध्यान की क्षमता है तो कैलाश से कभी वह खबर लेकर नहीं लौटेगा कि वह निर्जन है। इतना सघन बसा है, इतने लोग हैं और इतने अद्भुत लोग हैं। ऐसे कोई बिना ध्यान के कैलाश जायेगा, तो कैलाश खाली है।

चाँद के सम्बन्ध में जो लोग और तरह से खोज करते हैं, उनका ख्याल नही है कि चाँद निर्जन है। और जिन्होने कैलाश का अनुभव किया है वे कभी नहीं मानेंगे कि चाँद निर्जन है। लेकिन आपके यात्री को चाँद पर कोई नही मिलेगा। जरूरी नही है इससे कि कोई न हो, पर आपके यात्री को नही मिलेगा। जैनो के ग्रन्थो में बहुत वर्णन है कि चाँद में किस किस तरह के देवता हैं, कि क्या है, पर अब वे बडी मुश्किल मे पड गये हैं। जब पाया गया कि वहाँ कोई नही है। उनके साधु-सन्यासी बडी मुश्किल में हैं। वे बेचारे एक ही उपाय कर सकते हैं, उन्हे कुछ और तो पता नहीं है, वह यह कह सकते हैं कि तुम असली चाँद पर पहुँचे ही नही। वह इसके सिवाय और क्या कहेंगे? अभी गुजरात में कोई मुझे कह रहा था कि कोई जैन मुनि पैसा इकट्ठा कर रहे हैं यह सिद्ध करने के लिए कि तुम असली चाँद पर नहीं पहुँचे। ये वे कभी सिद्ध न कर पायेंगे। आदमी असली चाँद पर पहुँच गया है। लेकिन उनकी

कठिनाई है कि उनकी किताब में लिखा है कि वहाँ आवास है ! वहाँ इस इस तरह के देवता रहते हैं ! उनकी किताब में लिखा है, उनको खुद को तो कुछ पता नहीं। किताब तो आवास का कहती है और अब वैज्ञानिक की रिपोर्ट है कि वहाँ कोई भी नहीं है। अब क्या करना है ? तो साधारण बुद्धि जो कर सकती, वह यह है, कि वे लोग चाँद पर नहीं पहुँचे। क्योंकि अगर नहीं सिद्ध कर पाये तो यह मानना पड़ेगा कि हमारा शास्त्र गलत हुआ। तो वे जिद बाँध रखेंगे कि नहीं, तुम उस जगह नहीं पहुँचे। एक जैन मुनि ने तो दावे से यह कहा कि कोई वहाँ पहुँचा ही नहीं। अब इन्कार भी नहीं कर सकते, पहुँचे तो जरूर हैं, तो फिर कहाँ पहुँचे गये हैं ? कभी कभी तो हास्यास्पद, रिडीकुलस हो जाती है बात ! उन्होंने कहा, कि वहाँ देवताओं के जो विमान ठहरे रहते हैं चारो तरफ, आप किसी विमान पर उतर गये। वह बड़े विराट विमान हैं। उसी पर उतर कर आप लौट आये हैं, आप ठीक चाँद की भूमि पर नहीं उतर सके। यह सब पागलपन है, लेकिन इस पागलपन के पीछे कुछ कारण है। वह कारण यह है कि एक धारा है, कोई अन्दाजन बीस हजार वर्ष से जैनो की धारा है कि चाँद पर आवास है। पर वह उनके ख्याल में नही है कि वह आवास किस तरह का है ? वह आवास कैलाश जैसा आवास है, वह आवास तीर्थों जैसा आवास है। जब आप तीर्थ पर आयेंगे तो एक तीर्थ वह काशी है जो दिखायी पड़ती हैं। जहाँ आप ट्रेन पर से उतर जायेंगे स्टेशन से, एक तो काशी वह है। परन्तु काशी के दो रूप हैं—तीर्थ के दो रूप हैं। एक तो मृण्मय रूप है, वह जो दिखायी पड रहा है, जहाँ कोई भी आयेगा सैलानी और घूम कर लौट आयेगा। और एक उसका चिन्मय रूप है, जहाँ वही पहुँच पायेगा जो अतरस्थ होगा, जो ध्यान में प्रवेश करेगा, तो उसके लिये काशी बिल्कुल और हो जायेगी। उधर काशी के सौंदर्य का इतना वर्णन है, और इस काशी को देखो तो फिर लगता है कि वह कवि की कल्पना है। इससे ज्यादा गन्दी कोई बस्ती नही है, यह काशी जिसको हम देखकर आ जाते हैं। पर किस काशी की बातें कर रहे हो तुम ? किस काशी की बात हो रही है, किस काशी के सौंदर्य की जो अपूर्व है, जैसा कोई नजर नहीं आया है इस जगत में। यह सब तुम किसकी बात कर रहे हो ? यही काशी अगर है, तब फिर यह सब कवि कल्पना हो गयी। नहीं, पर वह काशी भी है। और एक कोन्टेक्ट फील्ड है यह काशी, यहाँ उस काशी और इस काशी का मिलन होता है। जो यात्री सिर्फ ट्रेन में बैठकर गया है, वह इस काशी से वापस लौट कर आ जायेगा। वह जो ध्यान में बैठकर गया है वह उस काशी से भी सपर्क साध पाता है। तब इसी काशी के निर्जन घाट पर उनसे भी मिलना हो जाता है जिनसे मिलने की आपको कभी कोई कल्पना नहीं होती।

मैंने अभी बताया, कैलाश पर अलौकिक निवास है। करीब करीब नियमित रूप से, नियम कैलाश का रहा है कि कम से कम पाँच सौ बौद्ध-सिद्ध वहाँ रहें ही, उससे

कम नहीं। पाँच सौ बुद्धत्व को प्राप्त व्यक्ति कैलास पर रहेंगे ही। और जब भी एक उनमें से विदा होगा किसी और यात्रा पर, तो दूसरा जबतक न हो तब तक वह विदा नहीं हो सकता। पाँच सौ की संख्या वहाँ पूरी रहेगी। उन पाँच सौ की मौजूदगी कैलाश को तीर्थ बनाती है, लेकिन यह बुद्धि से समझने की बात नहीं है इसलिए मैंने पीछे छोड़ रखी। काशी का भी नियमित आंकड़ा है कि उसमें सत वहाँ रहेंगे ही। उनमें कमी कभी नहीं होगी। उनमें से एक को विदा तभी मिलेगी जब दूसरा उस जगह स्थापित हो जायेगा। असली तीर्थ वही हैं, और उनसे जब मिलन होता है तो तीर्थ में प्रवेश करते हैं। पर उनके मिलन का कोई भौतिक स्थल भी चाहिए। आप उनको कहाँ खोजते फिरेंगे। उस अशरीरी घटना को आप न खोज सकेंगे, इसलिए भौतिक स्थल चाहिए। जहाँ बैठकर आप ध्यान कर सकें और उस अन्तर्जगत में प्रवेश कर सकें, वहाँ संबंध सुनिश्चित है।

सीधे बुद्धि से ख्याल में नहीं आयेगा, बुद्धि से कोई सम्बन्ध नहीं है तीर्थ का। ठीक तीर्थ का अर्थ, जो दिखायी पड़ जाता है वह नहीं है। छिपा है, उसी स्थान पर छिपा है। दूसरी बात, इस जमीन पर जब भी कोई व्यक्ति परम ज्ञान को उपलब्ध होकर विदा होता है तो उसकी करुणा उसे कुछ चिन्ह छोड़ देने को कहती है। क्योंकि जिनको उसने रास्ता बताया, जो उसकी बात मानकर चले, जिन्होंने संघर्ष किया, जिन्होंने श्रम उठाया, उनमें से बहुत से ऐसे होंगे जो अभी नहीं पहुँच पाये। उनके पास कुछ संकेत तो चाहिए, जिनसे कभी भी जरूरत पड़ने पर वह संपर्क पुनः साध सकें। इस जगत में कोई आत्मा कभी खोती नहीं, पर शरीर तो खो जाते हैं। तो उन आत्माओं से संपर्क साधने के लिए सूत्र चाहिए। उन सूत्रों के लिए तीर्थों ने ठीक वैसे ही काम किया जैसे कि आज हमारे राडार काम करते हैं। जहाँ तक आँखें नहीं पहुँचतीं वहाँ तक राडार पहुँच जाते हैं। जो आँखों से कभी नहीं देखे गये तारे, वह राडार देख लेते हैं। तीर्थ बिल्कुल आध्यात्मिक राडार का इन्तजाम है। जो हमसे छूट गये, जिनसे हम छूट गये, उनसे संबंध स्थापित किये जा सकते हैं। इसलिए प्रत्येक तीर्थ निर्मित किया गया उन लोगों के द्वारा, जो अपने पीछे कुछ लोग छोड़ गये हैं जो अभी रास्ते पर हैं। जो पहुँच नहीं गये, और जो अभी भटक सकते हैं। और जिन्हें बार बार जरूरत पड़जायेगी कि वह कुछ पूछ ले, कुछ जान लें, कुछ आवश्यक हो जाय। थोड़ी जानकारी उन्हें भटका दे सकती है। क्योंकि भविष्य उन्हें बिल्कुल ज्ञात नहीं है, आगे का रास्ता उन्हें बिल्कुल पता नहीं है। तो उन सबने सूत्र छोड़े हैं, और सूत्रों को छोड़ने के लिए विशेष तरह की व्यवस्थाएँ की हैं—तीर्थ खड़े किये, मन्दिर खड़े किये, मंत्र निर्मित किये, मूर्तियाँ बनायी, सब आयोजन किया। और सबका आयोजन एक सुनिश्चित प्रक्रिया है। जिसे हम 'रिचुअल' कहते हैं, वह एक सुनिश्चित प्रक्रिया है।

अगर एक जंगली आदिवासी को हम ले आयें और वह आकर देखे कि जब भी प्रकाश करना होता है तो आप अपनी कुर्सी से उठते हैं, दस कदम चलकर बायी दीवाल के पास पहुँचते हैं, वहाँ एक बटन को दबाते हैं, और बिजली जल जाती है। वह आदिवासी किसी भी तरह न सोच पायेगा कि इस बटन में और इस दीवाल के भीतर इस बिजली के बल्ब से कोई तार जुडा हुआ है। उसके सोचने का कोई उपाय नही है। उसे यह रिचुअल एक मालूम पडेगा कि यह कोई तरकीब है। यहाँ से उठना, ठीक जगह पर दीवाल पर जाना फिर नम्बर एक का बटन दबाना। नम्बर दो का दबाते है तो पखा घूमने लगता है, नम्बर तीन का दबाते हैं तो रेडियो बोलने लगता है। वह देखता है कि उसी खास दीवाल के कोने मे जाकर आप कुछ तरकीब करते हैं और वहाँ से कुछ होता है। उसे यह सब रिचुअल मालूम पडेगा। एक क्रिया-काण्ड लगेगा। और समझ ले किसी दिन आप नही हैं घर में और बिजली चली गयी है। वह आदमी उठा और उसने जाकर पूरा रिचुअल किया, लेकिन बिजली नही जली, पखा नहीं चला, रेडियो नही चला। अब वह यही समझेगा कि रिचुअल में कोई भूल हो गयी है। अपने क्रिया-काण्ड में कोई भूल हो रही है, शायद अपन ने ठीक कदम न उठाये। कौन से कदम से पहले वह आदमी गया था। पता नही, अदर अदर कोई मत्र भी पढ़ता हो मन में, और बटन दबाता हो। क्योकि हमने बटन वही दबाया है और बिजली नही जल रही है। उस आदिवासी को तो बिजली के पूरे फैलाव का कोई अन्दाजा नही हो सकता।

करीब करीब धर्म के सम्बन्ध में ऐसा ही है। जिनको भी हम धर्म के क्रिया-काण्ड कहते हैं, वह सब हमारे द्वारा पकड लिये गये ऊपरी कृत्य हैं। जो बिल्कुल कुछ नही जानते भीतरी व्यवस्था को, उनको हम पूरा भी कर लेते हैं, फिर पाते हैं, कुछ नही हो रहा है। या कभी हो जाता है, कभी नही होता। तो हम बडी मुश्किल मे पडते हैं। कभी हो जाता है, इससे शक होता है कि शायद होता होगा। फिर कभी नही होता तो फिर ये शक होता है कि शायद सयोग से हो गया हो। क्योकि अगर होना चाहिए तो हमेशा होना चाहिए। हमे भीतरी व्यवस्था का कोई भी पता नही है। जिस चीज को आप नही जानते उसको ऊपर से देखने पर वह रिचुअल मालूम पड़ेगी। ऐसा छोटे-मोटे आदमियो के साथ होता हो ऐसा नही, जिनको हम बहुत बुद्धिमान कहते है उनके साथ भी यही होगा, क्योकि बुद्धि ही बचकानी चीज है। बड़े से बडा बुद्धिमान भी एक अर्थ मे जुवनाइल है, बचकाना ही होता है। क्योकि बुद्धि कोई बहुत गहरे ले जाने वाली नही है।

जब पहली दफा ग्रामोफोन बना, और फ्रास के जिस वैज्ञानिक ने ग्रामोफोन बनाया वह लेकर गया, तो बडी ऐतिहासिक घटना घटी तीन सौ साल पहले। फ्रेंच

एकेडेमी के सारे बडे से बडे वैज्ञानिक सदस्य हाजिर थे। कोई सौ वैज्ञानिक घटना देखने आये थे। उस आदमी ने ग्रामोफोन का रिकार्ड चालू किया, तो जो प्रेसिडेंट था फ्रेंच एकेडेमी का, वह थोडी देर तो देखता रहा, फिर उचक कर उसने उस आदमी की गर्दन पकड ली, जो ग्रामोफोन लाया था। क्योंकि उसने समझा कि यह कोई ट्रिक कर रहा है गले की। यह हो कैसे सकता है ? यह गले में अन्दर कोई हरकत कर रहा है। कोई तरकीब इसने लगायी है। यह ऐतिहासिक घटना बन गयी, क्योंकि एक वैज्ञानिक से ऐसी आशा नहीं हो सकती थी कि वह जाकर उसकी गर्दन पकड ले। वह आदमी तो घबराया, उसने कहा कि आप यह क्या करते हैं ? उसने कहा, देखो तुम मुझको धोखा न दे पाओगे। वह उसका गला दबाये रहा, लेकिन तब भी उसने देखा कि आवाज आ रही है। तब तो वह बहुत घबडाया। उस आदमी को कहा, तुम बाहर आओ। उसको बाहर ले गया, लेकिन तब भी आवाज आ रही थी। वह सौ के सौ वैज्ञानिक सकते मे आ गये और उनमे से एक ने खडे होकर कहा कि यह कोई शैतानी है। इसे छूना-छूना मत। इसमे कुछ न कुछ डेवल जरूर है, शैतान इसमें हाथ बटा रहा है। यह हो कैसे सकता है ? आज हमे हँसी आती है, क्योंकि अब हो गया इसका हमें परिचय। जो नही होता तो भी हम वैसी परेशानी में पड जाते।

अगर किसी दिन एटम गिरे दुनिया पर, यह सभ्यता हमारी खो जाय, और किसी आदिवासी के पास एक ग्रामोफोन बच जाय, तो उसके गाँव के लोग उसको मार डाले। अगर वह ग्रामोफोन बजा दे तो पूरा गाँव उसकी जान को आ जाय, क्योंकि वह एक्सप्लेन तो कर नही पायेगा, वह बता तो नही पायेगा कि यह रेकार्ड कैसे बोल रहा है ? यह तो आप भी नहीं बता पाओगे। यह बडे मजे की बात है, सब सभ्यताएँ बिलीफ से जीती है। केवल दो-चार आदमियो के पास कुँजियाँ होती है, बाकी तो भरोसा होता है। आप भी न बता पाओगे कि यह कैसे बोल रहा है ? सुन लेते हैं, मालूम है कि बोलता है, भर लिया जाता है, बाकी बता आप भी न पाओगे कि कैसे बोल रहा है ! बटन दबा देते हैं, बिजली जल जाती है, रोज जला लेते हैं। पर आप भी न बता पाओगे कि कैसे जल गयी ? कुँजियाँ तो दो-चार आदमियो के पास होती हैं सभ्यता की, बाकी सारे लोग काम चला लेते हैं, बस। जो काम चलाने वाले हैं, जिस दिन कुंजियाँ खो जायें, उसी दिन मुश्किल में पड जायेंगे। उसी दिन उनका आत्मविश्वास डगमगा जायेगा। उसी दिन वह घबडाने लगेंगे। फिर अगर एक दफा बिजली न जली, तो कठिन हो जायेगा।

तीर्थ है, मदिर है, उनका सारा का सारा विज्ञान है। और उस पूरे विज्ञान की अपनी सूत्रबद्ध प्रक्रिया है। एक कदम उठाने से दूसरा कदम उठता है, दूसरा उठाने से तीसरा उठता है, तीसरा उठता है पीछे चौथा उठता है और परिणाम होता है। यदि एक भी कदम बीच में खो जाय, एक भी सूत्र बीच में खो जाय तो परिणाम

नहीं होता। एक और बात इस सम्बन्ध में ख्याल में ले लेनी चाहिए कि जब भी कोई सभ्यता बहुत विकसित हो जाती है और जब भी कोई विज्ञान बहुत विकसित हो जाता है, तो 'रिचुअल' ' सिम्प्लीफाइड' हो जाता है, कम्प्लेक्स नहीं रह जाता। जब वह कम विकसित होता है तब उसकी प्रक्रिया बहुत जटिल होती है। पर जब पूरी बात पता चल जाती है तो उसके क्रियान्वित करने की जो व्यवस्था है वह बिल्कुल सिम्प्लीफाइड और सरल हो जाती है। अब इससे सरल क्या होगा कि आप बटन दबा देते हैं और बिजली जल जाती है। लेकिन आप सोच सकते हैं कि जिसने बिजली बनायी क्या उसने बटन दबाकर बिजली जला ली होगी ? अब इससे सरल क्या होगा कि जो मैं बोल रहा हूँ वह रिकार्ड हो रहा है। कुछ भी तो नही करना पड रहा है हमे, लेकिन आप सोचते हैं, इतनी आसानी से वह टेपरिकार्डर बन गया ? अगर मुझसे कोई पूछे कि क्या करना पडता हूं, तो मैं कहूँगा, बोल दो और रिकार्ड हो जाता है। लेकिन इस तरह वह बन नही गया है। जितना विज्ञान विकसित होता है उतना ही सिम्प्लीफाइड प्रोसेस, उतनी ही सरल प्रक्रिया हो जाती है। तभी तो जनता के हाथ में पहुँचती है, नही तो जनता के हाथ कभी पहुँच न सकेगी। जनता के हाथ में तो सिर्फ आखिरी नतीजे पहुँचते हैं जिनसे वह काम करना शुरू कर देती है।

धर्म के मामले मे भी यही होता है। जब धर्म की कोई खोज होती है, जब महावीर कोई सूत्र खोजते हैं तो आप ऐसा मत सोचना कि सरलता से मिल जाता है। महावीर का तो पूरा जीवन दांव पर लगता है, लेकिन जब आपको मिलता है तब बिल्कुल सरलता से मिल जाता है। तब तो आपको भी बटन दबाने जैसा ही मामला हो जाता है। और यही कठिनाई भी है। क्योंकि आखिर में खोजने वाला तो खो जाता है, बटन आपके हाथ में रह जाता है, जिसको आप एक्सप्लेन नही कर पाते। फिर आप नही बता पाते कि कैसे करेंगे, इससे काम होगा कैसे ?

अभी रूस और अमरीका दोनो के वैज्ञानिक इस बात में उत्सुक हैं कि किसी भी तरह, बिना किसी माध्यम के विचारसंक्रमण के, टेलीपैथी के सूत्र खोज लिये जाय। क्योकि जब से लूना खो गया है उसके रेडियो के बन्द हो जाने से यह खतरा खडा हो गया है कि मशीन पर अंतरिक्ष में भरोसा नहीं किया जा सकता है। अगर रेडियो बन्द हो गया तो हमारे यात्री सदा के लिए खो जायेंगे, फिर उनसे हम कभी संबध ही न बना पायेंगे। हो सकता है, वह कोई ऐसी चीजें भी जान लें जो हमें बताना चाहे लेकिन हमसे कोई सम्बन्ध न हो पायेगा। तो आल्टरनेट सिस्टम की जरूरत है कि जब मशीन बन्द हो जाय तो भी विचार का संक्रमण हो सके। इसलिए रूस और अमरीका दोनो के वैज्ञानिक टेलीपैथी के लिए भारी रूप से उत्सुक हैं। अमरीका ने

एक छोटा सा कमीशन बनाया है जो तीन साल, चार साल सारी दुनिया में घूमा। उस कमीशन ने जो रिपोर्ट दी वह बहुत घबड़ाने वाली है, लेकिन वह सब रिचुअल मालूम होता है। क्योंकि उसने देखा कि ऐसी घटना घटती है, लेकिन कैसे घटती है यह वह करने वाले भी नही बता सकते।

उसने लिखा है कि अमरीका में एक छोटा सा कबीला बड़ी हैरानी का काम करता है। हर गांव में एक छोटा सा वृक्ष होता है एक खास जाति का, जिससे मैसेज भेजने का काम लिया जाता है—वृक्ष से। पति गाव गया हुआ है बाजार में सामान लेने, पत्नी को ख्याल आ गया कि वह फलां सामान तो भूल ही गयी, तो जाकर उस वृक्ष को कह देती है कि देखो वह फलां सामान जरूर ले आना। वह मैसेज डिलीवर हो जाती है। वह आदमी सांझ को लौटता है तो वह सामान ले आता है। कमीशन के लोगों ने देखा, वह तो घबड़ा देने जैसी बात थी। हम फोन देखकर नही घबडाते। हम फोन पर बात करते नहीं घबड़ाते? एक आदिवासी देखकर घबडा जाता है कि क्या मामला है, बाप किससे बातें कर रहे हैं। हम बात कर रहे है, क्योकि हमें पूरी सिस्टम का ख्याल है इसलिए हम नही घबडाते। वायरलेस से हम बात करते हैं, तो भी हम नही घबडाते क्योकि सिस्टम का हमें पता है और वह परिचित है। पर यह जान कर हैरान होते हैं कि इस वृक्ष से कैसे सवाद हो रहा है? उस कमीशन के लोगो ने दो-चार दिन सब तरह के प्रयोग करके देख लिये। उन स्त्रियो से पूछा, गाव के लोगो से पूछा उन्होने कहा, यह तो हमें पता नही, लेकिन ऐसा सदा होता है। यह वृक्ष साधारण नही है। यह वृक्ष बड़ी पूजा से स्थापित किया गया है। इस वृक्ष को हम कभी मरने नही देते। इसी वृक्ष की शाखा को लगाते चले जाते है, यही एक सनातन नियम है। इसको हमारे बाप-दादो ने और उनके बाप-दादो ने, सबने इसका उपयोग किया। यह सदा से ही काम दे रहा है। ये क्या होता होगा? यह वैज्ञानिक की पकड़ के एकदम बाहर की बात है। और जो कर रहा है, उसको भी पता नही है। इस वृक्ष की प्राण ऊर्जा का टेलीपैथी के लिए उपयोग किया जा रहा है। वह कैसे किया गया शुरू, और यह वृक्ष कैसे राजी हुआ, कैसे इस वृक्ष ने काम करना शुरू कर दिया, और हजारो साल से कर रहा है काम, ये उस गांव के लोगो को कुछ पता ही नही है। वह 'कुंजी' तो खो गयी है, जिसने आविष्कार किया होगा। उसने किया होगा। पर वह काम ले रहे हैं उस वृक्ष से, उस वृक्ष को लगाये चले आ रहे हैं।

अब बुद्ध के बोधि-वृक्ष को बौद्ध नहीं मरने देते, यह इस वृक्ष की बात समझकर आपको ख्याल में आ सकेगा कि उसका कुछ उपयोग है। जिस बोधि-वृक्ष के नीचे बुद्ध को ज्ञान हुआ, उसको मरने नही दिया गया। असली सूख गया, तो उसकी शाखा अशोक ने भेज दी थी लका में, तो वहा वह वृक्ष था। अभी उसकी शाखा

को फिर लाकर पुनः आरोपित कर दिया। लेकिन वही वृक्ष कन्टीन्यूटी में रखा गया। इस बोध गया के तीर्थ का उपयोग है, वह इस बोधि-वृक्ष पर निर्भर है सब कुछ। इस वृक्ष के नीचे बैठकर बुद्ध ने ज्ञान पाया। और जब बुद्ध जैसे व्यक्ति के ज्ञान की घटना घटती है तो जिस वृक्ष के नीचे बुद्ध बैठे थे वह वृक्ष बुद्ध के बुद्धत्व को पी गया हो तो बहुत हैरानी नही है! यह असाधारण घटना है—बुद्ध का बुद्धत्व को प्राप्त होना, अलौकिक हो जाना है इस व्यक्ति का! उस वक्त एक कौंध बिजली पैदा हुई होगी! अगर आकाश से बिजली चमकती है और वृक्ष सूख जाता है तो कोई कारण नही है कि बुद्ध में चेतना की बिजली चमके, इतना तेज फैले और वृक्ष किन्ही नये अर्थों में जीवत न हो जाय! वैसा कोई दूसरा वृक्ष नहीं है। बुद्ध के गुप्त सदेश थे तभी इस वृक्ष को कभी नष्ट नहीं होने दिया गया। और बुद्ध ने कहा था, मेरी पूजा मत करना, इस वृक्ष की पूजा से काम चल जायगा। इसलिए पाच सौ साल तक बुद्ध की मूर्ति नही बनायी गयी। इस बोधि-वृक्ष की मूर्ति बनाकर पूजा चलती थी। पाच सौ साल बाद तक बुद्ध के जितने मदिर थे वह बोधि-वृक्ष की ही पूजा करते रहे है। जो चित्र है, उनमें बुद्ध नही है बीच में सिर्फ आरा है। बुद्ध का प्रकाश है, बोधि-वृक्ष है। असल में यह वृक्ष आत्मसात कर गया है, यह पी गया है उस घटना को। यह चार्ज्ड हो गया। इस वृक्ष का जो उपयोग जानते हैं वह आज भी इस वृक्ष के द्वारा बुद्ध से सबध स्थापित कर सकते है।

तो बोधि गया नही है मूल्यवान, मूल्यवान वह बोधि-वृक्ष है। उस बोधि-वृक्ष के नीचे बरसो तक बुद्ध सक्रमण करते रहे। उनके पैर के पूरे निशान बना कर रखे हैं। जब वह ध्यान करते करते थक जाते तो उस वृक्ष के पास घमने लगते। वह घण्टो उस वृक्ष के पास घूमते रहते। बुद्ध किसी के साथ इतने ज्यादा नहीं रहे जितने उस वृक्ष के साथ रहे। उस वृक्ष से ज्यादा बुद्ध के साथ कोई नही रहा। और इतनी सरलता से कोई आदमी रह भी नही सकता जितनी सरलता से वह वृक्ष रहा। बुद्ध उसके नीचे सोये भी है, बुद्ध उसके नीचे उठे भी है, बैठे भी है, बुद्ध इसके आस-पास चले भी है। बुद्ध ने उससे बाते की होगी, बुद्ध उससे बोले भी होगे। उस वृक्ष की पूरी जीवन ऊर्जा बुद्ध से आविष्ठ है। जब अशोक ने भेजा अपने बेटे महेन्द्र को लका, तो उसके बेटे ने कहा, मैं भेंट क्या ले जाऊ? उन्होने कहा, और तो कोई भेंट हो भी नहीं सकती इस जगत में, एक ही भेट हमारे पास में है कि तुम इस बोधि-वृक्ष की एक शाखा ले जाओ। तो उस शाखा को लगाया, आरोपित किया और उस शाखा को भेज दिया। दुनिया में कभी किसी सम्राट ने किसी वृक्ष की शाखा किसी को भेंट नही दी होगी। यह कोई भेंट है? लेकिन सारा लका आंदोलित हुआ उस शाखा की वजह से। और लोग समझते है, महेंद्र ने लका को बौद्ध बनाया, वह गलत समझते है। उस शाखा ने बनाया। महेन्द्र की कोई हैसियत न थी। महेन्द्र साधारण

हैसियत का आदमी था। अशोक की लड़की भी साथ में थी संघमित्रा, उन दोनों की उतनी बड़ी हैसियत न थी। लंका का कन्वर्शन इस बोधि-वृक्ष की शाखा के द्वारा किया गया कन्वर्शन है। ये बुद्ध के ही सीक्रेट सदेश थे कि लंका में इस वृक्ष की शाखा पहुंचा दी जाय। ठीक समय की प्रतीक्षा की जाय और ठीक व्यक्ति की। और जब ठीक व्यक्ति आ जाय तो इसको पहुंचा दिया गया। क्योंकि इसी से वापस किसी दिन हिन्दुस्तान में फिर इस वृक्ष को लाना पड़ेगा। ये सारी की सारी अन्त-र्कथाएं हैं, जिसको कहना चाहिए गुप्त इतिहास है, जो इतिहास के पीछे चलता है। इनके लिये ठीक व्यक्तियो का उपयोग करना पड़ता है। संघमित्रा और महेन्द्र दोनों बौद्ध भिक्षु थे। बुद्ध के जीवन में थे। हर किसी के साथ नही भेजी जा सकती थी वह शाखा। जो बुद्ध के पास जिया हो, जिसने जाना हो, और जो इस शाखा को वृक्ष की शाखा मानकर न ले जाय, जीवत बुद्ध मानकर ले जाय, उसके ही हाथ में दी जा सकती थी। फिर लौटने की भी प्रतीक्षा करनी जरूरी है। उस वृक्ष को ठीक लोगो के हाथ से वापस आना चाहिए। ठीक लोगो के द्वारा वापस आना चाहिए। इस इतिहास के पीछे जो इतिहास है वह बात करने जैसा है। असली इतिहास वही है, जहा घटनाओ के मूल स्रोत घटित होते हैं, जहा जड़ें होती है, फिर तो घटनाओ का एक जाल है, जो ऊपर चलता है। वह असली इतिहास नही है। जो अखबार में छपता है और किताब में लिखा जाता है, वह असली इतिहास नही है। कभी असली इतिहास पर हमारी दृष्टि हो जाय तो फिर इन सारी चीजो का राज समझ में आता है। ●

तिलक-टीके

तिलक-टीके के संबध मे समझने के पहले दो छोटी सी घटनाए आपसे कहू, फिर आसान हो सकेगी बात। दो ऐतिहासिक तथ्य हैं।

१८८८ ई० मे दक्षिण के एक छोटे से परिवार में एक व्यक्ति पैदा हुआ। पीछे तो वह विश्वविख्यात हुआ। उसका नाम था रामानुजम, जो बहुत गरीब ब्राह्मण घर का था और बहुत थोडी उसे शिक्षा मिली थी। लेकिन उस छोटे से गाव में बिना किसी विशेष शिक्षा के रामानुजम की प्रतिमा गणित के साथ अनूठी रही। जो लोग गणित मानते हैं, उनका कहना है कि मनुष्य जाति के इतिहास मे रामानुजम से बडा और विशिष्ट गणितज्ञ नही हुआ। बडे बडे गणितज्ञ हुए, पर वे सब सुशिक्षित थे। उन्हें गणित का प्रशिक्षण मिला था। बडे गणितज्ञो का साथ-सत्सग उन्हें मिला था। वर्षों की उनकी तैयारी रही थी। लेकिन रामानुजम की न कोई तैयारी थी, न कोई साथ मिला, न कोई शिक्षा मिली। मैट्रिक भी रामानुजम पास नहीं हुआ। इस छोटे बच्चे को मुश्किल से क्लर्की का काम मिला। लेकिन अचानक लोगो में खबर फैलने लगी कि इसकी गणित के संबध मे कुशलता अद्भुत है। किसी ने उसको सुझाव दिया कि कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी के उस समय के बडे से बडे गणितज्ञो में एक प्रोफेसर हार्डी थे, उनको लिखो। उसने पत्र तो नही लिखा, ज्योमिट्रि की दो सौ थ्योरम बनाकर

भेज दीं। हार्डी तो चकित रह गया। इतनी कम उम्र के व्यक्ति से, इस तरह के ज्योमिट्रि के सिद्धांतो का कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता था। इसलिए तत्काल रामानुजम को यूरोप बुलाया गया। जब रामानुजम कैम्ब्रिज पहुचा तो हार्डी, जो कि बड़े से बड़ा गणितज्ञ था उस समय विश्व का, अपने को बिल्कुल बच्चा समझने लगा रामानुजम के सामने। रामानुजम की क्षमता ऐसी थी, जिसका मस्तिष्क से सबंध नही मालूम पडता। अगर आपको कोई गणित करने को कहा जाय तो समय लगेगा। बुद्धि ऐसा कोई भी काम नहीं कर सकती जिसमे समय न लगे। बुद्धि सोचेगी, हल करेगी, समय व्यतीत होगा। लेकिन रामानुजम को समय ही नहीं लगता था। यहा आप तख्ते पर सवाल लिखेंगे वहा रामानुजम उत्तर देना शुरू कर देगा। आप बोल भी न पायेंगे पूरा, और उत्तर आ जायेगा। बीच में समय का कोई व्यवधान नही होता। बडी कठिनाई खडी हो गयी, क्योकि जिस सवाल को हल करने में बडे से बडे गणितज्ञ को छ घटे लगेंगे ही, फिर भी जरूरी नहीं है कि सही हो, उसे सिर्फ जाचने में ही छ घण्टे गुजारने पडेंगे। ऐसा सवाल इधर रामानुजम को दिया और उधर उत्तर मिला। जैसे सवाल में और उत्तर में कोई समय का क्षण भी व्यतीत नही होता।

इससे एक बात तो सिद्ध हो गयी कि रामानुजम बुद्धि के माध्यम से उत्तर नही दे रहा है। बुद्धि बहुत बडी नहीं है उसके पास, मैट्रिक मे वह फेल हुआ था। कोई बुद्धिमत्ता का और लक्षण भी न था। सामान्य जीवन में किसी चीज मे भी कोई ऐसी बुद्धिमत्ता नही मालूम पडती थी। लेकिन गणित के सम्बन्ध में वह एकदम अतिमानवीय था, मनुष्य से बहुत पार की घटना उसके जीवन में होती थी। वैसे जल्दी मर गया रामानुजम। उसे क्षय रोग हो गया, वह छत्तीस साल की उम्र मे मर गया। जब वह बीमार होकर अस्पताल में पडा था तो हार्डी अपने दो-तीन गणितज्ञ मित्रो के साथ उसे देखने गया था। दरवाजे पर हार्डी ने कार रोकी और भीतर गया। कार के पीछे का नम्बर रामानुजम को दिखायी पडा। उसने हार्डी से कहा, आपकी कार का जो नम्बर है, ऐसा कोई आकडा ही नही है। नही किसी गणित की व्यवस्था में है। यह आकडा बडा खूबी का है। उसने चार विशेषताए उस आकडे की बतायी। रामानुजम तो मर गया। हार्डी को छ महीने लगे वह पूरी विशेषता सिद्ध करने में। रामानुजम की तो आकस्मिक नजर पड गयी थी। हार्डी को छ महीने लगे, तब भी वह तीन ही सिद्ध कर पाया। चौथी विशेषता तो असिद्ध ही रह गयी। हार्डी वसीयत छोडकर मरा कि मेरे मरने के बाद उस चौथी की खोज जारी रखी जाय। क्योंकि रामानुजम ने कहा है तो वह ठीक होगी ही। हार्डी के मर जाने के बाईस साल बाद वह चौथी घटना सही सिद्ध हो पायी कि उसने ठीक कहा था। उस आकडे में यह खूबी है।

रामानुजम को जब भी यह गणित की स्थिति घटती थी, तब उसकी दोनो आंखो के बीच में कुछ होना शुरू हो जाता। उसकी दोनों आंखो की पुतलियां ऊपर चढ़ जाती थीं। जिस जगह रामानुजम की आंखें चढ़ जाती थीं, योग उसको तृतीय नेत्र कहता है। उसको तीसरी आंख कहता है। अगर वह तीसरी आंख आरम्भ हो जाय, तीसरी आंख सिर्फ उपमा की दृष्टि से कहता हू, सिर्फ इस ख्याल से कि वहां से कुछ दिखायी पडना शुरू होता है, कोई दूसरे ही जगत का दृश्य शुरू हो जाता है। जैसे कि किसी आदमी के मकान में एक छोटा सा छेद हो, वह खुल जाय, और आकाश दिखायी पडने लगे। जब तक वह छेद न खुला था तो आकाश दिखायी न पड रहा था। करीब करीब हमारी दोनो आंखो के बीच जो भ्रू-मध्य जगह है, वहां वह छेद है जहा से हम इस लोक के बाहर देखना शुरू कर देते हैं। एक बात तय थी कि जब भी रामानुजम को कुछ ऐसा होता था, उसकी दोनो पुतलिया चढ़ जाती थी। हार्डी नही समझ पाया, पश्चिम के गणितज्ञ नही समझ पाये, और अभी गणितज्ञ आगे भी नही समझ पायेंगे।

एक दूसरी घटना, और तब मैं आपको तिलक-टीके के सबध में कुछ कहू तो आपकी समझ में आना आसान होगा, क्योंकि तिलक का सबध उस तीसरी आंख से है।

१९४५ मे एक आदमी मरा अमरीका मे, एडगर कायसी। चालीस साल पहले १९०५ में वह बीमार पडा और बेहोश हो गया। तीन दिन कोमा में पडा रहा। चिकित्सको ने आशा छोड दी, और कहा कि हमें इसे कोमा के बाहर, बेहोशी के बाहर लाने का कोई उपाय नही सूझता। और बेहोशी इतनी गहन है कि अब यह शायद ही वापस लौट सके। सारी आशा छोड दी गयी, सब दवाइया, सब इलाज कर लिये गये लेकिन होश का कोई लक्षण नही उभरा। तीसरे दिन शाम को चिकित्सको ने कहा, अब हम विदा होते है, अब हमारे वश के बाहर है। चार-छ घटो मे यह युवक मर जायेगा, और अगर बच गया तो सदा के लिए पागल हो जायेगा, जो कि मरने से भी बुरा सिद्ध होगा। क्योकि जितनी देर हो रही है उस बीच इसके मस्तिष्क के जो सूक्ष्म ततु हैं, वह विसर्जित हो रहे हैं, डिसइटीग्रेट हो रहे है। पर अचानक चिकित्सक हैरान हुए। कायसी जो बहोश पडा था बोला, जैसे कि कोई गहरी नीद से अचानक बोले। हैरानी और ज्यादा हो गयी, क्योकि उसका कोमा जारी था। उसका शरीर अभी भी पूरी तरह कोमा में था। लेकिन वाणी आ गयी, और कायसी ने कहा कि शीघ्रता करो, मै एक वृक्ष से गिर पडा था, मेरी रीढ़ मे पीछे चोट लग गयी है और उसी चोट के कारण मै बेहोश हू। अगर छ घटे मे मुझे ठीक नही किया गया तो बीमारी का जहर मेरे मस्तिष्क तक पहुच जायेगा, फिर मेरा जिन्दा बचना असभव हो जायगा। तुम इस नाम की जडी-बूटिया ले आओ और उनको इस तरह से

तैयार करके मुझे पिला दो, मैं बारह घंटे के भीतर ठीक हो जाऊंगा। इतना कह कर कायसी फिर बेहोश हो गया। जो नाम उसने लिये थे जड़ी-बूटियों के, आशा भी नहीं हो सकती थी कि कायसी को उनका पता हो, क्योंकि चिकित्सा से कभी कोई उसका संबंध नहीं था। चिकित्सकों ने कहा, यह निपट पागलपन मालूम पड़ता है, क्योंकि ये जड़ी-बूटियां इस तरह का काम करेंगी ये हमको भी पता नहीं है। लेकिन जब कोई उपाय न था, तो हर्ज भी कुछ नहीं था। वे जड़ी-बूटियां खोजी गयीं। जैसा बताया था कायसी ने, वैसा बनाकर उसे दिया गया। बारह घण्टे में वह होश में आ गया, और बिल्कुल ठीक हो गया। होश में आकर वह न बता सका कि उसने ऐसी कोई बात कही थी। वह उन दवाइयों के नाम भी न पहचान सका, वे जड़ी-बूटियां, जो उसने कही थीं। उसने कहा, यह हो ही कैसे सकता है? मुझे तो कुछ पता नहीं है। तब एक बहुत अनूठी घटना की शुरुआत हुई। फिर तो कायसी उसमें कुशल हो गया, और उसने अमरीका में तीस हजार लोगों को अपने पूरे जीवन में ठीक किया। जो भी निदान उसने किया वह सदा ठीक निकला। और जिस मरीज ने उससे निदान लिया वह सदा ठीक हुआ, निरपवाद रूप से। लेकिन कायसी खुद भी नहीं समझा सकता था कि उसे होता क्या है? इतना ही कह सकता था कि जब भी मैं आंख बन्द करता हूं कोई निदान खोजने के लिए, मेरी दोनों आंखें ऊपर चढ़ जाती हैं। मुझे ऐसा लगता है कि कोई मेरी पुतलियों को ऊपर खींचे जा रहा है। फिर मेरी दोनों आंखें भ्रू-मध्य में ठहर जाती हैं। तब मैं इस लोक को भूल जाता हूं। फिर मुझे पता नहीं क्या होता है। इसे मैं भूलता हूं, यहां तक मुझे पता है। फिर क्या होता है, इसका मुझे कोई पता नहीं। लेकिन जब तक मैं इसको नहीं भूल जाता, तब तक वह निदान जो मैं लेता हूं वह नहीं आता है। निदान उसने ऐसे ऐसे दिये कि एक-दो निदान सोच लेने जैसे हैं।

रथचाइल्ड अमरीका का एक बहुत बड़ा करोड़पति, अरबपति परिवार है। उस परिवार की एक महिला बीमार थी जिस पर करने को कोई इलाज नहीं बचा था, सब इलाज हो गये थे। फिर कायसी के पास उसको लाया गया। कायसी ने एक दवा का नाम दिया अपनी बेहोशी में। हमारी तरफ से हम उसे कहेंगे बेहोशी ही। लेकिन जो जानते हैं इस रहस्य के बारे में उनकी तरफ से तो वह बड़े होश में है, उनके लिहाज से हम बेहोश हैं। सच तो यह है कि जब तक तीसरी आंख तक ज्ञान न पहुंचे, तब तक बेहोशी जारी रहती है। रथचाइल्ड तो अरबपति परिवार था। सारे अमरीका में खोजबीन की गयी उस दवा की पर वह दवा कहीं मिली नहीं। कोई यह भी नहीं बता सका कि इस तरह की कोई दवा है भी। सारी दुनिया के अखबारों में विज्ञापन दिया गया कि कहीं से भी कोई इस नाम की दवा की सूचना भेजे। कोई बीस दिन बाद स्वीडन से एक आदमी ने जवाब दिया कि इस नाम की दवा है नहीं। बीस

साल पहले मेरे पिता ने इस नाम की दवा पेटेंट करवाई थी, लेकिन फिर कभी बनायी नही। वह सिर्फ पेटेंट है। कभी बाजार में आयी नही। दवा भी हमारे पास नहीं है, पिता मर चुके हैं, और वह प्रयोग कभी सफल हुआ नही। सिर्फ फार्मूला हमारे पास है, वह हम पहुचा देते है। वह फार्मूला पहुचाया गया, वह दवा बनी और वह स्त्री ठीक हो गयी। लेकिन वह दवा कही थी नही दुनिया के बाजार में, जिसका कायसी को पता हो सके। दूसरी एक घटना मे उसने एक दवा का नाम लिया। उसकी बहुत खोजबीन की गयी, वह दवा नही मिल सकी। साल भर बाद अखबारो में उस दवा का विज्ञापन निकला। वह दवा उस वक्त बन रही थी किसी प्रयोगशाला में जब उसने कहा। तब तक उसका नाम भी तय नही हुआ था। जो नाम उसने साल भर पहले लिया था उस नाम की दवा साल भर बाद बाहर आयी। और उसी दवा से वह मरीज ठीक हुआ। कई बार उसने दवाए बतायी जो खोजी न जा सकी और मरीज मर गये। वह भी कहता था, मै कुछ कर नही सकता, मेरे हाथ की बात नही है। मुझे पता नहीं कि जब मै बेहोश होता हू तब कौन बोलता है, कौन देखता है, मुझे कुछ पता नही। मुझमे और उस व्यक्तित्व मे कोई भी सबध नही है। पर एक बात तय थी कि कायसी जब भी बोलता तब उसकी दोनो आखे चढ गयी होती थी। आप भी जब गहरी नीद में सोते है तो आपकी भी दोनो आखें जितनी गहरी नीद होती है, उतनी ऊपर चली जाती हैं।

अभी तो मनोवैज्ञानिक नीद पर बहुत से प्रयोग कर रहे है। आपकी आख की पुतली कितनी ऊपर गयी है उससे ही तय किया जाता है कि आप कितनी गहरी नीद में है। जितनी आख की पुतली नीचे होती है उतनी गतिमान होती है, ज्यादा। उतना ज्यादा मूवमेंट होता है। और आख की पुतलियो मे जितनी गति होती है उतनी तेजी से आप सपना देख रहे होते है। यह सब सिद्ध हो चुका है वैज्ञानिक परीक्षणो से। उसको वैज्ञानिक कहते है आर ई एम --'रैम', रैपिड आई मूवमेंट। रैम की कितनी मात्रा है इससे तय होता है कि आप कितनी गति का सपना देख रहे है। और आख की पुतली जितनी नीची होती है, रैम की मात्रा उतनी ही ज्यादा होती है, जितनी ऊपर चढने लगती है, रैम कम होने लगती है। और जब बिल्कुल स्थिर हो जाती है आख वहा जाकर, जहा कि दोनो आखें मध्य मे देखती है ऐसी प्रतीति होती है, वहा जाकर रैम बिल्कुल ही बन्द हो जाता है, बिल्कुल ही। पुतली मे कोई तरह की गति नही रह जाती। वह जो अगति है पुतली की वही गहन से गहन निद्रा है। योग कहता है कि गहरी सुषुप्ति में हम वही पहुच जाते है जहा समाधि मे होते है। फर्क इतना ही होता है, सुषुप्ति में हमें पता नही होता है, समाधि में हमें पता होता है। गहरी सुषुप्ति मे आंख जहा ठहरती है वही गहरी समाधि में भी ठहरती है।

ये दोनो घटनाए मैंने आपसे कही है यह इगित करने को कि आपकी दोनो

आखो के बीच म एक बिन्दु है जहां से यह ससार नीचे छूट जाता है और दूसरा ससार शुरू होता है। वह बिन्दु द्वार है। उसके इस पार वह जगत है जिस जगत से हम परिचित हैं, उसके उस पार एक अपरिचित और अलौकिक जगत है। उस अलौकिक जगत के प्रतीक की तरह सबसे पहले तिलक खोजा गया। और तिलक हर कही लगा देने की बात नहीं है। जो व्यक्ति हाथ रखकर आपका वह बिन्दु खोज सकता है वही आपको बता सकता है कि तिलक कहा लगाना है। हर कही तिलक लगाने से कोई मतलब नहीं है, कोई प्रयोजन नही है। फिर प्रत्येक व्यक्ति का बिन्दु भी एक ही जगह नहीं होता। यह जो दोनो आखो के बीच तीसरी आख है, यह प्रत्येक व्यक्ति की बिल्कुल एक जगह नही होती। अन्दाजन दोनो आखो के बीच में, ऊपर होती है। पर फर्क होते हैं। अगर किसी व्यक्ति ने पिछले जन्मो मे बहुत साधना की है और समाधि के छोटे मोटे अनुभव पाये हैं तो उसी हिसाब से वह बिन्दु नीचे आता जाता है। अगर इस तरह की कोई साधना नहीं होती है तो वह बिन्दु काफी ऊपर होता है। उस बिन्दु की अनुभूति से यह भी जाना जाता है कि आपके पिछले जन्मो की साधना क्या कुछ है, समाधि की दिशा मे? आपने तीसरी आख से दुनिया को कभी देखा है? क्या कभी आपके किसी जन्म में ऐसी कोई घटना घटी है? आपका वह बिन्दु, वह स्थान बतायेगा कि ऐसी घटना घटी है या नही घटी है। अगर ऐसी घटना बहुत घटी है तो वह बिन्दु बहुत नीचे आ जायेगा। वह करीब करीब दोनो आखो के समतल भी आ जाता है। उससे नीचे नही आ सकता। अगर बिल्कुल समतल बिन्दु हो, दोनो आखो के बिल्कुल बीच मे आ गया हो, तो जरा से इशारे से आप समाधि मे प्रवेश कर सकते हैं। इतने छोटे इशारे से कि जिसको हम कह सकते हैं, इशारा बिल्कुल असगत है। इसलिए बहुत दफा जब कुछ लोग बिल्कुल ही अकारण समाधि मे प्रवेश कर जाते हैं तो हमें बडी अजीब सी बात मालूम पडती है। जैसे कि जेन साध्वी के जीवन मे कथा है

वह लौटती थी कुए से पानी भर कर। घडा गिर गया। और घडे के गिरने के साथ उसकी समाधि लग गयी। और पूर्ण ज्ञान उपलब्ध हुआ। कैसी फिजूल की बात लगती है, घडे का गिरना या घडे का फूट जाना और समाधि का लगना। कोई सगति नही है। लाओ-त्से के जीवन में उल्लेख है कि वृक्ष के नीचे बैठा था, पतझड के दिन थे, वृक्ष के पत्ते नीचे गिरने लगे, और लाओ-त्से परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया। अब वृक्ष से गिरते हुए पत्ते का कोई भी सम्बन्ध नही है। लेकिन यह घटना तब घट सकती है जब कि पिछले जन्मो में यात्रा इतनी हो चुकी हो कि वह तीसरा बिन्दु दोनो आखो के बिल्कुल बीच में आ गया हो। क्योकि तब शायद आखिरी तिनके की जरूरत है और तराजू बैठ जाय। आखिरी तिनका कोई भी चीज बन सकती है। तो तिलक अगर ठीक ठीक लगाया जाय, तो वह कई अर्थों का सूचक था। वे सारे अर्थ समझने पडेंगे।

पहला तो, वह इस बात का सूचक था कि जब एक बार गुरु ने बता दिया कि तिलक यहां लगाना है ठीक जगह, तो आपको भी उस ठीक जगह का अनुभव होने लगे, तिलक लगाने का पहला प्रयोजन यही है। आपने कभी ख्याल नहीं किया होगा कि आप आंख बन्द करके बैठ जाय, और कोई व्यक्ति आपकी दोनों आंखो के बीच में सिर के पास उंगली ले जाय तो बन्द आंख में भी आपके भीतर एहसास होना शुरू हो जायेगा कि कोई आंख की तरफ उंगली किये हुए है। वह तीसरी आंख की प्रतीति है।

अगर ठीक तीसरी आंख पर तिलक लगा दिया जाय, उसी मात्रा, उतने ही अनुपात का तिलक लगा दिया जाय, ठीक जितनी बड़ी तीसरी आंख की स्थिति है, तो आपको पूरे शरीर को छोड़कर उसी का स्मरण चौबीस घण्टे रहने लगेगा। वह स्मरण पहला तो यह काम करेगा कि आपका शरीर-बोध कम होता जायेगा, और तिलक-बोध बढ़ता जायेगा। एक क्षण ऐसा आ जाता है जब कि पूरे शरीर में सिर्फ तिलक ही स्मरण रह जाता है, बाकी सारा शरीर भूल जाता है। और जिस दिन ऐसा हो जाय, उसी दिन आप तीसरी आंख को खोलने में समर्थ हो सकते हैं। तिलक के साथ जुड़ी हुई साधनाएं थी कि पूरे शरीर को भूल जाओ। सिर्फ तिलक मात्र की जगह याद रह जाय। इसका अर्थ यह हुआ कि सारी चेतना सिकुड़कर फोकस्ड हो जाय तीसरी आंख पर। तीसरी आंख के खोलने की जो कुंजी है वह फोकस्ड कांसेसनेस है। उससे चेतना पूरी की पूरी इकट्ठी हो जाय और सारे शरीर से सिकुड़कर उस छोटे से स्थान पर लग जाय। बस, उसकी मौजूदगी से काम हो जायगा। जैसे हम सूरज की किरणो को एक छोटे से लेंस के द्वारा एक कागज पर गिरा लें, तो इकट्ठी हो गयी किरणें आग पैदा कर देंगी। वे ही किरणे सिर्फ धूप पैदा कर रही थी उनसे आग पैदा नही होती थी। वे ही किरणें आग पैदा कर सकती हैं, संग्रहीत होने पर। चेतना शरीर पर जब बटी रहती है तो सिर्फ जीवन का काम-चलाऊ उपयोग उससे होता है। चेतना अगर तीसरे नेत्र के पास पूरी इकट्ठी हो जाय तो जो तीसरे नेत्र की बाधा, जो द्वार, जो बन्दपन है वह टूट जाता है, जल जाता है, राख हो जाता है, और हम उस आकाश को देखने में समर्थ हो जाते हैं जो हमारे ऊपर फैला है।

तिलक का पहला उपयोग यह था कि आपको ठीक ठीक जगह बता दी जाय शरीर में कि चौबीस घण्टे इस जगह का स्मरण रखना है। सब तरफ से चेतना को सिकोड़कर इस जगह ले आना है। दूसरा यह कि गुरु को रोज रोज देखने की जरूरत न पड़े, रोज आपके माथे पर हाथ रखने की भी जरूरत न पड़े, क्योंकि जैसे जैसे वह बिन्दु नीचे सरकेगा वैसे वैसे आपको एहसास होगा, और आपका तिलक भी नीचा होता जायगा। आपको रोज तिलक लगाते वक्त ठीक वही तिलक लगाना

है जहा उस बिन्दु का आपको एहसास होता हो । हजार शिष्य हैं एक गुरु के । एक शिष्य आता है, झुकता है, तभी गुरु देख लेता है कि तिलक कहा है ? इसकी बात करने की जरूरत नही रह जाती । वह देख लेता है कि तिलक नीचे सरक रहा है कि नहीं सरक रहा है । तिलक उसी जगह है कि तिलक में कोई अन्तर पड रहा है । वह कोड है । दिन में दो-चार दफा शिष्य आयेगा और गुरु देख लेगा कि तिलक गतिमान है कि नही ? वह आगे गति कर रहा है, रुका हुआ है या ठहरा हुआ है ? किसी दिन स्वय शिष्य के माथे पर हाथ रखकर पुन देख पायेगा । अगर शिष्य को पता नही चल रहा है तिलक के हटने का, तो उसका मतलब है कि चेतना पूरी की पूरी इकट्ठी नही की जा रही है । अगर वह तिलक गलत जगह लगाये हुए है और बिन्दु दूसरी जगह है तो इसका मतलब है कि उसकी कासेसनेस, उसकी रिमेंबरिंग, उसकी स्मृति ठीक बिन्दु को नही पकड पा रही है । वह भी गुरु को पता चल जायगा । जैसे जैसे यह तिलक नीचे आता जायेगा वैसे वैसे प्रयोग बदलने पडेंगे साधना के । यह तिलक करीब करीब वैसा ही काम करेगा जैसे एक अस्पताल में एक मरीज के पास लटका हुआ चार्ट काम करता है । नर्स चार्ट पर लिख जाती है, कितना है ताप, कितना है ब्लड प्रेशर, क्या है, क्या नही ? डाक्टर को आकर सिर्फ देखने की जरूरत नही होती है, वह चार्ट पर एक क्षण नजर डाल लेता है, बात पूरी हो जाती है । पर इससे भी अद्भुत था यह प्रयोग कि माथे पर पूरा का पूरा इगित लगा था, जो सब तरह की खबर देता । अगर ठीक-ठीक इसका प्रयोग किया जाता तो गुरु को पूछने की कभी जरूरत न पडती कि क्या हो रहा है, क्या नही हो रहा है । वह जानता है, क्या हो रहा है । क्या सहायता पहुचानी है, वह यह भी जानता है । क्या प्रयोग बदलना है, कौन सी विधि रूपातरित करनी है, वह भी जानता है । तो साधना की दृष्टि से तिलक का ऐसा मूल्य था ।

दूसरा, जो हमारी तीसरी आख का बिन्दु है, वह हमारे सकल्प का भी बिन्दु है । उसको योग मे आज्ञाचक्र कहते है । आज्ञाचक्र इसीलिए कहते है कि हमारे जीवन में जो कुछ भी अनुशासन है वह उसी चक्र से पैदा होता है । हमारे जीवन मे जो भी व्यवस्था है, जो भी आर्डर है, जो भी सगति है, वह उसी बिन्दु से पैदा होती है । इसे ऐसा समझें—हम सबके शरीर मे सेक्स का सेंटर है । सेक्स से समझना आसान पड जायेगा । क्योकि वह हम सबका परिचित है, यह आज्ञा का चक्र हम सबका परिचित नही है । हमारे जीवन की सारी वासना और कामना सेक्स के चक्र से पैदा होती है । जब तक यह चक्र सक्रिय नही होता तब तक काम-वासना पैदा नही होती । काम-वासना लेकर बच्चा पैदा होता है । काम-वासना का पूरा यत्र लेकर पैदा होता है । कोई कमी नहीं होती । कुछ मामले में तो बहुत हैरानी की बात है । स्त्रिया तो अपने जीवन के सारे रजकण भी लेकर पैदा होती है । फिर कोई नया रजकण पैदा

नही होता । प्रत्येक स्त्री कितने बच्चो को जन्म दे सकती है- वह सब अण्डे लेकर पैदा होती है—करोडो। पहले दिन की बच्ची भी, जब मा के पेट से पैदा होती है तो अपने जीवन के समस्त अण्डो की सख्या अपने भीतर लिये हुए पैदा होती है । हर महीने एक अण्डा उसके कोष से निकल कर सक्रिय हो जायगा । अगर वह अण्डा पुरुष वीर्य से मिल जाय, सयुक्त हो जाय, तो बच्चे का जन्म होता है । एक भी नया अण्डा फिर स्त्री में पैदा नही होता । लेकिन काम-वासना नही पैदा होती है तब तक, जब तक कि काम-वासना का चक्र शुरू न हो जाय । वह चक्र जब तक अगति में पडा है ठहरा हुआ है, तब तक काम का पूरा यत्र, काम की पूरी आयोजना, शरीर के पास काम की पूरी शक्ति होने के बावजूद भी काम-वासना पैदा नही होगी । काम-वासना पैदा होगी, जैसे ही काम का सेन्टर गतिमान होगा, गत्यात्मक होगा । चौदह वर्ष की उम्र में या तेरह वर्ष की उम्र में वह गतिमान हो जायगा । गतिमान होते ही जो यत्र पडा था बन्द बिल्कुल, वह पूरी सक्रियता ले लेगा । इस एक ही चक्र से, आमतौर से हम परिचित हैं । वह भी इसीलिए परिचित है कि उसे हम शुरू नही करते, उसे प्रकृति शुरू करती है । अगर हमें ही उसे शुरू करना हो, तो इस जगत में थोडे ही से लोग काम-वासना से परिचित हो पायेंगे । वह तो प्रकृति शुरू करती है, इसलिए हमे पता चलता है, कि वह है । कभी आपने सोचा है कि जरा सा विचार वासना का, और जननेंद्रिय का पूरा यत्र सक्रिय हो जाता है । विचार चलता है मस्तिष्क मे, यत्र होता है बहुत दूर । परन्तु तत्काल चक्र सक्रिय हो जाता है । असल मे आपके चित्त मे काम-वासना का कोई भी विचार उठे, तत्काल सेक्स का सेन्टर उसे अपनी ओर खीच लेता है । उसे उस ओर जाना ही पडेगा । जाने की और कोई जगह नही है । जैसे पानी गड्ढे में चला जाता है, वैसा प्रत्येक सबधित विचार अपने चक्र पर चला जाता है । तो दोनो आखो के बीच में जो तीसरे नेत्र की मैं बात कर रहा हूँ, वही जगह आज्ञाचक्र की है। इस आज्ञा के सम्बन्ध में थोडी बात समझ लेनी जरूरी है ।

जिन लोगो के भी जीवन में यह चक्र प्रारभ नही होगा वह हजार तरह की गुलामियो मे बधे रहेंगे । वे गुलाम ही रहेंगे । इस चक्र के बिना स्वतत्रता कोई है नही है । यह बहुत हैरानी की बात मालूम पडेगी । हमने बहुत तरह की स्वतत्रता सुनी है—राजनीतिक, आर्थिक । ये स्वतत्रताए वास्तविक नही है । क्योकि जिस व्यक्ति का आज्ञाचक्र सक्रिय नही है, वह किसी न किसी तरह की गुलामी में रहेगा । एक गुलामी से छूटेगा दूसरी में पडेगा, दूसरी से छूटेगा तीसरी मे पडेगा । वह गुलाम रहेगा ही । उसके पास मालिक होने का तो अभी चक्र ही नही है जहा से मालकियत की किरणे पैदा होती है । उसके पास सकल्प जैसी, 'विल' जैसी कोई चीज ही नही है। वह अपने को आज्ञा दे सके ऐसी उसकी सामर्थ्य नही है, बल्कि उसके शरीर और उसकी

इंद्रिया ही उसको आज्ञा दिये चली आती हैं। पेट कहता है भूख लगी है, तो उसको भूख लगती है। काम-वासना का बिन्दु कहता है वासना जगो, तो उसे वासना जगती है। शरीर कहता है बीमार हूं, तो वह बीमार हो जाता है। शरीर कहता है बूढ़ा हो गया, तो वह बूढ़ा हो गया। शरीर आज्ञा देता है, आदमी आज्ञा मानकर चलता रहता है। लेकिन यह जो आज्ञाचक्र है, इसके जगते ही शरीर आज्ञा देना बन्द कर देता है और आज्ञा लेना शुरू कर देता है। पूरा का पूरा आयोजन बदल जाता है और उल्टा हो जाता है। वैसा आदमी अगर बहते हुए खून को कह दे रुक जाओ, तो वह बहता हुआ खून रुक जायेगा। वैसा आदमी अगर कह दे हृदय की धड़कन को कि ठहर जा, तो हृदय की धड़कन ठहर जायेगी। वैसा आदमी कहे अपनी नब्ज से कि मत चल, तो नब्ज चल न सकेगी। वैसा आदमी अपने शरीर, अपने मन, अपनी इंद्रियो का मालिक हो जाता है। पर इस चक्र के बिना शुरू हुए मालिक नही होता। इस चक्र का स्मरण जितना ज्यादा रहे, उतनी ही ज्यादा आपके भीतर, स्वय की मालिकी पैदा होनी शुरू होती है। आप गुलाम की जगह मालिक बनना शुरू होते हैं।

योग ने उस चक्र को जगाने के बहुत बहुत प्रयोग किये हैं। उस में तिलक भी एक प्रयोग है। स्मरणपूर्वक, अगर कोई चौबीस घण्टे उस चक्र पर बार बार ध्यान को ले जाता रहे तो बड़े परिणाम आते हैं। अगर तिलक लगा हुआ है तो बार बार ध्यान जायेगा। तिलक के लगते ही वह स्थान पृथक हो जाता है। वह बहुत सेंसिटिव स्थान है। अगर तिलक ठीक जगह लगा है तो आप हैरान होंगे, आपको उसकी याद करनी ही पड़ेगी। समवत शरीर में वह सर्वाधिक सवेदनशील जगह है। उसकी सवेदनशीलता का स्पर्श करना, और वह भी खास चीजो से स्पर्श करने की विधि है —जैसे चदन का तिलक लगाना। सैकड़ो और हजारो प्रयोगो के बाद तय किया था कि चन्दन का क्यो प्रयोग करना है ? एक तरह की रैजोनैंस है चन्दन में, और उस स्थान की सवेदनशीलता में। चदन का तिलक उस बिन्दु की सवेदनशीलता को और गहन करता है, और घना कर जाता है। हर कोई तिलक नही करेगा। कुछ चीजो के तिलक तो उसकी सवेदनशीलता को मार देंगे, बुरी तरह मार देंगे। जैसे आज स्त्रिया टीका लगा रही हैं। बहुत से बाजारू टीके हैं वे, उनकी कोई वैज्ञानिकता नही है। उनका योग से कोई लेना-देना नही है। वे बाजारू टीके नुकसान कर रहे हैं। वह नुकसान करेंगे। सवाल यह है कि वह सवेदनशीलता को बढ़ाते हैं या घटाते हैं ? अगर घटाते हैं सवेदनशीलता को तो नुकसान करेंगे। अगर बढ़ाते हैं तो फायदा करेंगे। और प्रत्येक चीज के अलग अलग परिणाम हैं। इस जगत में छोटे से फर्क से सारा फर्क पड़ता है। इसको ध्यान में रखते हुए कुछ विशेष चीजें खोजी गयी थीं, जिनका ही उपयोग किया जाय। यदि आज्ञा का चक्र सवेदनशील हो सके, सक्रिय

हो सके तो आपके व्यक्तित्व में एक गरिमा और इन्टीग्रीटी आनी शुरू होगी, एक समग्रता पैदा होगी। आप एक जूट होने लगते हैं। कोई चीज आपके भीतर इकट्ठी हो जाती है, खण्ड खण्ड नहीं, अखण्ड हो जाती है।

इस सम्बन्ध में टीके के लिए भी पूछा है तो वह भी ख्याल में ले लेना चाहिए। तिलक से थोडा हटकर टीके का प्रयोग शुरू हुआ। विशेषकर स्त्रियो के लिए शुरू हुआ। उसका कारण वही था, योग का अनुभव काम कर रहा था। असल में स्त्रियो का आज्ञाचक्र बहुतकमजोर चक्र है--होगा ही। क्योकि स्त्री का सारा व्यक्तित्व निर्मित किया गया समर्पण के लिए। उसके सारे व्यक्तित्व की खूबी समर्पण की है। आज्ञाचक्र अगर उसका बहुत मजबूत हो तो समर्पण करना मुश्किल हो जायगा। स्त्री के पास आज्ञा का चक्र बहुत कमजोर है, असाधारण रूप से कमजोर है। इस-लिए स्त्री सदा ही किसी न किसी का सहारा मागती रहेगी, चाहे वह किसी रूप में हो। अपने पर खडे होने का पूरा साहस नहीं जुटा पायेगी। कोई सहारा, किसी के कन्धे पर हाथ, कोई आगे हो जाय, कोई आज्ञा दे और वह मान ले, इसमे उसे सुख मालूम पडेगा। स्त्री के आज्ञाचक्र को सक्रिय बनाने के लिए अकेली कोशिश इस मुल्क में हुई है, और कही भी नही हुई। और वह कोशिश इसलिए थी कि अगर स्त्री का आज्ञाचक्र सक्रिय नही होता तो परलोक मे उसकी कोई गति नही होती। साधना में उसकी कोई गति नही होती। उसके आज्ञाचक्र को तो स्थिर रूप से मजबूत करने की जरूरत है। लेकिन अगर यह आज्ञाचक्र साधारण रूप से मजबूत किया जाय तो उसके स्त्रैण होने में कमी पडेगी और उसमें पुरुषत्व के गुण आने शुरू हो जायेगे। इसलिए इस टीके को अनिवार्य रूप से उसके पति से जोडने की चेष्टा की गयी। उसके जोडने का कारण है। इस टीके को सीधा नही रख दिया गया उसके माथे पर, नहीं तो उसमें स्त्रीत्व कम होगा। वह जितनी स्वनिर्भर होने लगेगी, उतनी ही उसकी कमनीयता, उसका कौमार्य, नष्ट हो जायेगा। वह दूसरे का सहारा खोजती है इससे उसमे एक तरह की कोमलता है। पर जब वह अपने सहारे खडी होगी तो एक तरह की कठोरता अनिवार्य हो जायेगी। तब बडी बारीकी से ख्याल किया गया कि उसको सीधा टीका लगा दिया जाय तो नुकसान पहुचेगा उसके व्यक्तित्व में। उसके मा होने में बाधा पडेगी। उसके समर्पण में बाधा पडेगी। इसलिए उसकी आज्ञा को उसके पति से ही जोडने का समग्र प्रयास किया गया। इस तरह दोहरे फायदे होगे। उसके स्त्रैण होने में अन्तर नहीं पडेगा बल्कि अपने पति के प्रति ज्यादा अनुगत हो पायेगी, और फिर भी उसकी आज्ञा का चक्र सक्रिय हो सकेगा।

इसे ऐसा समझिये, आज्ञा का चक्र जिससे भी संबधित कर दिया जाय, उसके विपरीत कभी नही जाता। चाहे गुरु से संबधित कर दिया जाय तो गुरु के विपरीत

कभी नही जाता। चाहे पति से संबंधित कर दिया जाय तो पति से विपरीत कभी नही जाता। जिससे भी संबंधित कर दिया जाय उसके विपरीत व्यक्तित्व नहीं जाता। अगर उस स्त्री के माथे पर ठीक जगह पर टीका है तो वह सिर्फ पति के प्रति तो अनुगत हो सकेगी, शेष सारे जगत के प्रति वह सबल हो जायेगी। यह करीब करीब स्थिति वैसी है, अगर आप सम्मोहन के संबध में कुछ समझते हैं तो इसे जल्दी समझ जायेंगे। अगर आपने किसी सम्मोहक को लोगो को सम्मोहित करते, हिप्नोटाइज करते देखा तो आप एक चीज देखकर जरूर ही चौंके होगे। वह चीज यह कि अगर सम्मोहन करने वाला व्यक्ति किसी को सम्मोहित कर दे, या आप खुद किसी को सम्मोहित कर दें तो आपके सम्मोहित कर देने के बाद वह व्यक्ति किसी दूसरे की आवाज नही सुनेगा, सिर्फ आपकी सुन सकेगा। बहुत मजे की घटना घटती है। सम्मोहित कर देने के बाद सारे हाल मे हजारो लोग चिल्लाते रहे, बात करते रहे, वह बेहोश पडा हुआ आदमी कुछ सुनेगा नही। लेकिन जिसने सम्मोहित किया है वह धीमे से भी बोले, तो भी सुनेगा। यह करीब करीब, जो मैं आपको टीके के बारे में समझा रहा हू, उससे जुडी हुई घटना है। वह व्यक्ति जैसे ही सम्मोहित किया गया वैसे ही सम्मोहित करने वाले के प्रति ही सिर्फ उसकी ओपनिंग और खुलापन रह गया है, बाकी सबके लिए क्लोज हो गया। आप उसको कुछ नही कह सकते। आप उसके कान के पास कितना ही चिल्लायें, वह बिल्कुल नही सुनेगा, नगाडे बजायें तो नही सुनेगा। और जिसने सम्मोहित किया है वह धीमे से भी आवाज दे, कि खडे हो जाओ, वह तत्काल खडा हो जायेगा। उसकी चेतना मे सिर्फ एक द्वार रह गया है, बाकी सब तरफ से बन्द हो गयी है। जिसने सम्मोहित किया है, आज्ञाचक्र उससे बध गया है।

ठीक इसी सजेस्टीब्लीटी का, इसी मंत्र का उपयोग स्त्री के टीके मे किया गया है। उसको उसके पति के साथ जोड देना है। एक ही तरफ उसका अनुगत भाव रह जायेगा, एक ही तरफ वह समर्पित हो पायेगी। शेष सारे जगत के प्रति वह मुक्त और स्वतंत्र हो जायेगी। अब उसके स्त्री तत्व पर कोई बाधा नही पडेगी। इसीलिए जैसे ही पति मर जाय टीका हटा देना है, वह इसीलिए हटा देना है कि अब उसका किसी के प्रति भी अनुगत होने का कोई सवाल नही रहा। लोगो को इस बात का कतई ख्याल नही है, उनको तो ख्याल है कि टीका पोछ दिया, क्योंकि विधवा हो गयी। पोछने का प्रयोजन है। अब उसके अनुगत होने का कोई सवाल नही रहा। सच तो यह है कि अब उसको पुरुष की भांति ही जीना पडेगा। अब उसमें जितनी स्वतंत्रता आ जाय, उतनी उसके जीवन के लिए हितकर होगी। जरा सा भी छिद्र वल्नरेब्लिटी का, जरा सा भी छेद जहा से वह अनुगत हो सके, वह हट जाय।

टीके का प्रयोग एक बहुत ही गहरा प्रयोग है। लेकिन ठीक जगह पर हो, ठीक वस्तु का हो, ठीक नियोजित ढग से लगाया गया हो तो ही कारगर है अन्यथा बेमानी है। सजावट हो, शृगार हो, उसका कोई मूल्य नही है, उसका कोई अर्थ नहीं है। तब वह सिर्फ एक औपचारिक घटना है। इसलिए पहली बार जब टीका लगाया जाय तो उसका पूरा अनुष्ठान है। और पहली दफा जब गुरु तिलक दे तब उसका पूरा अनुष्ठान है। वह पूरे अनुष्ठान से ही लगाया जाय तो ही परिणामकारी होगा, अन्यथा परिणामकारी नही होगा। आज सारी चीजें हमें व्यर्थ मालूम पडने लगी हैं, उसका कारण है। आज तो व्यर्थ हैं। क्योकि उनके पीछे का कोई भी वैज्ञानिक रूप नही है। सिर्फ उसकी खोल रह गयी है, जिसको हम घसीट रहे हैं। जिसको हम खींच रहे हैं बेमन, जिसके पीछे मन का कोई लगाव नही रह गया है, आत्मा का कोई भाव नही रह गया है, और उसके पीछे की पूरी वैज्ञानिकता का कोई सूत्र भी मौजूद नही है। यह जो आज्ञाचक्र है, इस सबध मे दो-तीन बातें और समझ लेनी चाहिए। क्योकि यह काम आ सकता है। इसका उपयोग किया जा सकता है।

आज्ञाचक्र की जो रेखा है, उस रेखा से ही जुडा हुआ हमारे मस्तिष्क का भाग है। इससे ही हमारा मस्तिष्क शुरू होता है। लेकिन अभी भी हमारे मस्तिष्क का आधा हिस्सा बेकार पडा हुआ है साधारणत । हमारा जो प्रतिभाशाली से प्रतिभाशाली व्यक्ति होता है, जिसको हम जीनियस कहे, उसका भी केवल आधा ही मस्तिष्क काम करता है, आधा काम नही करता। वैज्ञानिक बहुत परेशान हैं, फिजियोलोजिस्ट बहुत परेशान है कि यह आधी खोपडी का जो हिस्सा है, यह किसी भी काम में नही आता। अगर आपके इस आधे हिस्से को काटकर निकाल दिया जाय तो आपको पता भी नही चलेगा। आपको पता ही नही चलेगा कि कही कोई चीज कम हो गयी है। क्योकि उसका तो कभी उपयोग ही नहीं हुआ है। वह न होने के बराबर है। लेकिन वैज्ञानिक जानते है कि प्रकृति कोई भी चीज व्यर्थ निर्मित नहीं करती। भूल होती है, एकाध आदमी के साथ हो सकती है। यह तो हर आदमी के साथ आधा मस्तिष्क खाली पडा हुआ है। बिल्कुल निष्क्रिय पडा हुआ है, उसमें कही कोई चहल-पहल भी नही हुई है। योग का कहना है, कि वह जो आधा मस्तिष्क है वह आज्ञाचक्र के चलने के बाद शुरू होता है। आधा मस्तिष्क आज्ञाचक्र के नीचे के चक्रो से जुडा हुआ है, और आधा मस्तिष्क आज्ञाचक्र के ऊपर के चक्रो से जुडा हुआ है। नीचे के चक्र शुरू होते हैं तो आधा मस्तिष्क काम करता है, और जब आज्ञा के ऊपर काम शुरू होता है तब शेष आधा मस्तिष्क काम शुरू करता है।

इस सबध में, हमें ख्याल भी नही आता, जब तक कोई चीज सक्रिय न हो जाय। हम सोच भी नहीं सकते। सोचने का भी कोई उपाय नही है। जब कोई चीज

सक्रिय होती है तभी हम पता चलता है। स्वीडन में एक आदमी गिर पडा ट्रेन से। गिरने के बाद जब वह अस्पताल में भर्ती किया गया तो उसे दस मील के क्षेत्र की रेडियो की आवाजें पकडने लगीं, उसके कान में। पहले तो वह समझा कि उसका दिमाग कुछ खराब हो रहा है। पहले तो साफ भी नही था, उसे गुनगुनाहट मालूम होती थी। लेकिन दो-तीन सप्ताह में चीजें साफ होने लगी तब उसने घबडाकर डाक्टर से कहा, यह मामला क्या है? मुझे तो ऐसा सुनायी पडता है जैसे कोई रेडियो मेरे कान के पास लगाये हुए है। डाक्टर ने पूछा, तुम्हे क्या सुनायी पड रहा है? उसने जो गीत की कडी बतायी वह डाक्टर अभी अपने रेडियो से सुन कर आ रहा है। उसने कहा, यह मुझे अभी थोडी देर पहले सुनायी पडी। और फिर तो स्टेशन बन्द हो गया टाइम बताकर, कि इतना टाइम है। तब तो रेडियो लाकर, लगाकर, जाच-पडताल की गयी और पाया गया कि उस आदमी का कान ठीक रेडियो की तरह रिसेप्टिव का काम कर रहा है, उतना ही आग्राहक हो गया है। अन्त में उसका आपरेशन करना पडा। नही तो यह आदमी पागल हो जाय। क्योकि ऑन-ऑफ का तो कोई उपाय नहीं था। वह चौबीस घटे चल रहा था, जब तक वह स्टेशन चलेगा तब तक वह आदमी चल रहा था। लेकिन एक बात जाहिर हो गयी कि कान की एक यह भी समावना हो सकती है। और यह भी तय हो गया उसी दिन कि इस सदी के पूरे होते होते हम कान का ही उपयोग करेंगे रेडियो के लिए। इतने इतने बडे यन्त्रो को बनाने की और ढोने की कोई जरूरत नहीं रह जायेगी। लेकिन तब एक छोटी सी व्यवस्था, जो कान पर लगायी जा सके और जिसे ऑन-ऑफ किया जाय सके पर्याप्त होगी। सिर्फ ऑन-ऑफ किया जा सके, उतनी व्यवस्था! उस आदमी की आकस्मिक घटना से यह एक ख्याल जन्मा, बिलकुल आकस्मिक! इस जगत में जो जो नयी घटनाएँ घटती हैं या नये दृष्टिकोण खुलते हैं, वह हमेशा एक्सिडेंटल और आकस्मिक होते हैं। क्योकि हम अपने पिछले ज्ञान से तो उनका कोई अनुमान नही लगा सकते। हम कभी सोच ही नही सकते कि कान भी कभी रेडियो का काम कर सकता है। लेकिन क्यो नही कर सकता है? कान सुनने का काम करता है, रेडियो सुनने का काम करता है। कान रिसेप्टिविटी है पूरी, रेडियो रिसेप्टिविटी है पूरी। सच तो यह है कि रेडियो कान के ही आधार पर निर्मित है। माडल का काम तो कान ने ही किया है। कान की ओर क्या क्या सम्भावनाएँ हो सकती हैं, ये जब तक अचानक उद्घाटित न हो जावें तबतक पता भी नही चल सकता।

ठीक वैसी घटना दूसरे महायुद्ध में घटी। एक आदमी घायल हुआ, बेहोश हो गया और जब होश मे आया तो उसे दिन में आकाश के तारे दिखायी पडने लगे। तारे तो आकाश में होते ही है। सिर्फ सूरज की रोशनी की वजह से दिखायी पडने बन्द हो जाते है। सूरज की रोशनी बीच मे आ जाती है, तारे पीछे पड जाते है।

सूरज की रोशनी बहुत तेज है, सूरज से तारे बहुत दूर हैं, उनकी टिमटिमाती रोशनी खो जाती है। यद्यपि वे सूरज से छोटे नहीं हैं, उनमें से कोई सूरज से हजार गुना बड़ा है, कोई दस हजार गुना बडा है, कोई लाख गुना बड़ा है। पर फासला बहुत है। सूरज से किरण हम तक आती है तो उसे नौ मिनट लगते हैं। और जो सबसे करीब का तारा है, उससे जो किरण आती है उसे चालीस साल लगते हैं। फासला बहुत है। नौ मिनट और चालीस साल, और किरण बहुत तेज चलती है, एक लाख छियासी हजार मील चलती है एक सेकेंड में। सूरज से पहुँचने में नौ मिनट लगते हैं, निकटतम तारे से पहुँचने में चालीस साल लगते हैं। और ऐसे तारे हैं, जिनसे चार हजार साल भी लगते हैं, चार लाख साल भी लगते हैं, चार करोड साल भी लगते हैं, चार अरब साल भी लगते हैं। चार अरब साल के ऊपर का हम हिसाब नहीं रख सकते हैं क्योंकि हमारी पृथ्वी को बने चार अरब साल हुए। वैज्ञानिको का कहना है कि जब हमारी पृथ्वी नही बनी थी, तब जो किरणें चली होंगी, एक दिन जब हमारी पृथ्वी समाप्त हो चुकी होगी तब पार होगी। उन किरणो को कभी पता नहीं चलेगा कि बीच में किसी पृथ्वी के होने की घटना घट गयी। जब पृथ्वी नही थी तब वे चली और जब पृथ्वी नही हो चुकी होगी तब वे पार हो गयी होगी। उन किरणो पर कोई यात्री सवार होकर चले तो पृथ्वी कभी थी, इसका कोई भी अन्दाजा नही लगेगा।

दिन में वे तारे हैं अपनी जगह। उस आदमी को दिन में भी दिखायी पडने शुरू हो गये। उसकी आँख को क्या हो गया ? उसकी आँख ने एक नया सिलसिला शुरू किया। आपरेशन करना पडा उसकी आँख का, क्योंकि वह आदमी सामान्य नहीं रह गया। वह आदमी बेचैनी मे पड गया। वह आदमी कठिनाई में पड गया। तब एक बात साफ हुई कि आँख दिन मे भी तारो को देख सकती है। अगर आँख दिन में भी तारो को देख सकती है तो आँख की बहुत सी संभावनाएँ हैं, जो सुप्त हैं। हमारी प्रत्येक इंद्रिय की बहुत सी संभावनाएँ हैं, जो सब सुप्त पडी हैं। इस जगत में जो हमें चमत्कार दिखायी पडते हैं वह सुप्त पडी संभावनाओ का कही से टूट पडना है, बस। कोई सुप्त संभावना कही से प्रगट हो जाती है, हम चमत्कृत हो जाते हैं। वह मिरेकल नहीं है। उतना ही चमत्कार हमारे भीतर भी दबा पडा है। पर अप्रगट है, वह प्रगट नही होता। वह खुल नही पाता। कही कोई दरवाजे पर ताला पडा है, वह नही टूट पा रहा है। अभी मैंने आधे मस्तिष्क के सक्रिय होने की बात की वह योग की दृष्टि है। और योग की दृष्टि कोई एक-दो दिन, वर्ष दो वर्ष की धारणा नही है। कम से कम बीस हजार साल से योग की यह परिपुष्ट दृष्टि है। विज्ञान की किसी दृष्टि पर तो भरोसा नही किया जा सकता बहुत, क्योंकि जो विज्ञान छ महीने पहले कह रहा था, छ महीने बाद बदलेगा। लेकिन योग की एक परिपुष्ट दृष्टि है, बीस हजार साल की कम से कम। क्योंकि हम जिस सभ्यता में रह रहे हैं वह सभ्यता

किसी भी हालत में बीस हजार साल से पुरानी नहीं है। यद्यपि यह हमारा भ्रम है कि हमारी सभ्यता पृथ्वी पर पहली सभ्यता है। हमसे पहले सभ्यताएँ हो चुकी हैं और नष्ट हो चुकी हैं और हमसे पहले आदमी करीब करीब हमारी ही ऊँचाइयो पर और कभी कभी हमसे भी ज्यादा ऊँचाइयो पर पहुँच गया और खो गया !

१९२४ में एक घटना घटी। १९२४ में जर्मनी में अणु विज्ञान के सम्बन्ध में शोध का पहला सस्थान निर्मित हुआ। अचानक एक दिन सुबह एक आदमी, जिसने अपना नाम फल्कानेली बताया, एक कागज मे लिख कर कुछ दे गया। उस कागज में एक छोटी सी सूचना थी कि मुझे कुछ बातें ज्ञात हैं, कुछ और लोगो को भी ज्ञात हैं, जिनके आधार पर मैं यह खबर देता हूँ कि अणु के साथ खोज मे मत पडना। क्योकि हमारी सभ्यता के पहले और भी सभ्यताएँ इस खोज में पड कर नष्ट हो चुकी है। इस खोज को बन्द ही कर दें। बहुत खोज-बीन की गयी उस आदमी की, कुछ पता नही चला। १९४० में हैसिनबर्ग, एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक था जर्मनी का, जिसने बडे से बडा काम अणु की खोज में किया। उस आदमी के घर फिर एक आदमी उपस्थित हुआ, जिसने फिर उसको एक चिट्ठी दी, उसमे भी फल्कानेली के ही दस्तखत थे। वह नौकर को चिट्ठी देकर बाहर ही चला गया। उस चिट्ठी मे उसने हैसिनबर्ग को सूचना दी कि तुम पापी होने का जिम्मा मत लो। क्योकि यह सभ्यता पहली नहीं है जो अणु-उपद्रव मे पडी है। इसके पहले सभ्यताएँ बहुत बार अणु के खेल में पडी और नष्ट हो गयी। मगर उस आदमी का पता नही चला। १९४५ में जब पहली दफा हिरोशिमा पर एटम गिरा तो दुनिया के बारह बडे वैज्ञानिको को, जिनका कि हाथ था एटम के बनाने में, फल्कानेली के दस्तखत के पत्र मिले जिसमें उसने कहा था कि देखो, अभी भी रुक जाओ। हालाँकि तुमने पहला कदम उठा लिया है। और पहला कदम उठाने के बाद आखिरी कदम बहुत दूर नही रहता। ओपिनहिमर जो अमरीका का सबसे बडा अणुशास्त्री था, जिसने कि अणु बनाने में बडे से बडा भाग बँटाया है, उसने तत्काल उस पत्र के मिलते ही अणु आयोग से इस्तीफा दिया और उसने एक वक्तव्य दिया कि 'वी हैव सिन्ड' हमने पाप किया है। और यह आदमी हर वक्त खबर देता रहा पर यह आदमी कौन है, इसका कोई पता नही है। यह आदमी कौन है ? इस बात की पूरी समावना है कि वह जो कह रहा ,है ठीक कह रहा है। अणु के साथ खिलवाड सभ्यताएँ पहले भी कर चुकी है। हमने भी महाभारत में अणु के साथ खिलवाड कर लिया। उसके साथ हम बर्बाद हुए। असल में करीब करीब ऐसा है, जैसे कि एक व्यक्ति बच्चा होता है, जवान होता है, और जवानी में वही भूले करता है जो उसके बाप ने की थी। हालाँकि बाप बूढ़ा होकर उसको समझाता है कि इन भूलो में मत पडना, ये सब गडबड है। लेकिन उसके बाप ने भी इस बूढ़े को समझायी थी यही बात। और ऐसा नही है कि उस बूढे के बूढ़े बाप को समझाने

वाला बाप नही था। उसने भी समझाया था। पर जवानी में वही भूलें होती हैं, फिर बुढ़ापे में वही समझावट होती है। बच्चा होता है, जवान होता है, बूढ़ा होता है, मरता है—जैसे व्यक्ति एक चक्र में दौड कर आदी हो जाता है ऐसे ही हर सभ्यता भी करीब करीब एक से स्टेप उठाकर नष्ट होती है। सभ्यताएँ भी बचपन में होती हैं, जवान होती हैं, बूढी होती हैं और मरती हैं।

यह जो योग की बीस हजार साल की दृष्टि की बात की, बीस हजार साल की मै इसलिए कहता हूँ कि बीस हजार साल का हिसाब थोडा साफ है। वैसे इसे और भी साफ करना हो तो बीस हजार साल के पहले की जो सभ्यताएँ रही हैं, उनको बिना जाने साफ नही किया जा सकता। एक आदमी की जवानी ठीक से समझनी हो तो दस आदमियो की जवानी समझनी जरूरी है। अकेली नही समझी जा सकती। क्योकि अकेले का कोई रिफरेंस नही होता, कोई सन्दर्भ नही होता है। कैसे समझा जाय, वह क्या कर रहा है? ठीक कर रहा है कि गलत कर रहा है? एक आदमी का बुढापा समझना हो तो पच्चीस बूढ़ो पर नजर डालनी जरूरी है, नही तो सब अधूरा-अधूरा होगा। एक एक व्यक्ति अपने आप में कुछ भी नही बता पाता है। एक एक घटना अलग कुछ नही कहती। इसलिये मैने कहा कि बीस हजार साल का इतिहास साफ है। बीस हजार साल में योग निरन्तर एक बात कहता रहा है कि आज्ञाचक्र के साथ जुडा हुआ आधा मस्तिष्क है जो बन्द पडा है, अगर तुम्हें ससार के पार कुछ जानना है तो उस आधे मस्तिष्क को सक्रिय करना जरूरी है। अगर परमात्मा के सबध मे कोई यात्रा करनी है तो वह आधा मस्तिष्क सक्रिय होना जरूरी है। अगर पदार्थ के पार देखना है तो वह आधा मस्तिष्क सक्रिय होना जरूरी है। उसका द्वार है आज्ञा, जहाँ आप तिलक लगाते हैं। वह तो करस्पोंडिंग हिस्सा है, आपकी चमडी के ऊपर। बस अन्दाजन डेढ इच भीतर—अन्दाजन कहता हूँ, क्योकि किसी का थोडा ज्यादा, किसी का थोडा कम होता है। अन्दाजन डेढ इच भीतर वह बिन्दु है जो द्वार का काम करता है पदार्थ अतीत, या भावातीत जगत के लिए।

तिब्बत ने तो, जैसा हमने तिलक आविष्कृत किया, वैसे ही ठीक आपरेशन्स भी आविष्कृत किये। ऐसा तिब्बत ही कर सकता था। क्योकि तिब्बत ने जितनी मेहनत की है मनुष्य के तीसरे नेत्र पर, 'थर्ड आई' पर, उतनी किसी और सभ्यता ने नही की है। सच तो यह है कि तिब्बत का पूरा का पूरा विज्ञान और पूरी समझ जीवन के अनेक आयामो की समझ है जो उस तीसरे नेत्र की ही समझ पर आधारित है। जैसा मैने कायसी का आपके लिए उदाहरण दिया, कायसी तो एक व्यक्ति है। तिब्बत मे तो सैकडो साल से व्यक्ति जब तक समाधि मे न जाए तब तक दवा का कोई पता ही नही लगता था। यह पूरी सभ्यता ही वह काम करती रही

है। वे समाधिस्थ व्यक्ति से ही दवा पूछेंगे। उसकी दवा का ही उपयोग है। बाकी तो सब अन्धेरे में टटोलना है। उन्होंने तो आपरेशन्स भी विकसित किये। ठीक इस डेढ़ इंच के भीतर जो जगह है, उस पर आपरेशन्स करने के भी प्रयोग किये। उस जगह को बाहर से भी तोडने की कोशिश की। वह टूट जाती है, बाहर से टूट जाती है। लेकिन बाहर से टूटने में और भीतर से टूटने में एक फर्क है, इसलिए भारत ने कभी उसको बाहर से तोडने की कोशिश नही की। यह मैं आपको ख्याल में दे दूं।

उसे भीतर से तोडने पर ही आधा मस्तिष्क सक्रिय हो जाता है। बहुत सम्भावना यह है कि बाहर का आपरेशन नये आधे मस्तिष्क की सक्रियता का दुरुपयोग करेगा। ।क्योंकि आदमी वही का वही है। उसकी चेतना मे कोई साधनागत अन्तर तो हुए नही हैं। और उसके मस्तिष्क में नये काम शुरू हो गये। अगर वह आदमी आज दीवाल के पार देख सकता है, तो इस बात की बहुत कम सभावना है कि वह कुएँ में किसी गिरे आदमी को देख कर निकालेगा। इस बात की ज्यादा सम्भावना है कि किसी के गडे हुए खजाने को खोदने जायगा। अगर वह आदमी यह देख सकता है कि उसके भीतरी इशारे से आपको आज्ञा दी जा सकती है, तो इस बात की बहुत कम सभावना है कि आपसे वह कोई अच्छा काम करवायेगा, इस बात की ज्यादा सभावना है कि आपसे अवश्य वह कोई बुरा काम करवायेगा। आपरेशन यहाँ भी हो सकता था। भारत को भी उसके सूत्र पता थे, पर भारत ने उसका कभी प्रयोग नही किया। नही प्रयोग किया इसीलिए कि जब तक व्यक्ति की चेतना भीतर से भी इतनी विकसित न हो कि नयी शक्तियो का उपयोग करने मे समर्थ हो जाय, तब तक उसे नयी शक्तियाँ देना खतरनाक है। वह ऐसा है जैसे बच्चे के हाथ मे हम तलवार दे दें। बहुत डर तो यह है कि वह दो-चार को काटेगा, लेकिन डर यह भी है कि वह अपने को भी काटेगा। और बच्चे के हाथ में दी गयी तलवार से किसी का भी मगल हो सकेगा, इसकी आशा करना दुराशा मात्र है। चेतना के तल पर, अगर व्यक्ति के भीतर की चेतना विकसित न हो तो उसके हाथ मे नयी शक्तियाँ देना खतरनाक है।

तिब्बत ने, जहाँ हम तिलक लगाते रहे है, वहाँ ठीक भीतर तक भी छेद करने की कोशिश की है, भौतिक उपकरणो से। इसलिए तिब्बत बहुत सी बाते जान पाया, बहुत से अनुभव कर पाया, लेकिन फिर भी तिब्बत कोई नैतिक अर्थों में महान देश नही बन पाया। यह बडी आश्चर्यजनक घटना है। तिब्बत बहुत काम कर पाया है, लेकिन फिर भी नैतिक अर्थों में वह एक बुद्ध भी पैदा नही कर पाया। उसकी जानकारी बढ़ी, उसकी शक्ति बढ़ी, अनूठी बातो का उसे पता चला; लेकिन उन सबका उपयोग बहुत छोटी बातो में हुआ। उनका बहुत बडी बातों में उपयोग नही हो सका।

भारत ने कोई सीधा भौतिक प्रयोग करने की कभी चेष्टा नही की। चेष्टा यह की कि भीतर की चेतना को इकट्ठा करके इतना कन्सन्ट्रेट, इतना एकाग्र किया जाय कि चेतना की शक्ति से ही वह तीसरा नेत्र खुल जाय, उसके ही प्रवाह में खुल जाय। क्योंकि चेतना के प्रवाह को तीसरे नेत्र तक लाना एक बडा नैतिक उपक्रम है। मन इतना ऊपर चढ़ाना है! क्योंकि साधारणत हमारा मन नीचे की तरफ जाता है। सच तो यह है कि हमारा मन सेक्स सेन्टर की तरफ ही बढता रहता है। हम कुछ भी करते हो, हम चाहे धन कमाते हो, चाहे पद की चेष्टा करते हो, चाहे कुछ भी करते ो, यह सब करने के पीछे कही गहरे में काम-वासना हमे खींचती रहती है। धन भी हम कमाते है तो इसी आशा म कि उससे काम खरीदा जा सके; और पद की भी हम इच्छा करते है इसी आशा में कि पद पर बैठकर हम ज्यादा शक्तिशाली हो जायेंगे, काम को खरीद लेगे। इसलिए पुराने दिनो में राजा की इज्जत का पता।इससे चलता था कि कितनी रानियाँ थी उसके पास? वह ठीक मेजरमेंट है, क्योंकि पद का और कोई मूल्य है क्या? पद का करोगे क्या? कितनी स्त्रियाँ तुम्हारे हरम में है, उससे पता चल जायगा कि तुम कितने बडे पद पर हो। पद का भी उपयोग, धन का भी उपयोग घूमकर तो काम-वासना के लिए ही होना है। हम जो भी करेगे हमारी सारी शक्ति काम के केन्द्र की तरफ दौडती रहेगी। और जब तक शक्ति काम के केन्द्र की तरफ दौड रही है तब तक, व्यक्ति अनैतिक हो सकता है। अगर शक्ति को ऊपर की तरफ दौडाना है तो काम की यात्रा रूपातरित करनी पडेगी। अगर आज्ञाचक्र की तरफ शक्ति को ले चलना है तो काम की यात्रा को बदलना पडेगा— उसका पूरा रुख, पूरा ध्यान बदलना पडेगा, पीठ ही फेर लेनी पडेगी नीचे की तरफ से, और मुँह करना पडेगा ऊपर की तरफ। ऊर्ध्वमुखी होना पडेगा। इस ऊर्ध्वगमन की यात्रा बडी नैतिक होगी। इसलिए इच इच सघर्ष होगा, इसमे एक एक कदम कुर्बानी होगी। इसमे जो क्षुद्र है उसे खोने की तैयारी दिखायी पडेगी, ताकि विराट मिल सके। इसमें कीमत चुकानी पडेगी। और इतनी सारी कीमत चुकाकर जो व्यक्ति आज्ञाचक्र तक पहुँचता है उसे जो विराट शक्ति उपलब्ध होती है, वह उसका दुरुपयोग कैसे कर पायेगा? दुरुपयोग का कोई सवाल नही उठता। दुरुपयोग करने वाला तो इस मजिल तक पहुँचने के पहले समाप्त हो गया होता है। इसलिए तिब्बत में ब्लैक मैजिक पैदा हुआ, इन आपरेशन्स की वजह से। तिब्बत मे अध्यात्म कम पैदा हुआ, और जिसको हम कहें कि शैतानी ढग का उपद्रव, वह ज्यादा पैदा हुआ। इस तरह की गलत ताकत हाथ मे आनी शुरू हो गयी।

सूफियो में एक कहानी है, जीसस के बाबत। ईसाइयो में उसका कोई उल्लेख नही है, इसलिए मैं सूफियो में कहता हूँ। जीसस की बहुत सी कहानियाँ सूफियो के पास हैं, ईसाइयो के पास नही है। कई बार तो बहुत महत्वपूर्ण घटनाएँ मुसल-

मानो के पास हैं, ईसाइयो के पास नही हैं, जीसस के जीवन की। यह घटना भी उनमें से है। जीसस के तीन शिष्य जीसस के पीछे पडे। वे उनसे कहते हैं कि हमने सुना है और देखा भी, कि आप मुर्दे को कहते हैं उठ जाओ, और वह उठ जाता है। हमें तुम्हारा मोक्ष नही चाहिए, हमें तुम्हारा स्वर्ग नही चाहिए, हमे तो सिर्फ यह तरकीब सिखा दो। यह मरा हुआ आदमी कैसे जिन्दा होता है? जीसस उनसे कहते हैं कि इस मत्र का उपयोग तुम स्वय पर कभी न कर पाओगे। क्योकि तुम मर चुके होगे तो मत्र का उपयोग कैसे करोगे? और दूसरे के जिलाने से तुम्हें क्या फायदा होगा? मैं तुम्हें वह तरकीब बताता हूँ जिससे कि तुम मरो ही न! वह कहते हैं, हमें इससे कोई मतलब नही। आप हमें बहलायें मत, हमें तो यह मुर्दे की बात बताइए, यह चीज जानने जैसी है। वे इतने पीछे पडे कि जीसस ने कहा, कि ठीक है। जीसस ने उन्हें सूत्र बता दिया, जिस सूत्र के उपयोग से मरा हुआ, जिन्दा हो जाता है। अब वे तीनो भागे। वे उसी दिन जीसस को छोडकर भाग गये, मुर्दे की तलाश में। उन्होने कहा कि अब देर करना उचित नही, मत्र मे कोई शब्द भूल जाय, कोई गडबड हो जाय, इसका जल्दी प्रयोग करके देख लें। दुर्भाग्य, कि गाँव मे गये तो मुर्दा नही! दूसरे गाँव की तरफ निकले तो बीच में कोई अस्थि-पजर पडा हुआ मिल गया। मुर्दा नही मिला, तो उन्होने कहा कि अब चलो यही सही। मत्र पढा, जल्दी थी बहुत, वह शेर के अस्थि-पजर थे। शेर उठकर खडा हो गया। वह उन तीनो को खा गया। सूफी कहते हैं कि यही होगा। अनैतिक चित्त का कुतूहल खतरे में ले जाता है। बहुत बार बहुत से सूत्र जानकर भी छिपा लिये गये बार बार, कि वह गलत आदमी के हाथ में न पड जायें। सामान्य आदमी को जब भी कुछ दिया गया तो उसे इस ढग से दिया गया कि जब वह योग्य हो जाय, तभी उसे पता चलता है।

सोचेंगे आप, तिलक के सबध मे मैं यह क्यो कह रहा हूँ। हर बच्चे के माथे पर तिलक लगा दिया, जब कि उसे कुछ पता नही है। कभी उसे पता होगा। कभी उसे पता चलेगा तब वह इस तिलक के राज को समझ पायेगा। इशारा कर दिया गया है, ठीक जगह पर निशान बना दिया गया है। कभी जब उसकी चेतना इतनी समर्थ होगी, तब वह इस निशान का उपयोग कर पायेगा। कोई चिन्ता नही कि सौ आदमियो पर लगाया गया निशान, और निन्यानवे के काम नही पडा। कोई फिक्र नही, एक को भी काम पड जाय तो कम नही है। इस आशा मे सौ पे लगा दिया गया कि कभी किसी क्षण में उसका स्मरण आ जायेगा तो पता चल जायेगा।

तिलक के लिए इतना मूल्य, इतना सम्मान, कि जब भी कुछ विशेष घटना हो, शादी हो रही हो तो तिलक हो, कोई जीत कर लौट आये तो तिलक हो! कभी आपने सोचा, कि हर सम्मान की घटना के साथ तिलक, यह सिर्फ 'ला आफ एसोसि-

एशन' का उपयोग है। क्योंकि हमारे चित्त में एक बड़े मजे का मामला है। हमारा चित्त दुख को भूलना चाहता है और सुख को याद रखना चाहता है। हमारा चित्त लम्बे अर्से में दुख को भूल जाता है और सुख को याद रखता है। इसीलिए तो हमें पीछे के दिन अच्छे मालूम पड़ते हैं। बूढ़ा कहता है, बचपन बहुत सुखद था। कोई और बात नहीं है, दुख को ड्राप कर देता है मन हमारा और सुख की शृंखला को कायम रखता है। जब लौटकर पीछे देखता है तो सुख ही सुख दिखायी पडता। बीच बीच के जो दुख थे, उनको गिरा आये हम रास्ते में। कोई बच्चा नहीं कहता, कि बचपन सुखद है। बच्चे जल्दी से जल्दी बडे होना चाहते हैं। और सब बूढ़े कहते हैं, बचपन बहुत सुखद है। जरूर कही न कही भूल हो गयी है। ये जितने बच्चे हैं, उनको खड़े करके पूछें, तुम क्या होना चाहते हो? वे कहेंगे, हम बडे होना चाहते हैं। और जितने बूढ़े हैं उनको पूछें कि क्या होना चाहते हो, वे कहेंगे कि हम बच्चे होना चाहते हैं। मगर एक बच्चा गवाही नहीं देता तुम्हारे साथ। बच्चा तो चाहता है कितना जल्दी बडा हो जाय, इसलिए कई दफा ऐसी कोशिश करता है बडे होने की, कि जिसका कोई हिसाब नही। सिगरेट पीने लगता है, इसलिए कि वह देखता है कि सिगरेट सिम्बल है बडे आदमी का। कोई और कारण से नही, मनोवैज्ञानिक कहते है कि बच्चो मे, सौ में से सत्तर प्रतिशत बच्चे इसलिए सिगरेट पीते है कि सिगरेट प्रेस्टीज का प्रतीक है। सिगरेट ताकतवर, बडे लोग, प्रतिष्ठा वाले लोग पीते हैं। वह भी उसे पीकर धुआँ जब उडाता है, तो भीतर उसकी रीढ सीधी हो जाती है। 'सम-बडी', उसको मालूम पडता है कि मै भी कोई ऐसा-वैसा नही हूँ। किसी फिल्म पर लिख दें, इसको सिर्फ 'अडल्ट' देख सकते हैं, तो बच्चे सब नकली मूँछ लगाकर फिल्म मे प्रवेश करेंगे। क्यो? बडा होने की बडी तीव्र आकाक्षा है, जल्दी। मगर सब बूढ़े कहते है कि बचपन बडा सुखद था। क्या बात है ऐसी? बात कुल इतनी ही है कि मन दुख को भुला देता है, गिरा देता है। दुख याद रखने जैसी चीज नही है।

एक बहुत हैरानी का सूत्र पियाँगेट नाम के वैज्ञानिक ने बताया है, चालीस साल तक बच्चो पर मेहनत करके। उसका कहना है कि पाँच साल से पहले की किसी बच्चे को स्मृति नही रहती। उसका कुल कारण यह है कि पाच साल की जिन्दगी इतनी दुखद है कि उसे याद नही रखा जा सकता। यह हम सोच न सकेंगे। और पियाँगेट ठीक कहता है, अनुभव से कहता है, भारी अनुभव से कहता है। आपको अगर कहा जाय कि आपको कबतक की याद है तो आप ज्यादा से ज्यादा पाँच साल, चार साल लौट पाते हैं। फिर क्यो नही लौटते पीछे की ओर? क्या उस वक्त मेमोरी नही बनती थी? बनती थी। क्या उस वक्त घटना नही घटती थी? घटती थी। क्या उस वक्त किसी ने गाली नहीं दी, और किसी ने प्रेम नही किया? सब हुआ है। पर मामला क्या है? चार साल के पहले की स्मृति का कोई रेकार्ड, कोई हिसाब क्यो नही है आपके

साल ? पियाँजेट कहता है कि वह दिन इतने दुख में बीतते हैं, क्योंकि बच्चा अपने को इतना दीन, इतना कमजोर, इतना हीन, सबसे दबा हुआ, इतना असहाय अनुभव करता है कि उसका कुछ भी याद रखना उसको पसन्द नही। वह उसको ड्राप कर देता है। भूल ही जाता है। वह कहता है, चार साल से पहले का मुझे कुछ याद ही नही। क्योंकि बाप ने कहा बैठ, तो उसको बैठना पड़ा। माँ ने कहा उठो, तो उसको उठना पडा। सब बडे से बडे शक्तिशाली थे, उसकी अपनी कोई सामर्थ्य न थी, वह बिल्कुल हवा में उडता हुआ पत्ता जैसा था। जो कोई कुछ कह दे उसे मानना पड़ता था। सब पर निर्भर था। जरा सी आँख का इशारा और उसको डर जाना पड़ेगा। उसके हाथ में कुछ भी सामर्थ्य न थी। उसने इसको बन्द कर दिया, वह ख्याल ही छोड दिया कि मैं कभी था, बात खत्म हो गयी। वह चार साल के पहले की याद नही करता। मजे की बात है, —हिप्नोटाइज करके आपको याद करवायी जा सकती है! चार साल के पहले की ही नही, माँ के पेट में भी जब आप थे, तब की भी स्मृति बनती है। अगर माँ गिर पडी हो आपकी, तो बच्चे को उसके पेट में स्मृति बनती है कि चोट पहुँची, वह भी याद करवायी जा सकती है। लेकिन साधारणत होश में वह स्मृति नही रहती।

तो इस तिलक को सुख के साथ जोडने का उपाय कारणपूर्वक है। जब भी सुख की कोई घटना घटे, तिलक कर दो। सुख याद रहेगा, साथ में तिलक भी याद रहेगा। और धीरे धीरे सुख अगर तीसरी आँख से सयुक्त हो जाय,—यहाँ लॉ आफ एसोसिएशन को थोडा समझ लें। पावलफ ने बहुत से प्रयोग किये। इस सदी में रूसी वैज्ञानिक पावलफ ने एसोसिएशन के ऊपर सर्वाधिक काम किया है। उसका कहना है, कोई भी चीज जोडी जा सकती है। सब जोड सहयोग के हैं। जैसे कि एक प्रयोग सबको पता है, कि पावलफ एक कुत्ते को खाना देगा। रोटी सामने रखेगा तो लार टपकेगी। तब वह घण्टी बजाता रहेगा। घण्टी से लार टपकने का कोई भी सबध नहीं है। कितनी ही घण्टी बजाइए, लार कैसे टपकेगी ? लेकिन रोटी रखी, लार टपकी, तब घण्टी बजायी। पन्द्रह दिन वह रोटी के साथ घण्टी बजाएगा, सोलहवें दिन रोटी हटा ली, सिर्फ घण्टी बजायी—लार टपकने लगी। हुआ क्या कुत्ते को ? घण्टी से लार का कोई भी नैसर्गिक सबध नही है। लेकिन अब सबध जुड गया। रोटी के साथ घण्टी एक हो गयी। घण्टी का बजना रोटी की याद बन गयी। रोटी की याद, चक्र शुरू हो गया उसके मन में रोटी का। लार टपकनी शुरू हो गयी। घण्टी प्रतीक की तरह आ गयी। वह रोटी का सिम्बल हो गयी। इसी कानून का उपयोग इस तिलक मे किया गया है।

आपके सुख के साथ तिलक को सदा जोडा है। जब भी सुख की कोई घटना

घटी कि तिलक और सुख को एक किया। धीरे धीरे तिलक और सुख इतने एक हो जायें कि तिलक को कभी भूला न जा सके, वह आपके स्मरण में टिक जाय, बैठ जाय; और जब भी सुख की याद आये, तब आज्ञाचक्र की याद आये। जब भी सुख की याद आये तब जो पहली याद आये, वह आज्ञाचक्र की याद आये। और सुख की हमें बहुत याद आती है। सुख, चाहे हुआ हो या न हुआ हो, उसकी याद में तो हम जीते हैं। जितना होता है उससे ज्यादा बड़ा करके याद करते रहते है पीछे। धीरे धीरे उसको इतना बडा कर लेते हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं। सुख को हम बडा करते रहते है, मैग्नीफाई करते रहते हैं। दुख को छोटा करते रहते हैं, एक ही नियम के अनुसार। आपकी प्रेयसी मिली थी, कितना सुख आया था! आज सोचेंगे तो बहुत बडा मालूम पडेगा। अभी मिल जाय तो पता चले! एक दम छोटा हो जाय, सिकुड जाय। और हो सकता है फिर चौबीस घण्टे बाद आप मैग्नीफाई करे, आहा, कितना आनन्द है! असल में इतना दुख है जीवन में कि अगर हम सुख को बडा न कर पायें तो जीना बहुत मुश्किल है। इसको बडा करके, रस ले-ले कर चलाते हैं। इधर पीछे बडा कर लेते हैं, उधर आगे आशा में बडा कर लेते हैं, और चलते हैं। तिलक के साथ सुख को जोडने का प्रयोजन है कि जब सुख बडा हो तो तिलक भी बडा हो जाय। इधर सुख की याद आये तो तिलक की भी याद आये। याद की इस चोट से धीरे धीरे सुख आज्ञाचक्र से जुड जाय, और यह हो जाता है। जब यह हो जाता है तब समझिये कि आपने सुख का उपयोग किया तीसरी आँख को जगाने के लिए। सब सुख की स्मृतियाँ आज्ञा के चक्र से जुड गयी। हम सुख की धारा का उपयोग कर रहे हैं, उसको चोट करने के लिए। यह चोट जितने मार्गों से पड सके, उतनी उपयोगी है।

जिन मुल्को में तिलक का उपयोग नही हुआ वे ऐसे मुल्क हैं जिनको 'थर्ड आई' का कोई पता नही है, यह आपको ख्याल होना चाहिए। जिन जिन मुल्को को तीसरी आँख का थोडा भी अनुमान हुआ उन्होने तिलक का उपयोग किया। जिन मुल्कों को कोई पता नही है, वे तिलक नही खोज पाये। तिलक खोजने का कोई आधार नही था। इसे समझ ले थोडा। यह आकस्मिक नही है कि कोई समाज उठे और एकदम से टीका लगाकर बैठ जाय। वह पागल नही है। अकारण, माथे के इस बिन्दु पर ही तिलक लगाने की सूझ का कोई कारण भी तो नही है, यह कही और भी तो लगाया जा सकता है। इसलिये आकस्मिक नही है, इसके पीछे कारण हो तो टिक सकता है।

और भी दो-तीन बातें आपसे इस संबध में कहूँ। आपने कभी ख्याल न किया होगा, जब भी आप चिन्ता में होते हैं तब आपकी तीसरी आँख पर जोर पड़ता है, इसलिए माथा पूरा का पूरा सिकुडता है। उसी जगह जोर पडता है, जहाँ तिलक है।

बहुत चिन्ता करने वाले, बहुत विचार करने वाले लोग, बहुत मननशील लोग, अनिवार्य रूप से माथे पर बल डालकर उस जगह की खबर देते हैं। और जिन लोगो ने, जैसा मैंने पीछे कहा, पिछले जन्मों में कुछ भी तीसरी आँख पर जोर किया है, उनके जन्म के साथ ही उनके माथे पर अगर आप हाथ फेरे तो आपको तिलक की प्रतीति होगी। उतना हिस्सा थोडा सा धँसा हुआ होगा। थोडा सा, किंचित, ठीक तिलक जैसा धँसा हुआ होगा। दोनों तरफ के हिस्से थोडे उभरे हुए होंगे, ठीक उस जगह पर जहाँ पिछले जन्मो में मेहनत की गयी है। और वह आप, अगूठा लगाकर, आँख बन्द कर के भी पहचान सकते हैं। वह जगह आपको अलग मालूम पड जायेगी। तिलक हो या टीका---टीका तिलक का ही विशेष उपयोग है। लेकिन दोनो के पीछे तीसरी आँख छिपी हुई है।

हिप्नोटिस्ट एक छोटा सा प्रयोग करते हैं। चारकाट फ्रांस में एक बहुत बडा मनस्विद हुआ है जिसने इस बात पर बहुत काम किये। आप भी छोटा सा प्रयोग करेंगे तो आपको भी चारकाट की बात ठीक से समझ में आ जायेगी। अगर आप किसी के सामने, उसके माथे पर दोनो आँखें गडाकर देखें, तो वह आदमी आपको गडाने न देगा। अगर आप किसी के माथे पर दोनो आँखें गडाकर देखें तो वह आदमी जितना क्रुद्ध होगा उतना और किसी चीज से नही होगा – पर वह अशिष्ट व्यवहार है, वह आप कर नही पायेंगे। सामने से तो वह स्थान बहुत निकट है, वह सिर्फ डेढ इंच के फासले पर है। अगर आप किसी के माथे पर, पीछे से भी दृष्टि रखें तो भी आप हैरान हो जायेंगे। रास्ते पर आप चल रहे हैं, कोई आदमी आपके आगे चल रहा है, आप ठीक जहाँ माथे पर यह बिन्दु है तिलक का, ठीक उसके आर-पार अगर हम एक छेद करे तो पीछे जहाँ से छेद निकलता हुआ मालूम पडे, अनुमान करके, उस जगह दोनो आँखे गडा ले। और आप कुछ ही सेकेंड आँख गडा पायेंगे कि वह आदमी लौटकर आपको देखेगा।

अगर आप ठीक से थोडे दिन अभ्यास करे और उस आदमी को सुझाव दे तो सुझाव भी वह आदमी मानेगा। समझ लें, आप उस आदमी के माथे पर गडाकर आँख, कुछ सेकेंड बिना पलक झपे देखे, वह आदमी पीछे लौटकर देखेगा। अगर वह आदमी लौटकर देखता है तब आप उसको आज्ञा भी दे सकते हैं। फिर दोबारा उस आदमी को आप कहें कि बाये घूम जाओ तो वह आदमी बायें घूमेगा, और बडी बेचैनी अनुभव करेगा। हो सकता है उसको दाये जाना हो। यह आप थोडा प्रयोग कर के देखेंगे तो हैरान हो जायेंगे। यह तो पीछे से है जहाँ से कि फासला बहुत ज्यादा है, सामने से तो बहुत हैरानी के परिणाम होते हैं। जितने लोग भी हल्के किस्म का शक्तिपात करते रहते हैं वह आपके इसी चक्र के कारण करते हैं और कुछ कारण

नहीं है। कोई साधु, कोई संन्यासी अगर शक्तिपात के प्रयोग करते रहते हैं लोगो पर, तो वह यही कि आपको आँख बन्द करके सामने बिठा लिया है। आप समझ रहे हैं, वह कुछ कर रहे हैं। वह कुछ नहीं कर रहे हैं। वह सिर्फ आपके ही माथे के इस बिन्दु पर दोनों आँखें गडाकर बैठे हैं, लेकिन आप तो आँख बन्द किये बैठे हैं। और इस बिन्दु पर जो भी आपको सुझाव दिया जायगा, आपको फौरन भाँति की प्रतीति हो जायेगी। अगर कहा जाय, भीतर प्रकाश ही प्रकाश है तो आपके भीतर प्रकाश ही प्रकाश हो जायेगा। इधर से आप गये कि वह विदा हो जायेगा। दो-चार दिन उसकी हल्की झलक रह सकती है, फिर समाप्त हो जाती है। वह कोई शक्तिपात वगैरह नही है। वह सिर्फ आपके आज्ञाचक्र का थोडा सा उपयोग है।

तृतीय नेत्र की अनूठी सपदा है, और इसके अपरिसीम उपयोग हैं। उसका सिर्फ सिम्बोलिक रूप तिलक है। जब यहा दक्षिण में पहली दफा ईसाई फकीर आये तो कुछ ईसाई फकीरो ने तो आकर तिलक लगाना शुरू कर दिया। आज से एक हजार साल पहले वेटिकन की अदालत में मुकदमे की हालत आ गयी। क्योकि यहां जिन ईसाई फकीरो को भेजा था उन्होने यहा आकर जनेऊ पहन लिया, तिलक भी लगाया और खडाऊ भी डाल ली। वह हिन्दू सन्यासी की तरह रहने लगे। वेटिकन की अदालत तक मामला गया कि यह तो बात गलत है। जिन फकीरो ने यह किया था, उन्होने उत्तर दिये, उन्होने कहा, यह गलत नही है। तिलक लगाने से हम हिन्दू नही हो रहे हैं। तिलक लगाने से तो सिर्फ हमें एक रहस्य का पता चला है, जिसका आपको पता नही है। खडाऊ को पहनकर हम हिन्दू नहीं हो गये। यह तो हमें पहली दफा हिन्दुओ की समझ का पता चला है कि ध्यान करते वक्त अगर लकडी पैर के नीचे हो तो, बिना लकडी के जो काम महीने में होगा, वह लकडी के साथ दिनो मे हो सकता है। हम हिन्दू नही हो गये हैं, लेकिन अगर हिन्दू कुछ जानते हैं तो हम नासमझ होंगे कि उसका उपयोग न करे। और निश्चित ही हिन्दू कुछ जानते है। कोई भी कौम जब बीस हजार साल से निरतर धर्म के सबध में खोज कर रही हो और कुछ भी न जानती हो, तो यह चमत्कार की बात होगी! बीस हजार साल जिसके मनस्वी पूरे जीवन को लगाकर एक ही दिशा में काम करते रहे हैं,– जिसके सारे मनीषी, सारे बुद्धिमान लोग हजार हजार साल तक एक ही दिशा में लगे रहे, एक ही जिनकी आकाक्षा रही हो कि किस भांति ससार में जो छिपा हुआ सत्य है, उसका पता चल जाय! वह जो अदृश्य है, वह दिखायी पड जाय, वह तो अरूप है उससे पहचान हो जाय, वह जो निराकार है उसमें प्रवेश हो जाय! बीस हजार साल तक जिनकी सारी मेधा ने, सारी प्रतिभा ने एक ही चेष्टा की हो, उनको कुछ भी पता न हो, यही बात आश्चर्य की है! कुछ पता हो यह बात बहुत आश्चर्य की नही है। क्योकि यह पता होना बिल्कुल स्वाभाविक है। लेकिन पिछले दो सौ साल में एक घटना घटी, जिससे हमको परेशानी हुई।

पिछले दो सौ साल में जो घटना घटी वह घटना हमारे ख्याल में न आवे तो वह परेशानी जारी रहेगी। इस देश के ऊपर सैकड़ो बार हमले हुए हैं लेकिन कोई हमलावर ठीक जगह पर हमला नहीं कर पाया। किसी ने धन लूट लिया, किसी ने जमीन पर कब्जा कर लिया, किसी ने मकान और महल ले लिये। लेकिन ठीक जो हमारा अन्तस्थल था, उस पर कोई हमला नही कर पाया। उसकी तरफ किसी का ध्यान ही नहीं गया। पहली बार पश्चिमी सभ्यता ने इस मुल्क के अन्तस्थल पर चोट करनी शुरू की। और वह चोट करने का जो सुगमतम उपाय था वह यह था कि आपके पूरे इतिहास को आपसे विच्छिन्न कर दिया जाय। आपके इतिहास में और आपके बीच में एक खाई पैदा हो जाय। बस फिर आप बिना जड़ के हो जायेंगे, अपरूटेड हो जायेंगे। फिर आपकी कोई ताकत न रह जायेगी। अगर आज पश्चिम की सभ्यता को नष्ट करना हो तो सारे पश्चिम के मकान गिराने की जरूरत नहीं है, और न सिनेमा घर गिराने की जरूरत है। और न पश्चिम की होटलें गिराने की जरूरत है। सिर्फ पश्चिम की पांच युनिवर्सिटीज को नष्ट कर दिया जाय, पश्चिम का कल्चर नष्ट हो जायेगा। पश्चिम की जो संस्कृति है, वह सिनेमा घर में, होटल में, और कोई नाइट क्लब में नही है। वे चलते रहे, इनसे कुछ लेना-देना नही है। सिर्फ पश्चिम की पाच केन्द्रीय बड़ी युनिवर्सिटिया नष्ट कर दी जाय, पश्चिम एकदम खो जायगा। दुनिया में असली जो आधार होता है संस्कृति का, वह उसके ज्ञान के सूत्र होते है। उसकी जड़ें होती हैं उन ज्ञान के सूत्रो की श्रृंखला में। ज्यादा देर की जरूरत नहीं है, सिर्फ दो पीढ़ी के इतिहास से वंचित कर दिया जाय तो आगे का मामला टूट जायेगा। आदमी और जानवर में यही फर्क है। जानवर कोई विकास नही कर पाते। क्या बात है? कुल इतनी सी बात है कि जानवरो के पास कोई स्कूल नही है। जानवर के पास कोई उपाय नही है कि अपनी नयी पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी का ज्ञान दे सके, बस और कोई बात नहीं है। जानवर का बच्चा जब पैदा होता है तो उसको वही से जिन्दगी शुरू करनी पड़ती है जहां से उसके बाप ने शुरू की थी। जब उसका बच्चा पैदा होगा, वह भी वही शुरू करेगा जहा उसके बाप ने शुरू की थी। आदमी शिक्षा के माध्यम से अपने बच्चे को वहा से जिन्दगी शुरू करवा देता है जहा खुद समाप्त करता है। इसलिए विकास होता है। सारा विकास पुरानी पीढ़ी के द्वारा नयी पीढ़ी को अपना संचित अनुभव देने में निर्भर है। सोचें, अगर बीस साल के लिए बूढ़े तय कर लें कि हम बच्चो को कुछ न बतायेंगे तो वह, बीस साल का नुकसान नही होगा, बीस हजार साल में जो इकट्ठा हुआ है, उसका नुकसान हो जायेगा। अगर बीस साल के लिए बूढ़े तय कर लें, पिछली पीढ़ी तय कर ले कि नयी पीढ़ी को कुछ भी नही बताना है तो आप यह मत सोचना कि बीस साल का ही नुकसान होगा और उसको बीस साल में पूरा किया जा सकेगा।

नहीं, बीस साल में जो नुकसान होगा उसको पूरा करने में बीस हजार साल लगेंगे। क्योंकि गैप खड़ा हो गया है। पुरानी पीढ़ियों का सब का सब डूब जायेगा।

इन दो सौ साल में भारत के लिए भारी गैप पैदा हुआ। जिसमें उसकी जो भी जानकारी थी उससे उसके सारे संबंध टूट गये। और उसके सारे संबंध एक नयी जानकारी से जोड़े गये जिसका पुरानी जानकारी से कोई संबंध नहीं था। सिर्फ हम सोचते ही हैं आज, कि हम बहुत पुरानी कौम हैं। सच बात यह है, हम दो सौ साल से ज्यादा पुरानी कौम नहीं हैं, अब हमसे अंग्रेज ज्यादा पुराने हैं। अब हमारे पास जो जानकारी है वह कचरा है, उच्छिष्ट है वह भी। जो पश्चिम हमको दे दे वह हमारी जानकारी है। दो सौ साल के पहले हम जो भी जानते थे वह सब का सब एकबारगी खो गया। और जब किसी चीज के सूत्र खो जांय तो मूढ़ता मालूम पड़ने लगती है। अब आप अगर ऐसे टीका लगा के निकल जाय तो शर्म लगती है। कोई भी पूछ ले कि क्या किया ये, कैसे टीका लगाये हो ? तो कहेंगे ऐसे ही, कुछ नही पिताजी नही माने। या क्या किया जाय फिर ? किसी तरह चलाना पड़ता है। आज आनंद और प्रफुल्लता से टीका लगाना बहुत मुश्किल है। हां, बुद्धि बिल्कुल न हो तो लगा सकते हैं। फिर कोई डर ही नही है। पर उसका भी कारण यह नही है कि आपको पता है इसलिए लगा रहे हैं।

ज्ञान के सूत्र जब गिर जाते हैं और उनका ऊपरी ढांचा रह जाता है तब ढोना बड़ा कठिन हो जाता है। और तब एक दुर्घटना घटती है कि जो सबसे कम बुद्धिमान होते हैं वह उसको ढोते हैं और जो बुद्धिमान होते हैं, वह दूर खड़े रहते हैं। यह दुर्घटना घटती है ! बुद्धिमान ही जब तक किसी चीज को लेकर चलता है, तभी तक वह सार्थक रहती है। और यह बड़े मजे की बात है कि जब भी दुर्घटना घटती है और ज्ञान के सूत्र खोते हैं तो बुद्धिमान सबसे पहले छँटकर अलग हो जाते हैं, क्योंकि वह बुद्धू बनने को राजी नहीं हैं। हां, जो बुद्धू है वह जारी रखता है, मगर वह उस ज्ञान को बचा नही सकता। उसका कोई उपाय नही है। वह कुछ दिन खीचेगा और समाप्त हो जायेगा। तो कई बार ऐसी घटना घटती है कि बड़ी कीमत की चीजें, जो नासमझ हैं, वह बचाये रखते हैं। और जो समझदार हैं पहले छोड़कर खड़े हो जाते हैं। जिन्दगी में बड़े दाव-पेंच हैं। अगर ठीक से हमे भारत के यह दो सौ साल का जो अन्तराल पड़ गया है वह पूरा करना हो, तो भारत मे आज जो जो काम बुद्धिहीन कर रहे हैं उसको वापस सोचने की जरूरत है—एक एक बिन्दु को। क्योंकि वह अकारण नही कर रहे हैं। उनके साथ बीस हजार साल की लंबी घटना है। वह नहीं बता सकते हैं कि क्यो कर रहे हैं ? इसलिए उन पर नाराज होने की कोई जरूरत नहीं है। किसी दिन हमको उन्हें धन्यवाद भी देना पड़ सकता है कि

कम से कम तुमने प्रतीक तो बचाया था, जिसकी पुन खोज की जा सकती है। तो आज भारत में जो बिल्कुल ग्रामीण और नासमझ, जिसको कुछ समझ नहीं है, कोई ज्ञान नहीं है, जिसको हम मूढ़ कह सकते हैं, वह जो जो कर रहा हो उसको फिर से उठाकर दो सौ साल के पहले के सूत्रों से जोडने की, और बीस हजार साल की समझ के साथ पुनरुज्जीवित करने की जरूरत है। और तब आप चकित हो जायेंगे। तब आप बिल्कुल हैरान हो जायेंगे कि हम बड़े आत्मघात में लगे हैं! ●

मूर्ति-पूजा

डाक्टर फ्रेंक रोडाल्फ ने अपना पूरा जीवन एक बहुत ही अनूठी प्रक्रिया की खोज में लगाया। उस प्रक्रिया के संबंध में थोड़ा आपसे कहू तो मूर्ति-पूजा को समझना आसान हो जायगा। पृथ्वी पर जितनी भी जगली जातिया है, आदिवासी है, वे सब एक छोटे से प्रयोग से सदा से परिचित रहे हैं। उस प्रयोग की खबरे कभी कभी तथाकथित सभ्य लोगो तक भी पहुच जाती हैं। रेडाल्फ ने उसी सबध में अपना पूरा जीवन लगाया और जिन नतीजो पर वह खोजी पहुचा है वे बडे अद्‌भुत है।

आदिवासियो में प्रचलित है यह बात कि किसी भी व्यक्ति की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उस व्यक्ति को कोई भी बीमारी भेजी जा सकती है। बीमारी ही नहीं, उसकी मृत्यु भी उसे भेजी जा सकती है। फ्रेंक रोडाल्फ ने अपने जीवन के तीस वर्ष इस खोज में लगाये कि इस बात में कितनी सचाई है। क्या यह हो सकता है कि एक व्यक्ति की मिट्टी की प्रतिमा बनायी जाय और उसे कोई भी बीमारी भेजी जा सके ? या उसकी मौत भी भेजी जा सके ? अत्यत सदेह से भरा चित्त लेकर, वैज्ञानिक की बुद्धि लेकर यह व्यक्ति अमेजान के आदिवासियो के बीच वर्षों तक रहा। बडी कठिनाई में पड गया वह, क्योंकि उसने घटना को सैकड़ो बार सामने घटते देखा। हजारो मील दूर भी कोई व्यक्ति हो, तो उसकी मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उस तक

विशेष बीमारियाँ, और उसकी मौत भेजी जा सकती है। वर्षों के अध्ययन के बाद यह तय हो गया कि यह घटना घटती है। लेकिन कैसे घटती है, इसके पीछे राज क्या है, इसके पीछे प्रक्रिया क्या है? रोडाल्फ ने लिखा है कि प्रक्रिया के संबंध में जो बातें मुझे पता चल सकी हैं और जिन पर मैंने स्वयं प्रयोग करके देख लिया है, वे तीन हैं—एक, मिट्टी की प्रतिमा जरूरी नहीं है कि उस व्यक्ति की शक्ल से बिल्कुल मिलती-जुलती बने। बनाना भी कठिन है, अति मुश्किल है। महत्वपूर्ण यह नहीं है कि उस शक्ल से मिले, महत्वपूर्ण यह है कि उस मिट्टी की प्रतिमा में उस व्यक्ति की शक्ल को प्रतिष्ठित किया जा सके। कोई मिट्टी की प्रतिमा बनाये आपकी, कोई बहुत बडा मूर्तिकार हो तब आप की शक्ल से मिला पाये, तब भी शायद पूरी न मिला पाये। लेकिन एक साधारण आदमी मिट्टी की प्रतिमा आपकी बनायेगा, तो वह सिर्फ प्रतीक होगी। चेहरा तो नहीं होगा—सिर होगा, हाथ-पैर होंगे, एक दूर का प्रतीक भर होगा। लेकिन रोडाल्फ का कहना है कि अगर वह व्यक्ति आंख बन्द करके आपकी पूरी की पूरी प्रतिमा को मन में स्मरण कर सके और उसको इस मिट्टी की प्रतिमा पर आरोपित कर सके, तो यह प्रतिमा आपका प्रतीक बनकर सक्रिय हो जायेगी। उसे प्रतिस्थापित करने की भी व्यवस्था है।

मैंने पीछे तिलक के सबंध में आपसे कहा था कि दोनो आंखो के बीच मे, तीसरी आंख की संभावना के संबध में योग का निष्कर्ष है। वह जो तीसरी आंख है आपकी, वह बहुत बडी आज्ञा की शक्ति रखती है अपने में। ऐसा समझ सकते हैं कि बहुत बडा ट्रांसमीशन का केन्द्र है। अगर आप अपने बेटे को या अपने नौकर को या किसी को कोई आज्ञा देते हैं, बाप अपने बेटे को कहता है फलां काम कर लाओ, और बेटा इन्कार करता है तो आप थोडा प्रयोग करके देखना। अगर आप दोनो आंखो के बीच में अपने ध्यान को केन्द्रित करके बेटे को कहें कि फलां काम कर लो, तब आप देखना कि दस में से नौ मौको पर उसका इन्कार करना असंभव हो जायेगा। इससे उल्टा भी करके आप देखना कि आंखो के बीच में ध्यान को केन्द्रित मत करना, तो दस में से नौ मौकों पर इन्कार करना संभव हो जायेगा। अगर आप अपनी दोनो आंखों के बीच में ध्यान को केन्द्रित करके कोई भी बात फेंकें, तो वह साधारण शक्ति नहीं, असाधारण शक्ति लेकर गतिमान हो जाती है। किसी व्यक्ति की प्रतिमा को मन में रखकर, उसकी छोटी प्रतिमा को ध्यान में लेकर आज्ञा के चक्र से, अगर गीली मिट्टी के बनाये हुए लोंदे पर फेंक दिया जाय, तो वह गीली मिट्टी का लोंदा साधारण मिट्टी का लोंदा नहीं रह जाता। वह आपकी आज्ञा से संक्रामित और आविष्ठ हो जाता है। अगर उस मिट्टी की प्रतिमा की दोनो आंखो के बीच में आप ध्यान करके कोई भी बीमारी का स्मरण कर सकें, सिर्फ एक मिनट, तो वह व्यक्ति उस बीमारी

से सम्मोहित हो जायेगा। वह कितनी ही दूर हो, इसका कोई सवाल नहीं उठता। उसकी मृत्यु तक घटित हो सकती है।

रोडाल्फ ने अपने पूरे जीवन के अध्ययन के बाद यह लिखा है कि यह बात सुनने में हैरानी की लगती थी, लेकिन अब मैंने इसके प्रयोग देखे तो चकित रह गया। वृक्षो की प्रतिमा बनाकर, आदिवासियो ने उसके सामने वृक्षों को तत्काल सूखने पर मजबूर कर दिया। वह वृक्ष, जो अभी हराभरा था, उसके पत्ते कुम्हला गये। वह वृक्ष जो अभी जीवित मालूम पड़ता था, इस प्रक्रिया पर रुग्ण हो गया। पानी डालते रहे, पानी सींचते रहे, किसी तरह का नुकसान वृक्ष को बाहर से नहीं पहुचने दिया गया, लेकिन महीने भर में वृक्ष सूखकर नष्ट हो गया। जो वृक्ष पर हो सकता है, वह व्यक्ति पर भी हो सकता है। रोडाल्फ की इस प्रक्रिया की इसलिए मैं बात करना चाहता हू कि मूर्ति-पूजा भी इसी प्रक्रिया का एक विराट आयाम में प्रयोग है। अगर हम व्यक्तियों को बीमार कर सकते हैं, व्यक्तियो की मृत्यु ला सकते है तो कोई कारण नहीं है कि हम उन व्यक्तियो से, जो मृत्यु के पार जा चुके हैं, उनसे पुनः सबध स्थापित न कर सकें। और सबध है कि इस जगत में जो विराट व्याप्त है उस विराट के निकट पहुचने के लिए हम कोई छलांग मूर्ति से ले सकें!

मूर्ति-पूजा का सारा आधार इस बात पर है कि आपके मस्तिष्क मे और विराट परमात्मा के मस्तिष्क में सबध हैं। दोनो के सबंध को जोड़ने वाला बीच में एक सेतु चाहिए। संबंधित हैं आप, सिर्फ एक सेतु चाहिए। वह सेतु निर्मित हो सकता है। उसके निर्माण का प्रयोग ही मूर्ति है। और निश्चित ही वह सेतु मूर्ति ही होगी, क्योंकि आप अमूर्त से सीधा कोई सबध स्थापित न कर पायेंगे। आपको अमूर्त का तो कोई पता ही नहीं है। चाहे कोई कितनी ही बात करता हो निराकार परमात्मा की, अमूर्त परमात्मा की, वह बात ही रह जाती है, आपको कुछ ख्याल में नही आता। असल में आपके मस्तिष्क के पास जितने अनुभव है वे सभी मूर्त के अनुभव है, आकार के अनुभव हैं। निराकार का आपको एक भी अनुभव नही है। और जिसका कोई भी अनुभव नहीं है उस सबध में कोई भी शब्द आपको कोई स्मरण न दिला पायेगा। निराकार की बात आप करते रहेंगे और आकार में जीते रहेंगे। अगर उस निराकार से कोई सबध स्थापित करना हो, तो कोई ऐसी चीज बनानी पड़ेगी जो एक तरफ से आकार वाली और दूसरी तरफ से निराकार वाली हो। यही मूर्ति का रहस्य है। इसे मैं फिर से समझा दू आपको। कोई ऐसा सेतु बनाना पड़ेगा जो हमारी तरफ आकार वाला हो, परमात्मा की तरफ निराकार हो जाय। हम जहा खड़े हैं वहा एक छोर उसका मूर्त हो, और जहा परमात्मा है उधर दूसरा छोर उसका अमूर्त हो जाय, तो सेतु बन सकता है। अगर वह मूर्ति बिल्कुल मूर्ति है

तो फिर सेतु नहीं बनेगा। अगर वह मूर्ति बिल्कुल अमूर्त है तो भी सेतु नहीं बनेगा। मूर्ति को दोहरा काम करना पड़ेगा। हम जहां खड़े हैं वहां उसका छोर दिखायी पड़, और जहां परमात्मा है वहां निराकार में खो जाय। इसलिए यह मूर्ति-पूजा शब्द बहुत अद्भुत है, इसका जो अर्थ मैं आपसे कहूंगा, वह आपके ख्याल में कभी भी नहीं आया होगा।

अगर मैं ऐसा कहूं कि मूर्ति-पूजा शब्द बड़ा गलत है, तो आपको बड़ी कठिनाई होगी। असल में मूर्ति-पूजा शब्द बिल्कुल ही गलत है। गलत इसलिए है कि जो व्यक्ति पूजा करना जानता है, उसके लिए मूर्ति मिट जाती है। और जिसके लिए मूर्ति दिखायी पड़ती है उसने कभी पूजा की नहीं है, उसे पूजा का कोई पता नहीं है। मूर्ति-पूजा शब्द में हम दो शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं—एक पूजा का और एक मूर्ति का। ये दोनो एक ही व्यक्ति के अनुभव में कभी नहीं आते। इनमें मूर्ति शब्द तो उन लोगों का है जिन्होंने कभी पूजा नहीं की, और पूजा उनका है जिन्होंने कभी मूर्ति नहीं देखी। अगर इसे दूसरी तरह से कहा जाय तो ऐसा कहा जा सकता है कि पूजा, मूर्ति को मिटाने की कला है। जो मूर्ति है, आकार वाली, उसको मिटाने की कला का नाम पूजा है। उसके मूर्त हिस्से को गिराते जाना है, गिराते जाना है! थोड़ी ही देर में वह अमूर्त हो जाता है। थोड़ी ही देर में इस तरफ जो मूर्त हिस्सा था, वहां से शुरुआत होती है पूजा की, और जब पूजा पकड़ लेती है साधक को, तो थोड़ी ही देर में वह छोर खो जाता है और अमूर्त प्रगट हो जाता है। मूर्ति-पूजा शब्द 'सेल्फ कण्ट्राडिक्टरी' है। इसलिए जो पूजा करता है, वह हैरान होता है कि मूर्ति कहां है? और जिसने कभी पूजा नहीं की वह कहता है कि इस पत्थर को रखकर क्या होगा? इस मूर्ति को रखकर क्या होगा? यह दो तरह के लोगों के अनुभव हैं, जिनका कहीं तालमेल नहीं हुआ। इसलिए दुनिया में बड़ी तकलीफें हुईं।

आप मंदिर के पास से गुजरेंगे तो मूर्ति दिखायी पड़ेगी, क्योंकि पूजा के पास से गुजरना आसान नहीं है। आप कहेंगे कि पत्थर की मूर्तियों से क्या होगा? लेकिन उस मंदिर के भीतर कोई एक मीरा अपनी पूजा में लीन हो गयी है, उसके लिए वहां कोई मूर्ति नहीं बची। पूजा घटित होती है, मूर्ति विदा हो जाती है। मूर्ति सिर्फ प्रारंभ है। जैसे ही पूजा शुरू होती है, मूर्ति खो जाती है। वह जो हमें दिखायी पड़ती है वह इसीलिए दिखायी पड़ती है कि हमें पूजा का कोई पता नहीं है। दुनिया में जैसे जैसे पूजा कम होती जायगी, वैसे वैसे मूर्तियां बहुत दिखायी पड़ेंगी, और जब बहुत मूर्तियां दिखायी पड़ेंगी, तो पूजा कम हो जायगी और मूर्तियों को हटाना पड़ेगा, क्योंकि इन पत्थरों को रख कर क्या करियेगा? उनका कोई प्रयोजन नहीं है। साधारणत लोग सोचते हैं कि जितना पुराना आदमी होता है, जितना आदिम, उतना

मूर्तिपूजक होता है । जितना आदमी बुद्धिमान होता चला जाता है, उतना मूर्ति को छोड़ता चला जाता है । सच नहीं है यह बात । असल में पूजा का अपना विज्ञान है । जितना ही हम उससे अपरिचित होते चले जाते हैं, उतनी ही कठिनाई होती चली जाती है ।

इस सबंध में एक बात और कह देना आपको उचित होगा । हमारी यह दृष्टि नितांत ही भ्रांत और गलत है कि आदमी ने सभी दिशाओं में विकास कर लिया है । इवोल्यूशन हो गया है । आदमी की जिन्दगी इतनी बडी चीज है कि अगर आप एकाध चीज में विकास कर लेते हैं तो आपको पता ही नहीं चलता कि आप किसी दूसरी चीज में बहुत पीछे छूट जाते हैं । अगर आज विज्ञान पूरी तरह विकसित है, तो धर्म के मामले में हम बहुत पीछे छूट गये हैं । कभी धर्म विकसित होता है, तो विज्ञान के मामले में पीछे छूट जाते हैं। कभी ऐसा होता है कि एक आयाम में अगर हम कुछ जान लेते हैं, तो दूसरे आयाम को भूल जाते हैं। १८८० में यूरोप में अल्टामीरा की गुफाएं मिली । उन गुफाओ में बीस हजार साल पुराने चित्र थे और रग ऐसा कि जैसे कल साझ को चित्रकार ने किया हो । डॉन मार्सिलानो, जिसने वह गुफाए खोजी, सारे यूरोप में बदनामी हुई उसकी । लोगो ने यह शक किया कि अभी इसने पोतवाकर रग तैयार करवा लिये हैं, अभी गुफा मे रग पोते गये हैं । जो भी चित्रकार देखने गया उसी ने कहा कि यह मार्सिलानो की धोखाधडी है । इतने ताजे रग पुराने तो हो ही नही सकते । उन चित्रकारो का कहना भी ठीक ही था, क्योकि वान गॉग के चित्र सौ साल पुराने नही हैं, लेकिन वे सब फीके पड गये हैं । पिकासो ने अपनी जवानी में जो चित्र रगे थे, उसके बूढे होने के साथ वे चित्र भी बूढे हो गये । आज सारी दुनिया के किसी भी कोने मे, चित्रकार जिन रगो का प्रयोग करते हैं, उनकी उम्र सौ साल से ज्यादा नही है । सौ साल में वे फीके हो ही जाने वाले हैं । लेकिन जब मार्सिलानो की खोज पूरी तरह सिद्ध हुई, और उन गुफाओ का निर्णायक रूप से निष्कर्ष निकल गया कि वे बीस हजार साल से पुरानी हैं, तो बडी मुश्किल हो गयी । क्योकि जिन लोगो ने वे रग बनाये होगे, निश्चित ही रग बनाने के सबध मे वे हमसे बहुत विकसित रहे होगे । हम आज चाद पर पहुच सकते हैं, लेकिन सौ साल से ज्यादा चलने वाला रग बनाने में हम अभी समर्थ नही हैं । यह थोडी हैरानी की बात मालूम पडती है । और बीस हजार साल पहले जिन लोगो ने वे रग बनाये होगे, वे कुछ कीमिया जानते थे, जिसका हमें बिल्कुल पता नही है ।

इजिप्ट की ममीज हैं, कोई दस हजार साल पुरानी । वह आदमी के शरीर हैं । वह जरा भी नही खराब हुए हैं । वह ऐसे ही रखे हैं, जैसे कल रखे गये हो । और आज तक भी राज नही खोला जा सका है कि किस रासायनिक द्रव्यो का उप-

कैम किया गया था जिससे लाशें इतनी सुरक्षित, दस हजार साल तक रह सकीं। वैज्ञानिक कहते हैं, वह ठीक वैसी ही हैं, जैसे कल आदमी मरा हो। किसी तरह का डिटीरिओरेशन, किसी तरह का उनमें ह्रास नहीं हुआ है। पर हम साफ नही कर पाये अभी तक, कि कौन से द्रव्यो का उपयोग हुआ है। इजिप्ट के पिरामिडो पर जो पत्थर चढ़ाये गये हैं, अभी भी हमारे पास कोई क्रेन नही है जिनसे हम उन्हें चढ़ा सकें। आदमी के तो वश की बात ही नही है, लेकिन जिन लोगो ने वे पत्थर चढ़ाये थे उनके पास क्रेन रही होगी, इसकी सभावना कम मालूम होती है। जरूर उनके पास कोई और टेकनीक, कोई तरकीबें रही होगी, जिनसे वह पत्थर चढ़ाये गये हैं और जिनका हमें कोई अन्दाज नही है। जीवन के सत्य बहु आयामी है। एक ही काम बहुत तरह से किया जा सकता है। एक ही काम तक पहुचने की बहुत सी टेकनीक और बहुत सी विधिया हो सकती हैं। फिर जीवन इतना बड़ा है कि जब हम एक दिशा में लग जाते हैं तो हम दूसरी दिशाओ को भूल जाते हैं।

मूर्ति बहुत विकसित लोगो ने पैदा की थी। यह सोचने जैसा है। क्योकि मूर्ति, जो कास्मिक फोर्स है, हमारे चारो तरफ, जो ब्रह्म शक्ति है, उससे सबधित होने का सेतु है। जिन लोगो ने भी मूर्ति विकसित की होगी, उन लोगो ने जीवन के परम रहस्य के प्रति सेतु बनाया था। हम कहते है कि हमने बिजली खोज ली है। निश्चित ही हम उन कौमो से ज्यादा सभ्य हैं जो बिजली नही खोज सकी। निश्चित ही हमने रेडियो वेव्ज खोज लिये हैं और हम क्षणो में एक खबर को दूसरे मुल्क में पहुचा पाते हैं। निश्चित ही जो लोग सिर्फ अपनी आवाज पर निर्भर करते हैं और चिल्लाकर फर्लांग दो फर्लांग तक आवाज पहुचा पाते हैं, उनसे हम ज्यादा विकसित हैं। लेकिन जिन लोगों ने जीवन की परम सत्ता के साथ सबध जोडने का सेतु खोज लिया था, उनके सामने हम बहुत बच्चे है। हमारी बिजली, हमारा रेडियो और हमारे अन्य आविष्कार सब खिलौने है। जीवन के परम रहस्य से जुडने की जो कला है, उसकी खोज, किसी एक दिशा में जिन लोगो ने बहुत मेहनत की थी, उसका परिणाम थी।

जैसा मैंने अभी कहा, मूर्ति का प्रयोजन है। मनुष्य की तरफ आकार हो उसमें, और उस आकार में से कही एक द्वार खुलता हो जो निराकार मे ले जाता हो। जैसे मेरे घर की खिडकी है। घर की खिडकी तो आकार वाली ही होगी। जब घर ही आकार वाला है, तब खिड़की निराकार नही हो सकती। लेकिन खिड़की खोल कर जब आकाश में झाकने कोई जाये तो निराकार में प्रवेश हो जाता है। और अगर मैं किसी को कहू कि मै अपने घर की खिडकी को खोलकर निराकार के दर्शन कर लेता हू और यदि दूसरे आदमी ने कभी खिडकी से झाककर आकाश को न देखा हो तो वह कहेगा, कैसी पागलपन की बात है! इतनी छोटी सी खिडकी से

निराकार का दर्शन कैसे होता होगा ? इतनी छोटी सी खिड़की से जिसका दर्शन होता होगा वह ज्यादा से ज्यादा खिड़की के बराबर ही हो सकता है, उससे बड़ा कैसे होगा ? उसकी बात तर्कयुक्त है। अगर उसने खिड़की से झांक कर कभी आकाश नहीं देखा है तो उसको राजी करना कठिन होगा। हम उसे समझा न पायेंगे कि छोटी सी खिड़की भी निराकार आकाश में खुल सकती है। खिड़की का कोई बन्धन उस पर नहीं लगता, जिस पर वह खुलती है। मूर्ति का कोई बंधन अमूर्त के ऊपर नहीं है। मूर्ति तो सिर्फ द्वार बन जाती है अमूर्त के लिए। जिन लोगों ने भी समझा कि मूर्ति, अमूर्त के लिए बाधा है उन्होंने दुनिया में बड़ी नासमझी पैदा करवायी। और जिन्होंने यह सोचा कि हम खिड़की को तोड़कर आकाश को तोड़ देंगे, वह तो फिर निपट ही पागल हैं। मूर्ति को तोड़कर हम अमूर्त को तोड़ देंगे, तो फिर उनके पागलपन का कोई हिसाब ही नहीं! लेकिन मूर्ति को तोड़ने का ख्याल उठेगा, अगर पूजा की कला और कीमिया का पता न हो।

दूसरी बात, पूजा कुछ ऐसी चीज है, सब्जेक्टिव, आंतरिक, निजी कि उसकी कोई अभिव्यक्ति और कोई प्रदर्शन नहीं हो सकता। जो भी निजी है इस जगत में, और आंतरिक है, उसका कोई प्रदर्शन संभव नहीं है। मेरे हृदय को काट कर देखा जा सकता है तो प्रेम उसमें नहीं मिलेगा। क्रोध भी नहीं मिलेगा, घृणा भी नहीं मिलेगी, क्षमा भी नहीं मिलेगी, करुणा भी नहीं मिलेगी। फेफड़ा मिलेगा, सिर्फ फुफ्फुस मिलेगा, जो हवा को पम्प करने का काम करता है। और अगर आपरेशन की टेबल पर रखकर मेरे हृदय की सब जांच पड़ताल करके डाक्टर यह सर्टिफिकेट दे दें कि इस आदमी ने कभी प्रेम का अनुभव नहीं किया, घृणा का अनुभव नहीं किया, क्योंकि हमने आपरेशन की टेबल पर सब जांच पड़ताल कर ली है, सिवाय हवा को फेंकने के पम्प के और कुछ भी नहीं है भीतर, तो क्या मेरे पास कोई उपाय होगा कि मैं सिद्ध कर सकूं कि मैंने प्रेम किया ? या मेरी बात वह टेबल के आस-पास खड़े हुए डाक्टर मानने को राजी होंगे ? कठिन है मामला। डाक्टर इतना ही कह सकते हैं कि आपको भ्रम पैदा हुआ होगा। मैं उनसे यह जरूर पूछ सकता हूं कि आपको कभी प्रेम और घृणा का अनुभव हुआ है ? अगर वे तर्कयुक्त हैं तो वे कहेंगे कि हमें भी इस तरह के भ्रम हुए हैं, इल्यूजंस हुए हैं। बाकी टेबल पर जो रखा है वह वास्तविक तथ्य है। यहां सिर्फ हवा को फेंकने का फुफ्फुस है भीतर, हृदय जैसी कोई भी चीज नहीं है।

आंख का आपरेशन करके सारा उपाय कर लिया जाय तो भी इसका कोई पता नहीं चलता कि भीतर सपने देखे गये होंगे। अगर हम एक आदमी की आंख का पूरा यंत्र खोलकर टेबल पर रख लें, तो भी हमें अनंतकाल तक खोज करने पर भी

इसका पता नहीं चलेगा कि इस आँख ने रात को बन्द हालत में कोई सपने भी देखे होंगे। लेकिन हम सबने सपने देखे हैं। उन सपनों का अस्तित्व कहां है? या तो हमने झूठे सपने देखे, लेकिन झूठे सपने कहने का क्या मतलब होता है? झूठे हैं, तो भी देखे तो हैं ही। वह घटे तो हैं ही। कितने ही असत्य रहे हों, तो भी वह घटना तो हमारे भीतर हुई है। और कितना ही झूठा सपना रहा हो, अगर जोर से घबराहट पैदा हो गयी है, और जागकर पाया है तो हृदय धड़कता हुआ पाया है। और कितना ही झूठा सपना रहा हो, अगर उसमें रोये हैं और आंख खोलकर देखी है तो आंख में आंसू पाये हैं। कुछ भीतर घटा तो है ही। लेकिन आंख के कण कण को भी तोड़कर देख लें पर इसका कोई पता नहीं चलता कि भीतर सपने जैसी कोई घटना घटती है। सब सब्जेक्टिव है, आंतरिक है, कोई बाह्य प्रदर्शन संभव नहीं है।

मूर्ति तो दिखायी पडती है, उसका बाह्य प्रदर्शन हो सकता है, वह आंख की तरह है। वह फेफड़े की तरह है। पूजा दिखायी नहीं पड सकती। वह प्रेम की तरह है, वह भीतर देखे गये स्वप्न की तरह है। इसलिए जब आप मंदिर के पास से जाते हैं तो आपको मूर्ति दिखायी पड़ती है, पूजा तो कभी दिखायी नही पडती। इसलिए अगर मीरा को आपने किसी मूर्ति के आगे नाचते देखा है तो सोचा होगा, पागल है। स्वभावत, क्योंकि पूजा तो दिखायी नही पडती है उसकी इसलिए किसी भ्रम में वह है, पत्थर के सामने नाचती है, पागल है!

रामकृष्ण को पहली दफा जब दक्षिणेश्वर के मंदिर में पुजारी की तरह रखा गया तो दो-चार, आठ दिन में ही बडी बडी चर्चाएं कलकत्ते में फैलनी शुरू हो गयी। कमेटी के पास लोग गये, ट्रस्टियो के पास लोग गये और कहा कि इस आदमी को अलग कर दो। क्योंकि हमने गलत बातें सुनी हैं। हमने सुना है कि वह फूल को पहले सूंघ लेता है, फिर मूर्ति को चढ़ाता है। और हमने यह भी सुना है कि प्रसाद को पहले चख लेता है और फिर प्रसाद चढाता है। यह तो पूजा भ्रष्ट हो गयी। रामकृष्ण को कमेटी ने बुलाया और कहा कि यह क्या कर रहे हैं आप? हमने सुना है कि फूल आप पहले सूंघ लेते हैं, फिर परमात्मा को चढाते हैं। और भोग आप पहले खुद लगा लेते हैं, फिर परमात्मा को चढ़ाते हैं? रामकृष्ण ने कहा, हां, क्योंकि मैंने मेरी मा को देखा है। वह खाना बनाती थी तो पहले खुद चख लेती थी तब मुझे देती थी। वह कहती थी कि पता नहीं, तुझे देने योग्य बना भी कि नहीं। तो मैं बिना चखे नही चढा सकूंगा। और फूल जब तक मैं न सूंघ लूं तो मैं कैसे चढ़ाऊं? पता नहीं, सुगंधित है भी या नही। पर उन्होंने कहा, तब तो सारी पूजा का विधान टूट जायेगा? रामकृष्ण ने कहा, कैसी बात करते हैं, पूजा का कोई विधान होता है, प्रेम का कोई विधान होता है? कोई कांस्टीट्यूशन होता

है ? कोई विधि होती है ? जहा विधि होती है, वही पूजा मर जाती है। जहा विधान हो जाता है, वही प्रेम मर जाता है। यह तो आतरिक उद्‌भाव है, अत्यत निजी, अत्यन वैयक्तिक ! फिर भी उसमे एक युनिवर्सल, एक सार्वभौम तथ्य है जो पहचाना जा सकता है। जब एक प्रेमी प्रेम करता है और जब दूसरा प्रेमी प्रेम करता है तो दोनो ही प्रेम करते हैं, फिर भी दो ढग मे करते है। उनमे बड़े गहरे फर्क होते हैं और फिर भी गहराई मे एक समानता होती है। उन दोनो के प्रेम की अपनी निजता, इंडीवीजुएलिटी होती है, फिर भी दोनो के प्रेम के भीतर कही एक ही आत्मा का वास होता है।

मैं कह रहा था, पूजा तो दिखायी नही पडेगी, मूर्ति दिखायी पडेगी। और हम एक शब्द बनाये हैं, मूर्ति-पूजा, जो बिल्कुल ही गलत है। पूजा है मूर्ति को मिटाने का ढग ! अब यह बात बडी अजीब लगती है। क्योंकि भक्त पहले मूर्ति बनाता है। फिर भक्त मूर्ति मिटाता है। मिटाता है बडे चिन्मय अर्थों मे, बनाता है बडे मृण्मय अर्थों मे। बनाता है मिट्टी मे और मिटाता है परम सत्ता मे। इसलिए एक और बात का आपको ख्याल दिला दू।

इस देश मे हजारो साल तक हमने मूर्तिया बनायी और विसर्जित की। अब भी हम मूर्तिया बनाते और विसर्जित करते हैं। कई दफा तो मन को बडी हैरानी होती है। न मालूम कितने लोगो ने मुझे आकर कहा होगा। इतनी सुन्दर काली की प्रतिमा बनाते हैं और फिर इसको पानी मे डाल आते हैं। गणेश को बिठाते हैं, बनाते हैं, सजाते हैं इतना प्रेम प्रगट करते हैं और एक दिन उठा कर तालाब मे डुबा देते हैं। पागलपन ही हुआ न निपट ? पर इस विसर्जन के पीछे एक बडा ख्याल है। असल मे पूजा का रहस्य ही यह है कि बनाओ और विसर्जित करो। इधर बनाओ मूर्ति आकार मे, और मिटाओ निराकार मे। यह तो प्रतीक है सिर्फ। काली को बनाया है पूजा है, फिर नदी मे डाल आते हैं। आज हमे तकलीफ होती है डाल आने मे। क्योंकि हमे पता ही नही है इस बात का कि बनाकर अगर हमने पूजा की होती, तो हमने एक और गहरे अर्थों मे पहले ही विसर्जन कर दिया होता। लेकिन वह तो हमने किया नही। मूर्ति बनाकर रखी, सजायी, बहुत सुन्दर बनायी, फिर पीडा होती है उसको डुबाने जब जाते हैं, क्योंकि बीच मे जो असली काम था वह तो हुआ नही। नही, अगर बीच मे पूजा की घटना घट जाती तो मूर्ति बनी रहती और हमारे हृदय ने उसे विसर्जित कर दिया होता—परमात्मा मे। और तब, जब हम उसे डुबाने जाते नदी मे तो वह चली हुई कारतूस की तरह होती, उसके भीतर कुछ न होता। काम तो उसका हो चुका होता। लेकिन आज जब आप मूर्ति को डुबाने जाते है तो वह चली हुई कारतूस नही होती है, भरी हुई कारतूस होती है।

कुछ नहीं गया उसका। सिर्फ भरकर रख ली थी कारतूस, और डुबाने जा रहे हैं, तो पीड़ा होनी स्वाभाविक है। जो लोग उसको डुबा आये थे इक्कीस दिन के बाद, उन्होंने इक्कीस दिन में कारतूस चला ली थी। वह इक्कीस दिन में उसको विसर्जित कर चुके थे। पूजा है विसर्जन। मूर्ति का छोर तो हमारी तरफ है, जहा से हम यात्रा शुरू करेंगे। और पूजा वह विधि है, जहां से हम आगे बढ़ेंगे। मूर्ति पीछे छूट जायेगी फिर शेष पूजा ही रह जायेगी। (मूर्ति पर जो रुक गया उसने पूजा नही जानी। पूजा पर जो चला गया, उसने मूर्ति को पहचाना। इस मूर्ति के पीछे, इस मूर्ति के प्रयोग में, इस पूजा में क्या मूल आधार सूत्र है?

एक, जिस परम सत्य की खोज में आप चले है, या परम शक्ति की खोज में चले है, उसमें छलाग लगाने के लिए कोई जपिंग बोर्ड, कोई जगह तो चाहिये, जहा से आप छलाग लगायेंगे। उस परम के लिए कोई जगह की जरूरत नही है, पर आपको तो खड़े होने के लिए जगह की जरूरत पड़ेगी, जहा से आप छलाग लगायेंगे। माना कि सागर में कूद चले है, सागर है अनत, पर आप तो तट के किसी किनारे पर खड़े होकर ही छलाग लेंगे न? छलाग लेने तक तो तट पर ही होंगे न? छलाग लेते ही तट के बाहर हो जायेंगे। लेकिन पीछे लौटकर तट को इतना धन्यवाद तो देंगे न, कि तुझसे ही हमने अनत में छलाग ली थी। उल्टा दीखता है। साकार से निराकार में छलाग हो सकती है? अगर तर्क में सोचने जायेंगे, तो गलत है बात। साकार से निराकार में छलाग कैसे होगी? साकार तो और साकार में ही ले जायेगा। कृष्णमूर्ति से पूछेंगे तो वह कहेंगे, नही होगी छलाग। साकार से निराकार में छलाग कैसे होगी? शब्द से नि शब्द में कैसे कूदियेगा। नही, पर सब छलागें साकार से निराकार में होती हैं। क्योकि गहरे में साकार, निराकार के विपरीत नही है, निराकार का ही एक हिस्सा है और अविभाजित हिस्सा है। विभाजित हमे दिखायी पड़ता है। हमारी देखने की क्षमता सीमित है, इसलिए। अन्यथा अविभाज्य है।) जब हम सागर के किनारे खड़े होते है और तट को देखते है तो स्वभावत हमें लगता है कि तट सागर से अलग है। वह जो दूसरा तट है सागर के उस पार, बहुत बहुत दूर, वह अलग है। अगर ऐसा सोचते है तो फिर हमे पता नही है। तो थोड़ा हमें सागर में नीचे उतर कर देखना चाहिए, तो हम पायेंगे, यह तट और दूसरा तट नीचे से जुड़े है। अगर हम वैज्ञानिक की भाषा में सोचें, ठीक ठीक भाषा में सोचें, तो एक बहुत मजेदार घटना पता चलेगी। सागर मे मिट्टी है पूरी तरह, और मिट्टी में सागर सब जगह छिपा है। मिट्टी में गड्ढा खोदिये वही पानी निकल आता है। सागर में गड्ढा खोदिये, मिट्टी निकल आयेगी। अगर इसको ठीक वैज्ञानिक भाषा में कहें तो इसका मतलब हुआ कि सागर में मिट्टी की मात्रा जरा कम और पानी की मात्रा जरा ज्यादा है। और मिट्टी में, मिट्टी की जमीन में,

मिट्टी की मात्रा जरा ज्यादा और पानी की मात्रा जरा कम है। फर्क मात्रा का है, डिग्रीज का है। पर दोनो अलग जरा भी नहीं हैं। सब संयुक्त है। जिसको हम साकार कहते हैं, वह भी निराकार से सयुक्त है। जिसको हम निराकार कहते हैं, वह साकार से सयुक्त है। और हम साकार में खडे हैं। मूर्ति की दृष्टि, इस सत्य को स्वीकार करके चलती है कि हम साकार में खडे हैं। वह हमारी स्थिति है। उसको इन्कार करने का उपाय नही है। और हम जहां खडे हैं, वही से यात्रा शुरू हो सकती है। ध्यान रहे, हमें जहां होना चाहिए वहां से यात्रा शुरू नही होती। हम जहा हैं वही से यात्रा शुरू हो सकती है। बडी तार्किक दृष्टियां वहा से शुरू करती हैं यात्रा, जहा हमें होना चाहिए। जो हम हैं ही नही, वहा से यात्रा शुरू कभी नहीं हो सकती। यात्रा तो जहा हम हैं, वही से शुरू होगी।

(हम कहा हैं ? हम मूर्त में जी रहे हैं। हमारी सारी अनुभव की सम्पदा मूर्त की सम्पदा है। हमने कुछ भी ऐसा नही जाना जो मूर्त न हो। आकार वाला न हो। हमने सब आकार में जाना है। प्रेम किया है तो आकार को, और घृणा की है तो आकार को, आसक्त हुए हैं तो आकार मे और अनासक्ति साधी है तो आकार में। मित्र बने हैं तो आकार में और शत्रु बनाये हैं तो आकार में। हमने जो भी किया है वह आकार है। मूर्ति इस सत्य को स्वीकार करती है। और इसलिए अगर हमें निराकार की यात्रा पर निकलना है तो हमे निराकार के लिए भी आकार देना पडेगा।) निश्चित ही ये आकार अपनी अपनी प्रतिमा के आकार होंगे। किसी ने महावीर मे निराकार को अनुभव किया है, किसी ने कृष्ण में निराकार को अनुभव किया है, किसी ने जीसस मे निराकार के दर्शन किये हैं। जिसने जीसस मे निराकार के दर्शन किये हैं, जिसने जीसस की आखो में झाका, वह दरवाजा मिल गया उसे, जिससे खुला आकाश दिखायी पडता है। जिसने जीसस का हाथ पकडा, थोडी देर में वह हाथ मिट गया और अनत का हाथ, हाथ में आ गया। जिसने जीसस की वाणी सुनी, और शब्द नही शब्द के जो पार है, उसकी प्रतिध्वनि हृदय मे गूज गयी, वह अगर जीसस की मूर्ति बनाकर पूजा में लग सके तो निराकार में छलाग के लिए उसे इससे ज्यादा आसान कोई और बात न हो सकेगी। किसी को कृष्ण में दिखायी पडा है, किसी को बुद्ध में, किसी को महावीर मे। और सबसे पहले हमे 'किसी' में ही दिखायी पडेगा, यह स्मरण रखें। सबसे पहले हमे सीधा, शुद्ध निराकार दिखायी नही पड जायगा। शुद्ध निराकार को देखने की हमारी क्षमता और पात्रता नही है। निराकार भी बध कर ही आयेगा कही तभी हमें दिखायी पडेगा। अवतार का यही अर्थ है—निराकार का बधा हुआ रूप, निराकार की सीमा। उल्टा लगता है, पर यही अर्थ है अवतार का। एक झरोखा, जहां से बडा आकाश दिखायी पड जाता है—एक झलक ! निराकार से सीधी मुलाकात नही होगी। पहले तो

कहीं आकार मे ही उसकी प्रतीति होगी। फिर जिस आकार में उसकी प्रतीति हो जाय, उस आकार से बार बार उसी प्रतीति में उतरना आसान हो जायेगा।

बुद्ध को जिसने देखा है, बुद्ध की प्रतिमा को देखते ही प्रतिमा भूल जायेगी और बुद्ध सजीव हो उठेंगे। जिसने बुद्ध को चाहा है और प्रेम किया है, उसके लिए ज्यादा देर नही लगेगी कि यह पत्थर की प्रतिमा विलीन हो जाय और सजीव व्यक्तित्व स्थापित हो जाय। तो बुद्ध हो, कि महावीर हो, कि कृष्ण हो, कि क्राइस्ट हो, वे सब अपने पीछे व्यवस्थाए छोड गये है। जिन व्यवस्थाओ से उनको चाहने वाला व्यक्ति कभी भी उनसे पुन सबधित हो जाय। और आकार बहुत बडी व्यवस्था है। मूर्ति को बनाने की जो कला है या विज्ञान है, उसमे बहुत सी बातो का ख्याल और हिसाब रखा गया है। अगर उतनी सारी बातो के हिसाब और ख्याल से मूर्ति बनायी गयी हो तो गहरे परिणाम ले आयेगी। जैसे, दो-तीन बाते ख्याल कर लेने जैसी है

अगर आपने बुद्ध की प्रतिमाए देखी है तो बुद्ध की प्रतिमाओ को, हजारो प्रतिमाओ को देखकर भी एक बात पक्की अनुभव मे आ जायेगी कि प्रतिमाए व्यक्ति की कम, और किसी भाव दशा की ज्यादा है। बुद्ध की हजार प्रतिमाए रखी हो तो वे व्यक्ति की कम, किसी भाव दशा की, स्टेटस आफ माइड की प्रतिमाए है। अगर बुद्ध को गौर से देखेगे, बुद्ध की प्रतिमा पर ध्यान करेगे तो थोडी ही देर मे एहसास होना शुरू हो जायेगा एक अद्भुत अनुकपा का! एक महाकरुणा का! जो आपको चारो तरफ से घेरने लगेगी। बुद्ध का उठा हुआ हाथ, या बुद्ध की आधी मुदी हुई पलकें, बुद्ध के चेहरे का अनुपात, बुद्ध के बैठने का ढग, बुद्ध के मुडे हुए पैर, बुद्ध की जो सारी आनुपातिक व्यवस्था है वह व्यवस्था, किसी गहरे में आपके भीतर करुणा से सबध जोडने का उपाय है।

कोई पूछ रहा था फ्रास के एक बहुत बडे चित्रकार से कि तुम यह चित्र बनाते हो, किसलिए? तो उस ने कहा कि इसलिए चित्र बनाता हू कि मेरे हृदय में जो भाव था, खोजता हू कि उस भाव के लिए आकार क्या होगा? और आकार बना देता हू। अगर कोई उस आकार पर ठीक से ध्यान करे तो वह उस भाव को उपलब्ध हो जायेगा जो मेरे भीतर था। आप जब किसी चित्रकार का चित्र देखते हैं तो सिर्फ आकार देखते है, आपको ख्याल भी नही होता इस बात का कि तब चित्रकार की आत्मा आपके भीतर उतर जाती है। एक कागज पर कोई आडी-टेढी लकीरे खीच दे, तो सिर्फ आडी-टेढी लकीरे नही होती। अगर आप उनपर ध्यान करें तो आपके भीतर भी चित्र उतना ही आडा-टेढा हो जायेगा। क्योकि चित्त का एक नियम है कि वह जो देखता है, उसके अनुरूप प्रतिध्वनित होता है, रिजोनेंट होता है। अगर उतनी ही लकीरे, आडी-टेढी न खीची जाय और एक विशेष अनु-

पात में खीची जाय तो आपका चित्त उनको देखकर उस विशेष अनुपात को उपलब्ध होता है।

एक फूल को देखकर आपको जो खुशी उपलब्ध होती है, आपको पता भी नही होगा कि वह फूल की कम, फूल की पखुडियो के अनुपात की है। फूल के होने का जो ढग है वह आपके भीतर आपके हृदय को भी फूल के होने का ढग देता है। अगर एक सुन्दर व्यक्ति के चेहरे को देखकर आपको आकर्षण पैदा होता है तो उसका कुल कारण इतना ही नही है कि उस व्यक्ति का चेहरा किसी हिसाब से सुन्दर है। गहरे मे असली कारण यह है कि उस व्यक्ति का सुन्दर चेहरा आपके भीतर सौंदर्य का रिजोनेंस पैदा करता है। आपके भीतर भी कोई चीज उस सुन्दर के साथ सुन्दर हो उठती है, और कुरूप के साथ कुरूप हो जाती है। कुरूप व्यक्ति के पास बैठकर आपको जो परेशानी होती है वह क्या परेशानी है? सुन्दर व्यक्ति के पास बैठकर आपको जो सुखद प्रतीति होती है वह कौन सी प्रतीति है? असल मे सुन्दर अनुपात आपके भीतर भी सौंदर्य की धारा को बहाता है और आपको सुन्दर बना जाता है। कुरूप का अर्थ ही केवल इतना है, गैर आनुपातिक, नान प्रपोर्सनेट, आडा-तिरछा, जिससे भीतर कोई समरस ध्वनि पैदा नही होती, सगीत पैदा नही होता, विशृखलता पैदा होती है, अराजकता पैदा होती है, भीतर सब कपित हो जाता है।

जर्मनी का एक चित्रकार, एक दिन आत्महत्या करके मरा। निजिस्की उसका नाम था। जब उसने आत्महत्या की और उसके घर की जाच-पडताल हुई तो जो लोग भी उसके घर में गये वे दस-पन्द्रह मिनट के बाद बाहर आ गये और कहा कि उसके घर मे जाना ठीक नही है। वहा कोई भी आदमी इतने दिन रुक जाय तो आत्महत्या कर लेगा। बडी अजीब सी बात थी। उस घर के भीतर क्या होगा? निजस्की ने एक एक दीवाल को इस तरह से चित्रित किया था--जहा सिर्फ दो ही रगो का उपयोग किया था उसने अपने आखिरी दो साल मे—सुर्ख और काला। एक एक दीवाल, फर्श, छत सब पुती हुई, पर रग सिर्फ काला और लाल। दो साल से वह यही काम कर रहा था भीतर। पागल हो गया था, आश्चर्य नही। और आत्महत्या भी कर ली तो आश्चर्य नही। जिन लोगो ने उसके मकान को देखा, उन सभी लोगो ने कहा कि उस मकान के भीतर दो साल कोई भी रह जाय तो पागल होकर रहेगा। और आत्महत्या करने मे दो साल तक बच जाय तो यह भी काफी है। निजिस्की अद्भुत हिम्मत का आदमी रहा होगा। सारा का सारा वातावरण, पूरा का पूरा इतना अराजक था कि जिसका कोई हिसाब नही।

आप जो भी देखते है उसकी प्रतिध्वनि भीतर होती है और आप किसी गहरे अर्थों में उसी जैसे हो जाते है। बुद्ध की सारी मूर्तिया करुणा के आसपास निर्मित

है, क्योंकि करुणा बुद्ध का आंतरिक संदेश है, कम्पैशन ! और करुणा आ जाय, तो बुद्ध कहते हैं, सब आ गया। करुणा का क्या अर्थ ? प्रेम नहीं है करुणा का अर्थ। प्रेम तो हम सबको आता है और चला जाता है। करुणा ऐसे प्रेम का नाम है जो आती तो है, लेकिन फिर जाती नहीं। और प्रेम में तो दूसरे से कुछ न कुछ पाने की, गहरे में सूक्ष्म आकांक्षा होती है। करुणा में इस बात का बोध होता है कि किसी के पास कुछ देने को ही नहीं है तो कोई देगा कैसे ? प्रत्येक इतना दीन है कि देने को किसी के पास कुछ नहीं है। इसीलिए करुणा है। करुणा में कोई मांग नहीं है, क्योंकि किससे मागें, किसी के पास कुछ भी नहीं है। इस भाव दशा में दान का कोई ख्याल नहीं है, लेकिन इतनी महाकरुणा के आविर्भाव में अपने आप हृदय के द्वार खुल जाते हैं और स्वत: ही कुछ बटना शुरू हो जाता है।

बुद्ध ने अपने भिक्षुओ को कहा था कि तुम ध्यान करो, पूजा करो, प्रार्थना करो, लेकिन स्मरण रखना, पूजा और प्रार्थना और ध्यान के बाद तुम्हें जो शांति मिले, तत्क्षण उसे बांट देना। एक क्षण भी अपने पास मत रखना। तुम्हें मैं अधार्मिक कहूंगा, अगर तुमने एक क्षण भी अपने पास रखा। जब तुम्हें आनन्द का अनुभव हो ध्यान के बाद, तत्क्षण प्रार्थना करना कि हे प्रभु, उन सबको मिल जाय जिन्हे आवश्यकता है। खोल देना अपना द्वार हृदय का और बह जाने देना जहा जहा गड्ढे हैं वहा वहा। यह जो महाकरुणा है, इसी को बुद्ध ने महामुक्ति कहा है।

तो बुद्ध की सारी प्रतिमाएँ इस अनुपात में निर्मित की गयी है कि उनकी पूजा करने वाला व्यक्ति उनके सान्निध्य में बैठकर उस रिजोनेन्स को, उस प्रतिध्वनि को उपलब्ध हो जाय जहाँ से करुणा का प्रवाह अनुभव करने लगे। आप बुद्ध की प्रतिमा के पास बैठकर पूजा करेंगे तो कैसे करेंगे ? मै एक उदाहरण ले रहा हूँ, ताकि आपको और भी ख्याल आ सके। अगर बुद्ध की प्रतिमा पर पूजा करनी है, तो पूजा का केन्द्र बुद्ध का हृदय बनाना पडेगा। जिसको यह पता नही है, वह बुद्ध की मूर्ति से कभी भी परिचित नही हो पायेगा। क्योंकि बुद्ध की मूर्ति का जो निहित ध्येय है वह आपके भीतर महाकरुणा का जन्म है। और करुणा का जो केन्द्र है वह हृदय है। इसलिए बुद्ध की मूर्ति पर ध्यान करते वक्त बुद्ध के हृदय पर ध्यान रखना पडेगा। एक तरफ बुद्ध के हृदय पर ध्यान रखना पडेगा और दूसरी तरफ अपने हृदय पर ध्यान रखना पडेगा। दोनो के हृदय एक साथ धडक रहे हैं, इसकी प्रतीति में गहरा उतरना पडेगा, और एक क्षण आयेगा कि अपना ही हृदय धडकता हुआ मालूम नही पडेगा, बल्कि अपने ही हृदय से जैसे एक धागा जुडा हो और बुद्ध की प्रतिमा के भीतर भी हृदय धडकता हो ऐसा लगेगा। यह सिर्फ मालूम ही नही पडेगा, बुद्ध की प्रतिमा पर ठीक हृदय की धडकन खुली आँख से भी अनुभव होने लगेगी। और जब ऐसी धडकन

बुद्धि की प्रतिमा पर अनुभव हो, तो समझना कि बुद्ध में प्राण की प्रतिष्ठा हुई। नही तो प्राण की प्रतिष्ठा नहीं है, और पूजा का कोई अर्थ नहीं है। बुद्ध का हृदय, पत्थर की मूर्ति का हृदय आपको बिल्कुल धड़कता हुआ मालूम पड़ सकता है, पड़ता है। अगर अपने हृदय की धड़कन पर ठीक ध्यान किया गया और बुद्ध के हृदय पर ध्यान किया गया तो दोनो में संयोग स्थापित हो जाता है। तब आपका हृदय बुद्ध की प्रतिमा में भी धड़कता है, ठीक वैसे ही जैसे दर्पण में आपकी प्रतिछबि दिखायी पड़ती हो। दर्पण में आपने ख्याल किया कभी? दर्पण में जो आपकी तस्वीर दिखायी पड़ती है उसका हृदय धड़कता है या नहीं धड़कता है? पर दर्पण में धड़कता है तो हम कहते हैं ठीक है, दर्पण तो दर्पण है। मूर्ति भी गहरे अर्थों में दर्पण है, आध्यात्मिक अर्थों में दर्पण है। और ठीक वैसे ही मूर्ति में हृदय धड़कता हुआ मालूम पड़ने लगेगा। हृदय न धड़के तब तक पूजा की शुरुआत नहीं हो सकती, क्योंकि मूर्ति तब तक पत्थर है। तब तक मूर्ति नहीं बनी, जब तक कि जीवन्त न हो गयी हो, जब तक उसमे प्राण प्रतिष्ठा न हो गयी हो।

बुद्ध की प्रतिमा पर अगर ध्यान करना है तो हृदय पर करना पड़ेगा। अगर महावीर की प्रतिमा पर ध्यान करना है तो दूसरा केन्द्र है। अगर क्राइस्ट की प्रतिमा पर ध्यान करना है तो तीसरा केन्द्र है। अगर कृष्ण की प्रतिमा पर ध्यान करना है तो चौथा केन्द्र है। और दुनिया में जितनी प्रतिमाएँ हैं, प्रत्येक प्रतिमा किसी पृथक केन्द्र पर निर्मित है। बड़ी हैरानी की बात यह है कि उन प्रतिमाओ को हजारो साल तक एक समाज पूजता रहेगा और उसे कोई पता नही होगा कि वह किस केन्द्र की प्रतिमा को पूज रहा है! यदि केन्द्र का पता नहीं है तो आपका प्रतिमा से कभी कोई सम्बन्ध नही होगा। आप फूल रखकर आ जायेंगे, धूप जला आयेंगे, हाथ जोड़कर घर लौट आयेंगे, तो समझिये आप पत्थर के सामने से ही लौट आये। ध्यान रहे, पत्थर को प्रतिमा बनाना पड़ता है! वह मूर्तिकार नही बनायेगा, वह आपको बनाना पड़ेगा! मूर्तिकार तो सिर्फ आकार देगा पत्थर को। पर उसको प्राण कौन देगा? प्राण—पूजा करने वाला देगा!

मूर्ति को प्राण दिये बिना वह पत्थर है। प्राण दिये जाने के बाद पूजा का प्रारम्भ होता है। पूजा क्या है? अगर आप किसी मूर्ति को प्राण देने मे समर्थ हो जायें तो फिर पूजा क्या है? फिर पूजा क्या होगी! जैसे ही मूर्ति को प्राण दिया जा सके वैसे ही वह जीवन्त व्यक्तित्व हो गया। इसको थोड़ा समझना जरूरी होगा। जैसे ही कोई चीज जीवन्त हो जाय, उसमें आकार और निराकार दोनो समाविष्ट हो जाते है। क्योंकि देह तो आकार है और जीवन निराकार है। जीवन का कोई आकार नही है। देह का आकार है। मेरा हाथ कोई काट दे तो मेरा जीवन नही कटता।

अगर मेरी आँखे बन्द हो, और मेरे शरीर से मेरे पूरे सम्बन्ध तोड दिये गये हो, और मेरा हाथ काट दिया जाय तो मुझे कभी पता नही चलेगा। ऐसा किया जा सकता है कि मेरे मस्तिष्क को पूरा का पूरा निकाल लिया जाय बाहर, और उसे बिल्कुल पता न चलेगा कि शरीर अलग हो गया, क्योकि जीवन का कोई आकार नही है। जीवन निराकार है। जहाँ भी जीवन है वहाँ आकार और निराकार का मिलन है। पदार्थ का आकार है, चेतना का कोई आकार नही। जबतक मूर्ति पत्थर है, तबतक आकार है, और जैसे ही उसको प्राण दिया, प्रतिष्ठा हुई और भक्त ने अपने हृदय को मूर्ति मे धडकाया, कि मूर्ति जीवन्त हुई। ध्यान रहे, जो भक्त अपने हृदय को मूर्ति मे न डाल सकेगा वह भक्त परमात्मा के हृदय को अपने मे डालने की पात्रता न पा सकेगा। पात्रता ही यही है। जैसे ही भक्त अपने हृदय को मूर्ति मे डालपाता है और मूर्ति जीवत हो जाती है, वैसे ही मूर्ति दोनो बाते हो गयी--- एक तरफ आकार रहा और दूसरी तरफ से निराकार का द्वार खुल गया। उस द्वार से यात्रा करने का नाम पूजा है।

पूजा के सबध मे पहली बात तो यह कि वह है मूर्त से अमूर्त की यात्रा। उसके एक एक कदम है। बुनियादी आधारभूत कदम पूजा का है--कि व्यक्ति सेल्फ सेटर्ड है, स्व केन्द्रित है। हमारे जीने की सारी व्यवस्था ऐसी है कि जैसे 'मैं' सारी दुनिया का केन्द्र हूँ। चाँद-तारे मेरे लिए घूम रहे है, पक्षी मेरे लिए उड रहे है सूरज मेरे लिए निकलता है। इस सारे जगत का केन्द्र हूँ 'मैं'। साधारण व्यक्ति, जिसने पूजा को नही जाना, स्व केन्द्रित होकर जीता है। कुछ भी हो, मै केन्द्र पर हूँ, बाकी सारा विश्व मेरी परिधि है। यही हमारी सब की दृष्टि है। पूजा मे इस दृष्टि के विपरीत चलना पडेगा। पूजा का सार सूत्र है---केन्द्र कही और है, मै परिधि हूँ। अधार्मिक आदमी का सार सूत्र है---मै केन्द्र हूँ और सब जगह परिधि है। अगरपरमात्मा भी कही होगा तो वह परिधि पर है, केन्द्र मै हूँ। वह भी मेरे लिए है। जब मै बीमार हो जाऊँ तो मेरी बीमारी ठीक कर दे, मेरे लडके को नौकरी न मिले तो नौकरी लगवा दे। किसी मुसीबत मे पड जाऊँ तो मेरा सहारा बन जाय। वह भी मेरे लिए है। ध्यान रहे, जिस आदमी ने इस भाँति सोचा हो कि परमात्मा मेरे लिए है, उसकी आस्तिकता, नास्तिकता से ज्यादा बदतर है। उसे ख्याल ही नही, वह क्या कह रहा है। पूजा का अर्थ है, प्रार्थना का अर्थ है, धार्मिक भाव का अर्थ है कि अब तू केन्द्र हुआ और मै परिधि हूँ। जैसे ही मूर्ति जीवत हो गयी और उसका हृदय धडकने लगा, जैसे ही यह प्रतीत हुआ कि मूर्ति में प्राण आ गये, निराकार प्रवेश कर गया, वैसे ही जो दूसरा बुनियादी सूत्र है वह यह है, कि अब मै परिधि पर हूँ। अब मै तेरे लिए नाचूगा, तेरे लिए गाऊँगा, तेरे लिए जिऊँगा, तेरे लिए श्वास लूँगा। अब जो कुछ भी होगा, तेरे लिए होगा। तू केन्द्र है।

रामकृष्ण के पास एक बहुत बडा ज्ञानी ठहरा हुआ था तोतापुरी। तोतापुरी ने रामकृष्ण से कहा, तू कबतक मूर्ति में उलझा रहेगा ? अब निराकार की यात्रा पर निकल! तो रामकृष्ण ने कहा, जरूर निकलूँगा। रामकृष्ण सबसे सीखने को सदा तैयार हैं। जो भी सिखाने आ जाता था उससे सीखने को तैयार थे। रामकृष्ण ने कहा, जरूर निकलूँगा लेकिन जरा रुको। मैं जरा माँ को भीतर जाकर पूछ आऊँ। तोतापुरी ने कहा, कौन माँ ? रामकृष्ण ने कहा, काली है न जो, उससे मैं जरा पूछ आऊँ। तोतापुरी ने कहा, यही तो मैं तुम्हें कह रहा हूँ कि पत्थर मे कबतक उलझे रहोगे ? और तुम वही पूछने जा रहे हो ? तो रामकृष्ण ने कहा, बिना पूछे तो कोई उपाय नही। क्योंकि जिस दिन पूजा शुरू हुई थी मैं परिधि पर हो गया हूँ और माँ को केन्द्र पर रख लिया है। अब तो बिना पूछे कोई उपाय नही, अब तो मैं हूँ ही नही। अब तो मैं जो भी कर सकता हूँ वह उसी के लिए है। उसकी आज्ञा हो गयी तो ठीक और उसकी आज्ञा नही हुई तो ठीक। उसकी बिना आज्ञा के मोक्ष भी अब व्यर्थ है और उसकी आज्ञा हो नर्क के लिए भी, तो मैं राजी हूँ। उससे बिना पूछे अब कुछ भी नही हो सकता है। तोतापुरी के तो समझ के बाहर पडी बात। मूर्ति-पूजा छोडने के लिए मूर्ति से पूछने जायेंगे रामकृष्ण, तो कैसे छूटेगी मूर्ति-पूजा ? जिसको छोडना है उससे पूछना क्या है ? और छोडने के लिए पूछना पडता है ? रामकृष्ण तबतक भीतर चले गये हैं। तोतापुरी पीछे पीछे जाकर खडे हो गये हैं। देखा कि रामकृष्ण की आँखों से तरल आँसुओं की धार बहती है। वह रो रहे हैं और बार बार कह रहे हैं कि नहीं, आज्ञा दे दे। फिर रोते हैं कहते हैं, नहीं, आज्ञा दे दे। तोतापुरी राह देखते होंगे, आज्ञा दे दे। फिर प्रसन्न हो गये, फिर नाचने लगे हैं। तोतापुरी ने कहा, क्या हुआ ? कहा, आज्ञा मिल गयी। अब राजी हूँ। अब कोई सवाल नही है। केन्द्र पर रखने का अर्थ है अब से मेरा जीवन समर्पित जीवन होगा। पूजा का अर्थ है समर्पित जीवन! पूजा का अर्थ है, अब मैं ऐसे जिऊँगा जैसे परमात्मा के लिए जी रहा हूँ। उठूँगा-बैठूँगा उसके लिए, खाऊँगा-पिऊँगा उसके लिए, बोलूँगा, चुप होऊँगा उसके लिए।

केन्द्र पर जैसे ही किसी ने निराकार को रखा, वैसे ही एक अद्भुत प्रवाह शुरू होता है। एक फैलाव शुरू होता है। हम अपने ही हाथ से सिकुड कर बैठे हैं। बीज टूट जाता है और वृक्ष बनने लगता है। हम सिकुड कर बैठे हैं, सब तरफ से दबा कर बैठे हैं--'मैं'। वह टूट जाता है। फिर बडे अंकुर निकलते हैं और फैलने शुरू हो जाते हैं। फिर वे अंकुर इतने फैल सकते हैं कि पूरे विराट को घेर ले। और बडे आश्चर्य की बात है, और धर्म ऐसे बहुत से आश्चर्यों से भरा हुआ है, कि जो व्यक्ति अपने को बचाता है वह मिटा लेता है और जो अपने को खो देता है वह अपने को पा लेता है। यह पूजा का आधार है। परमात्मा को रखना है केन्द्र पर, स्वयं को रख देना है परिधि

पर। बहुत कठिन है। हमें ख्याल ही नहीं होता है कि यह कैसे हो सकेगा, क्योंकि हम पैदा होते से ही अपने को केन्द्र मानकर जीते हैं।

बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे कि तुम आकर कुछ दिन मरघट में रह आओ। तीन महीने तो अनिवार्य था। कोई भिक्षु सन्यास ले, तो उसे तीन महीने मरघट में रहना पड़े। भिक्षु कहते भी कि हम आपके पास सीखने आये हैं, मरघट से क्या होगा? बुद्ध कहते, पहले तुम मरघट में रहो। तीन महीने बाद तुम आ जाना। उससे तुम्हारे 'मैं' का केन्द्र शिथिल हो जाय तो आसानी होगी। तीन महीने रोज सुबह-साँझ कोई आयेगा, कोई मरेगा, कोई जलेगा और तुम देखते रहोगे, देखते रहोगे! कभी तीन महीने में एकाध दिन तो ख्याल आयेगा कि तुम्हारे लिए यह जगत नही चल रहा है। तुम नही थे तब भी चल रहा था। यह आदमी जो तुम्हारे सामने जल रहा है, यह अभी थोड़ी देर पहले इसी ख्याल में था कि जगत मेरे लिए चल रहा है। जगत को पता भी नही चला, यह आदमी समाप्त हो गया है! सागर को खबर भी नही हुई और लहर मिट गयी! तुम देखते रहना, किसी भी दिन, जिस दिन तुम्हें ख्याल आ जाय कि यह जगत तुम्हारे लिए नहीं चल रहा है—तुम आ जाना। उसी दिन आराधना शुरू हो सकेगी। उसी दिन साधना शुरू हो सकेगी। जब तक तुम केन्द्र पर हो तब तक पूजा का, प्रार्थना का, ध्यान का कोई भी उपाय नही है। भ्रांति लेकिन बहुत मजबूत है। पूजा शुरू होती है इस भ्रांति के विसर्जन से। इसलिए पूजा में 'मैं' शब्द गिर जाता है और 'तू' शब्द महत्त्वपूर्ण हो जाता है। तू ही है, यह महत्त्व पूर्ण हो जाता है।

ध्यान रहे, पहले भक्त मूर्ति को मिटाता है और अमूर्त का द्वार खोलता है। फिर अपने को मिटाता है और पूजा में प्रवेश होता है। मूर्ति के भीतर से अमूर्त का द्वार खोल लेने पर स्वयं को मिटाना सरल हो जाता है। सरल इसलिए हो जाता है कि जैसे ही यह दिखायी पड़ता है कि एक पत्थर की मूर्ति भी अमूर्त के लिए द्वार बन गयी और निराकार को दिखाने लगी तो मैं भी निराकार के लिए द्वार बन सकता हूँ। मूर्ति को भूला तो निराकार दिखायी पड़ा। अब स्वयं को भूलूं तो और भी गहरी छलांग लग सकती है। ध्यान रहे, दो आकारो मे तो भेद होता है लेकिन दो निराकारो मे कोई भेद नही होता। सच तो यह है कि दो का शब्द आकार के लिए ही प्रयोग करना ठीक है, निराकार के लिए दो कहने का कोई अर्थ नही। निराकार एक ही होता है। जब मूर्ति निराकार हो गयी और भक्त भी निराकार हो गया तो दो निराकार नही बचते, एक ही निराकार हो जाता है। निराकार में सख्या का उपाय नही है। आकार या सख्या, यह तो आधार है। लेकिन आधार को व्यवहृत करने की, उसको प्रयोग में लाने की अनेक विधियाँ हैं।

दो-चार सूत्र समझ लेने जैसे हैं। जैसे—सूफियों ने पूजा के लिए नृत्य को गहरा मूल्य दिया। भक्तों ने भी दिया। मीरा ने, चैतन्य ने बहुत मूल्य दिया। नृत्य की कुछ खूबियाँ हैं जिनके कारण अनेक अनेक भक्ति की साधनाओं ने नृत्य को चुना। नृत्य की पहली खूबी तो यह है कि नृत्य करते समय अधिकतम यह प्रतीति होती है कि आप शरीर नहीं हैं। नृत्य की जो गति है, जो मूवमेंट है, उस तीव्र गति में, थोड़ी ही देर में आप और आपके शरीर का साथ छूट जाता है। असल में आपकी चेतना और आपके शरीर का साथ, एक अडजेस्टमेंट है। एक संयोजित व्यवस्था है। आप जो काम दिन-रात करते रहते हो सुबह से साँझ तक, उस काम करने में वह संयोग कभी नहीं टूटता है, वह व्यवस्थित है।

गुरजिएफ कहा करता था, जैसे किसी डिब्बे में बहुत सी चीजें रखी हों और कोई जोर से डिब्बे को हिला दे तो उसके भीतर का सब अरेंजमेंट, भीतर की सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है। कोई पत्थर का टुकड़ा नीचे था, वह ऊपर आ जाता है, कोई ऊपर था वह बीच में चला जाता है, कोई बीच में था वह किनारे चला जाता है। उस डिब्बे के भीतर चीजों का जो समायोजन था वह सब अस्त-व्यस्त हो जाता है। अगर उस डिब्बे के पत्थरों को एक ही तरह से रहने की आदत से कोई अहंकार पैदा हो गया हो, कि हम हैं, वह टूट जाता है। उनको पता चलता है कि 'मैं नहीं हूँ' यह तो सब टूट गया! यह तो सिर्फ व्यवस्था थी। यह एक अरेंजमेंट था।

तो सूफियों ने, चैतन्य ने, मीरा ने, नृत्य का गहरा उपयोग किया। और दरवेश नृत्य तो बहुत ही गहरे हैं। इतने जोर से गति देना है शरीर को, कि फकीर की जितनी सामर्थ्य हो, जितनी ऊर्जा हो, जितनी शक्ति हो पूरी दाँव पर लगा देनी है। शरीर का रोयाँ रोयाँ नाचने और काँपने लगे। उस स्थिति में, हमारी चेतना और शरीर के बीच में जो संबंध स्थापित हो गया है, वह टूट जाता है। अचानक पता चलता है कि शरीर अलग है, और मैं अलग हूँ। पूजा के लिए इसका उपयोग कीमती हो जाता है।

ईसाइयों के दो सम्प्रदाय हुए हैं—एक सम्प्रदाय अब भी काफी बड़ी प्रभावशाली शक्ति रखता है—क्वेकर्स। एक दूसरा सम्प्रदाय था, शेकर्स। ये नाम सूचक हैं। शेकर्स उस सम्प्रदाय का नाम था जो शरीर को शेक इतने जोर से करते, इतने जोर से शरीर को कपाते थे पूजा के वक्त, कि उनका नाम शेकर्स पड़ गया। शरीर को इतने जोर से कपाना कि रोयाँ रोयाँ कंपन बन जाय, ट्रेम्बलिंग हो जाय। पसीना-पसीना हो जाएगा साधक! मूर्ति के सामने खड़ा है और सारे शरीर को कम्पन दे रहा है। कम्पन इतना तीव्र है कि थोड़ी ही देर में सारे शरीर से पसीने की धाराएँ बहने लगेंगी। और वह घटना घटेगी जहाँ शरीर से चेतना अलग मालूम पड़ेगी।

जब अलग मालूम पड़े तो पूजा पर चली आ सकती है। क्वेकर्स नाम भी इसीलिए पड़ा—क्वेकिंग का अर्थ भी वही होता है। भूकम्प को कहते हैं। आप अर्थक्वेक। इतने जोर से शरीर मे भूकम्प पैदा करना है कि शरीर के भीतर का जो आयोजन है वह टूट जाय। इस प्रकार नृत्य का उपयोग किया गया पूजा मे अनेक अनेक ढगो से। और नृत्य ने भारी सहायता पहुँचायी है स्वय के भीतर निराकार को अलग कर लेने के लिए। सगीत, भजन और कीर्तन का भी इसी भाँति उपयोग हुआ है।

ध्वनिशास्त्र का कुछ थोड़ा सा रूप ख्याल में ले लेना जरूरी है। फिजिक्स, भौतिकशास्त्र जैसा मानता है उसके हिसाब से, जीवन की जो आखिरी इकाई है, वह विद्युत है। लेकिन भारतीय और पूर्वीय मनीषी मानते रहे हैं कि पदार्थ की जो अतिम इकाई है, वह ध्वनि है, विद्युत नही। आधुनिक विज्ञान मानता है कि विद्युत, पदार्थ की अतिम रचना का आखिरी हिस्सा है जिससे सारी चीजे बनी हैं, —इलेक्ट्रान्स। पूर्वीय मनीषी मानते हैं कि ध्वनि, समस्त पदार्थ का आधारभूत हिस्सा है। दोनो मे से कुछ भी सच हो, लेकिन दोनो के बीच एक गहरा सबध है, वह ख्याल मे ले लेना चाहिए। सभावना यह हो सकती है कि दोनो ही बाते सच हो और एक ही साथ सच हो। तब आज नही कल, हम उस असली तत्व को खोज लेगे जिसका एक रूप ध्वनि है और दूसरा रूप विद्युत है। जो इन दोनो के बीच का लिंक है। शायद अध्यात्म की तरफ से खोज करने के कारण भारतीय मनीषी ध्वनि पर पहुँचा, और पदार्थ की खोज करने के कारण पश्चिमी मनीषी विद्युत पर पहुँचा। ध्यान रहे, स्वय के भीतर खोज की है भारतीय मनीषी ने, पदार्थ के भीतर नहीं। तो स्वय के भीतर, आपका जो स्वय का बोध है, वह ध्वनि का आखिरी हिस्सा है। जब तक आपको अपना बोध रहेगा, आपके भीतर ध्वनि का बोध रहेगा। जितने आप भीतर गहरे उतरेंगे उतनी ध्वनि सूक्ष्म होती जायेगी, सूक्ष्म होती जायेगी, सूक्ष्म होती जायेगी। एक आखिरी घडी आयेगी जब बिल्कुल शून्य रह जायेगा, शून्य की भी ध्वनि है—'साउण्डलेस साउण्ड'। उसको भारतीय मनीषी अनहद नाद कहते रहे हैं। शून्य का भी अपना सन्नाटा है। उसकी भी अपनी ध्वनि है। वह उस शून्य के सन्नाटे की आखिरी पकड है। मनुष्य की चेतना मे आखिरी चीज, निराकार मे उतरने के पहले, वह ध्वनि है। इसलिए उनका कहना बिल्कुल ठीक था कि अतिम तत्व ध्वनि होनी चाहिए। वैज्ञानिक पदार्थ की खोज करके जिस आखिरी तत्व पर पहुँचते हैं जिसके आगे सब खो जाता है, निराकार आ जाता है, वह विद्युत कण है। सोचने जैसा यह है, कि पदार्थ का जो आखिरी कण है, क्या चेतना का आखिरी कण उससे पहले होगा या पीछे? निश्चित ही चेतना, पदार्थ से ज्यादा गहन वस्तु है। निश्चित ही चेतना, पदार्थ से ज्यादा रहस्यमय वस्तु है। और सभावना यही है कि चेतना

का जो अन्तिम कण हो वह पदार्थ के अतिम कण से आगे हो। इसलिए भारतीय मनीषी ध्वनि को विद्युत कण से आगे रखने की दृष्टि प्रस्तावित किये हुए है।

जो भी हो, सगीत, कीर्तन, भजन, प्रार्थना, मत्र, सब ध्वनि के उपयोग हैं। और प्रत्येक ध्वनि से साथ आपके भीतर एक स्थिति पैदा होती है। ऐसी कोई भी ध्वनि नही है जो आपके भीतर कोई स्थिति पैदा न कर जाती हो। अब तो साउण्ड इलेक्ट्रानिक पर काम करने वाले वैज्ञानिको का ख्याल है कि जिस पौधे में फूल महीने भर बाद आने वाले है उसके पास अगर एक विशेष प्रकार का वाद्य बजाया जाय तो फूल महीने भर पहले आ जाते है। जो गाय सेर भर दूध देती है उसके पास विशेष ध्वनि बजायी जाय तो उमका दूध बिल्कुल खो जाता है, या दुगुना भी हो जाता है। असल मे ध्वनि का आघात होता है आपकी चेतना पर। ध्वनि आघात करती है आपके भीतर जाकर। हम तलवार से आपकी सिर्फ गर्दन काट सकते हैं, लेकिन ध्वनि की तलवार से आपके मन को भी काट सकते हैं। कोरी तलवार आपके मन को न काट पायेगी, लेकिन ध्वनि की धार ज्यादा तीक्ष्ण है जो मन को भी काट जायेगी। ऐसी ध्वनि की तीव्र धारो के प्रयोग किये गये, जिनसे मन कट जाय, साधक मिट जाय, भक्त मिट जाय और अनत की यात्रा पर निकल जाय। सभी धर्मों ने विशेष ध्वनियो के प्रयाग किये है। विशेष ध्वनियो पर हजारो वर्ष की साधना से बडे परिष्कार हुये हैं।

अभी एक साधक मेरे पास जापान से था, वह जिस सम्प्रदाय में दो वर्ष साधना करके आ रहा था वह है मोटोजेन। उसमे साधक को मूंह मूंह मूंह—इस तरह की आवाज करवायी जाती है। चौबीस घण्टे। साधक खाना खा लेता है, विश्राम कर लेता है, बस इतना छोडकर तीन बजे रात उठ आता है। स्नान करके बैठ जाता है मूंह मूंह मूंह मूंह बोलता रहता है। एक दिन, दो दिन, तीन दिन, आप कल्पना नही कर सकते कि क्या होगा, क्योकि एक ध्वनि का कभी इतना प्रयोग नही किया है। तीन दिन के बाद उस साधक के भीतर विचार क्षीण हो जाते हैं। मूंह और मूंह की ही आवाज भीतर गूजने लगती है। एक तूफान भीतर पैदा हो जाता है मूंह मूंह मूंह। सारे शब्द गिर जाते हैं। मूंह की ध्वनि तलवार बन जाती है तीन दिन मे, और सब विचारो को काटकर गिरा देती है। सात दिन पूरे होते होते उस साधक को 'मूंह' की आवाज करनी नही पडती। वह चाहे बैठा हो, चाहे चल रहा हो, 'मूंह' की आवाज अपने आप चलने लगती है। वह उसके रोये रोये में व्याप्त हो जाती है। खाना खाना मुश्किल हो जाता है उसको। क्योकि जब वह खाना खा रहा है तब भी मूंह मूंह मूंह की आवाज चल रही है। नीद सात दिन के बाद कठिन हो जाती है, क्योकि वह सो रहा है लेकिन ओठ उसके मूंह मूंह मूंह मे लगे हुए है। नीद में वह आवाज उसके भीतर

घुसती आ रही है। इक्कीस दिन पूरे होते होते वह साधक शेरो की तरह दहाड़ने लगता है—मूंह। और चिल्लाने लगता है। उसकी आँखें बदल जाती हैं, उसका चेहरा बदल जाता है, उसका ढग बदल जाता है। वह बिल्कुल रोरिंग, सिंहनाद करने लगता है 'मूंह' का। और गुरु उसको लगाये रखता है कि वह जारी रखे। जैसे ही सिंहनाद शुरू होता है वैसे ही गुरु उससे कहता है, जोर जोर से, और जोर से। फिर खाना, पीना, सोना, बन्द हो जाता है। खा ही नही सकता। गैप ही नही रखता। 'मूंह' की आवाज चलती ही रहती है। चौथे सप्ताह में उसकी नीद, उसका भोजन, उसका स्नान सब विदा हो जाता है सिर्फ 'मूंह' की आवाज चलती रहती है। वह बिल्कुल पागल हो जाता है। ठीक उस जगह पहुँच जाता है जहाँ पागल आदमी मुश्किल से कभी पहुँचता है। उस किनारे पर, जहाँ उसको कोई होश नही है, सिर्फ एक आवाज 'मूंह' रह गयी है। उससे पूछो नाम तुम्हारा, वह कहेगा मूंह। एक महीना निरतर ऐसा करते उसे अपने शरीर का बोध नही रह जाता, बल्कि एक ध्वनि का बोध भर रह जाता है। मैं कौन हूँ, उसे पता नही रहता। उस पर सब पाबदी रखनी पडती है। उसको रोक कर रखना पडता है, वह कही भी जा सकता है। वह कुछ भी कर सकता है। अब उसे कुछ भी पता नही है, अब उस पर चौबीस घण्टे विजिल, पहरा रखना पडता है। जिस दिन से उसमें सिंह की आवाज शुरू होती है और खाना-पीना-नीद बन्द हो जाती है, उस दिन से उस पर पूरा पहरा रखना पडता है। अचानक आखिरी क्षणो में वह आखिरी आवाजे लगाता है। इतनी भयकर आवाजे लगाता है कि जिसका कोई हिसाब हम नही लगा सकते। जितनी शक्ति होती है वह सारी आवाज में ही निकलती है। जैसे भीतर कोई घाव खुल गया या भीतर कोई प्रेत जग गया है, और वह आवाजें लगाये चला जाता है। आखिरी हुंकार जैसे ही उसकी हो जाती है वैसे ही सब शात हो जाता है। जैसे लहर उठी तूफान की आखिरी छलांग लेकर, और गिर गयी। जैसे आखिरी क्लाइमेक्स आ गया, आखिरी चरम स्थिति आ गयी, और सब चीजे बिखर गयी। फिर वह आदमी गिर जाता है। कभी सात दिन, कभी पन्द्रह दिन, और कभी इक्कीस दिन भी वह बिल्कुल शात पडा रहता है। हाथ-पैर भी नहीं हिलाता। सब शात हो जाता है। और जब सात दिन, या चौदह दिन या पन्द्रह दिन बाद वह आदमी वापस लौटता है तो वह वही आदमी नहीं होता, वह दूसरा ही आदमी होता है। तब वह कहते हैं, 'द ओल्ड मैन हैज डाइड', वह पुराना आदमी मर गया। अब वह नया आदमी है। इसमे कुछ भी पुराना नही खोजा जा सकता है—न इसका क्रोध, न इसका काम, न इसका लोभ, कुछ भी नही। पुराने से इसका सातत्य टूट गया है। 'मूंह' के प्रयोग से, ध्वनि के इतने तीव्र आह्वान से, पूरी चेतना का रूपातरण हो गया। ओम् भी वैसी ही ध्वनि है।

सारी दुनिया के सब धर्मों के पास अपनी ध्वनियाँ हैं, जो पूजा में उपयोग की

जाती हैं। उनकी पूजा में जैसे जैसे गहराई बढ़ती जाती है वैसे वैसे भीतर ध्वनि की चोट से रूपान्तरण होने शुरू हो जाते हैं। भजन, कीर्तन भी विशेष ध्वनियों के आधार हैं, और इसीलिए सदा पुनरुक्ति पर जोर है। अगर आपने एक भजन एक दिन किया, दूसरे दिन दूसरा भजन किया, तीसरे दिन तीसरा भजन किया तो परिणाम नहीं होंगे। सतत चोट चाहिए, एक ही केन्द्र पर सतत चोट चाहिए! जैसे कोई आदमी एक हथौड़ी से एक जगह ठोक दे, फिर दूसरी जगह ठोक दे, फिर तीसरी जगह ठोंक दे तो उससे कील ठुकने वाली नहीं है। एक आदमी एक जगह खोद ले दो फीट, दो फीट दूसरी जगह खोद ले और तीसरी जगह खोद ले, उससे कोई कुआँ खुदने वाला नहीं है। सतत एक ही बिंदु पर खुदाई होनी चाहिये। इसलिए पुनरुक्ति पर इतना आग्रह रहा है। इतना आग्रह कि एक महीने भर आदमी 'मूँह' और 'मूँह' की पुनरुक्ति कर रहा है, या ओम् की ध्वनि लगा रहा है। एक ही गीत की कड़ी को दोहराये चला जा रहा है, एक ही धुन को किये चला जा रहा है। इसमें खतरा भी है कि अगर इसको मैकेनिकल ढग, यान्त्रिक ढग से किया तो बेकार मेहनत चली जायेगी। योही आदमी बैठा हुआ मु मु मु करता है, जैसे एक काम कर रहा है, तो कुछ नहीं परिणाम होगा। यह 'मूँह' इसका प्राण बन जाय, जीवन मरण का सवाल बन जाय, यह दाँव लगा दे अपना सब, इस आवाज में इसके शरीर का रोयाँ रोयाँ सम्मिलित हो जाय, इसके एक एक सेल, एक एक कोष्ठ की ऊर्जा इसमे लग जाय, इसकी एक एक हड्डी, माँसपेशी, एक एक स्नायु इसमें सयुक्त हो जाय, खून इसका पुकारने लगे, हड्डियाँ चिल्लाने लगे! इसका पूरा का पूरा अस्तित्व 'मूँह' की आवाज बन जाय तो ध्वनि के द्वारा परिणाम हो पायेगा। भक्त भी एक ही कड़ी दोहराये चला जाय वर्षों तक। वह एक ही कड़ी दोहराने का प्रयोजन है। चोट करनी है एक ही जगह, और चोट करते ही चले जाना है जब तक कि द्वार खुल ही न जाय। और द्वार खुल जाता है!

पूजा मे ध्वनि का, नृत्य का, कीर्तन का इन सबका उपयोग हुआ है। और इन सबका उपयोग मूर्ति के सामने है। ताकि किसी भी क्षण यह ख्याल न भूल जाय। क्योंकि अकेला नृत्य और बात है, वह तो नर्तक भी कर रहा है, नर्तकी भी कर रही है। उसको कोई परम ज्ञान उपलब्ध नही हो जाता। वह नृत्य के लिए ही नृत्य कर रहा है, तब कोई परम ज्ञान से सबध न होगा। यह मूर्ति के सामने चल रहा है सारा क्रम। उस मूर्ति के सामने चल रहा है जिसमे अपने प्राण डाल दिये है। वह मूर्ति चौबीस घण्टे स्मरण दिलाती रहेगी कि नृत्य के लिए नृत्य नही है। यह नृत्य तो परिधि पर है। केन्द्र तो वहाँ है, केन्द्र तो तू है। उसके लिए सारा नृत्य चल रहा है। यह स्मरण बना ही रहे पूरे वक्त कि यह किसी परम सत्ता मे छलाँग लेने की तैयारी है। वह मूर्ति सतत स्मरण दिलाती रहगी। अन्यथा नाच नाचने वाले है, गीत गाने वाले हैं,

बहुत अच्छा गीत भक्त गा लेते हैं। उससे कुछ भी न होगा। भक्त को संगीत से प्रयोजन नहीं है। भक्त को प्रयोजन कुछ और है। वह प्रयोजन यह है कि वह इतना मस्त हो जाय, वह इतना छोड पाये अपने को, कि कोई भी रौ, कोई भी धारा उसे बहा ले जाय अनन्त की तरफ। वह परिधि बन जाय और केन्द्र कोई और बन जाय, वह बह सके, प्रवाहित हो सके। प्रवाहित होने के लिए एक लिक्वीडिटो पैदा हो सके उसमे,—सब तरल हो जाय और बहने लगे।

अक्सर आपको भक्त रोता हुआ मिल जायेगा। वह दुख से नहीं रोता है आनंद से रोता है। और आँसू, भीतर जब कुछ तरल होता है तभी बहते हैं—चाहे दुख में तरल हो जाय, चाहे सुख मे तरल हो जाय। अभी तक वैज्ञानिक ठीक से नही बता पाये हैं कि आँसुओं का प्रयोजन क्या है आदमी के शरीर मे? ज्यादा से ज्यादा जो खोज पाये हैं, वह इतना ही खोज पाये हैं कि आँख पर जो धूल वगैरह जम जाती है, उसकी सफाई का प्रयोजन दिखायी पडता है। आँख के भीतर जो आँसुओं की ग्रन्थियां हैं उनका एक ही प्रयोजन मालूम पडता है कि आँख की सफाई कर सके। लेकिन बडी हैरानी की बात है कि आँख की सफाई की जरूरत तभी पडती है जब कोई आनंद मे होता है या दुख मे होता है? बाकी समय आँख पर धूल नही जमती? बाकी समय आँख की सफाई की कोई जरूरत नही पडती जब भी भीतर ओव्हरफ्लोइंग होती है, कुछ अतिरेक हो जाता है—चाहे दुख का चाहे सुख का, तभी आँसू बहते हैं। आँसू की ग्रंथियां तभी खुलती हैं जब भीतर कुछ तरल हो जाता है और बहना शुरू हो जाता है। भक्त भी रोये पर भक्तों का रोना बहुत अलग है। गैर भक्त नही जान सकता कि भक्त क्या रोये! क्या हुआ उनके भीतर कि वे रो रहे हैं। आप देखेंगे, तो शायद लगेगा कि कोई तकलीफ है जीवन मे, तो भगवान के सामने हाथ जोडकर रो रहे हैं। (जो तकलीफ मे भगवान के सामने रो रहा है वह तो अभी केन्द्र खुद है। वह अभी भक्त नही है अभी उसे पूजा का कोई पता नही है। नहीं, लेकिन एक क्षण ऐसा आता है कि चेतना बिल्कुल तरल हो जाती है, सब ठोसपन, सब फ्रोजेननेस, जहाँ जहाँ जम गये हैं हम, भीतर वह सब मिट जाता है, सब पिघल जाता है। तब आँसुओं की धारा अविरल शुरू हो जाती है। वह आँसू किसी परम अनुकम्पा को धन्यवाद देने के लिए ही बहते हैं। किसी परम प्रसाद को, किसी 'ग्रेस' को, जो उतरना शुरू हुआ है, उसको देने के लिए हमारे पास आँसुओं के सिवाय और कुछ भी नहीं बचता। वह जो हमें मिला है, उसकी हममें कोई पात्रता नही है! जो आनन्द उतरना शुरू हुआ है उसको सम्हालने की भी हमारे पास कोई जगह नही है! जो बरस रहा है हमारे ऊपर, वह हम कभी सोच भी नही सकते सपने मे भी, कि हमें कभी मिल पायेगा! उसको धन्यवाद देने के लिए हमारे पास कुछ भी नही है। न शब्द धन्यवाद दे पायेंगे जिसे, न और कुछ भी। उस वक्त आँख एक अलग

ही ढग से रोती है। भक्त की आँख जैसी रोयी है वैसी कभी किसी की आँख नहीं रोयी है। प्रेमी की आँख भी रोती है, पर उसमें वह बात नही होती। प्रेमी की आँख में बहुत तरह की क्षुद्रताएँ इकट्ठी हो जाती हैं। लेकिन भक्त की आँख अकारण ही रोती है। कोई प्रयोजन नही है, अब कोई उपाय नहीं है, निरुपाय है भक्त। वह परमात्मा को धन्यवाद देना चाहे तो मुँह से शब्द नही निकलता। और जब मुँह नही बोलता तब आँख अपने ढग से बोलना शुरू करती है। पूजा की पूर्णता आँसुओ में है, तरलता में है, बह जाने में है।

बहुत ढगो से, बहुत प्रकार से मूर्ति का उपयोग इस परम अनुभूति के लिए किया गया है। जो मूर्ति के खिलाफ बोलते हैं उन्हे पूजा का कोई पता नही होता। और तब उनके बोलने का उतना ही उपयोग है जितना किसी भी अज्ञानी के बोलने का कोई उपयोग हो सकता है। लेकिन इस सदी मे उस तरह की बाते बहुत प्रभावी हो गयी हैं। क्योकि लोगो को भी कोई पता नही है। और जब किसी को भी कोई पता न हो तो जो भी हमे कहा जाय उसे स्वीकार करने के सिवाय और कोई चारा नही रह जाता। और मन का एक नियम है कि निषेध की बात को जल्दी स्वीकार कर लेता है। क्योकि निषेध की बात में कुछ सिद्ध नही करना पडता है। एक आदमी कहता है, ईश्वर नही है, तो उसे कुछ भी सिद्ध नही करना रहता। जो कहता है 'है' वह सिद्ध करके बता दे। इसलिये निषेध को स्वीकार करने के लिए मन बडी जल्दी राजी हो जाता है। विधेय को स्वीकार करने के लिए मन बडी बाधा डालता है। क्योकि मन को फिर श्रम उठाना पडता है। पूजा एक विधेय है। मूर्ति भी एक विधेय है। इन्कार करना हो, कोई कठिनाई नहीं है। सिर्फ कह दो कि नही है।

तुर्गनेव ने एक छोटी सी कहानी लिखी है। लिखा है कि गाँव में एक आदमी था। बहुत बुद्धिमान आदमी था, बहुत प्रतिभाशाली आदमी था। उसी गाँव मे एक महामूढ़ भी था। उस महामूढ ने इस बुद्धिमान आदमी से जाकर पूछा कि मुझे भी बुद्धिमान होने का कोई रास्ता बता दो। उस बुद्धिमान आदमी ने पूछा कि तुझे बुद्धिमान दिखना है, कि होना है। क्योकि 'होने' का रास्ता बहुत लबा है। 'दिखना' हो तो बहुत आसान है मामला। उसने कहा, आसान ही बताइए, कठिन अपने से न हो सकेगा। होने की झझट छोडिये, दिखना काफी है, दिखने से काम चल जायेगा। उस बुद्धिमान आदमी ने कहा कि होने मे तो कभी भूल-चूक भी हो सकती है, लेकिन दिखने मे कभी भूल चूक नही होगी। उस महामूढ ने कहा, फिर और भी अच्छा है। आप देर न करिये। उस बुद्धिमान आदमी ने उसके कान मे एक मत्र बोल दिया और उस दिन से गाँव मे खबर होनी शुरू हो गयी कि वह आदमी बुद्धिमान हो गया। सच ही सारे गाँव में खबर फैलने लगी। चर्चा सारे गाँव मे चलने लगी। क्या मत्र

फूंक दिया ! एक छोटा सा मंत्र, एक निषेध का सूत्र उसे दे दिया। उसने कहा, जब भी कोई कुछ कहे, फौरन इन्कार करो। जैसे कोई कहे कि मूर्ति-पूजा में कुछ है, कहो कि कुछ भी नहीं है। उस आदमी ने पूछा, अगर मुझे पता न हो तो भी ? तू पते की फिक्र ही मत कर। तू सिर्फ इन्कार करते जाना। कोई कहे कि कालिदास की किताब बहुत अद्भुत है। तू कहना, कचरा है। क्या है उसमें ? सिद्ध करो ! कोई कहे बिथोवन का सगीत परम स्वर्गीय है, तू कहना कि नर्क में भी ऐसा सगीत बजता है। तुम सिद्ध करो कि स्वर्ग का कैसा है ! तू बस एक बात याद रख, इन्कार करना और जो गड़-बड़ करे, उससे कहना सिद्ध करो। पन्द्रह दिन में वह आदमी गाँव भर में महाबुद्धि-मान हो गया। लोगो ने कहा, उसका ओर-छोर पाना कठिन है। किसी ने कहा कि शेक्सपीयर ने इतने सुन्दर गीत लिखे। उसने कहा, क्या रखा है, कचरा है। स्कूल के बच्चे लिख सकते हैं। जो शेक्सपीयर की तारीफ कर रहा था, वह डर गया। क्योंकि कुछ भी सिद्ध करना कठिन बात है। और कुछ भी असिद्ध करने से ज्यादा सरल कुछ भी नही है।

हमारी यह सदी बहुत अर्थों में कई तरह की मूढ़ताओ की सदी है। और हमारी मूढ़ता का जो सबसे बडा आधार है वह निषेध है। पूरी सदी कुछ भी इन्कार किये चली जाती है। जब दूसरे भी सिद्ध नही कर पाते तब वे भी निषेध की धारा में खड़े हो जाते हैं। लेकिन ध्यान रहे, जितना निषेधात्मक होगा जीवन, उतना ही क्षुद्र हो जायेगा। क्योंकि इस जगत का कोई भी सत्य विधायक हुए बिना उपलब्ध नहीं होता। जितना निषेधात्मक होगा जीवन उतना बुद्धिमान ऊपर से दिखायी पड़ेगा, भीतर बहुत बुद्धिहीन हो जायगा। जितना निषेधात्मक होगा जीवन, उतनी ही सत्य की, सौंदर्य की, आनन्द की, किसी अनुभूति की किरण भी नही उतरेगी। क्योंकि कोई भी महत्तर अनुभव विधायक चित्त में ही अवतरित होता है। निषेधा-त्मक चित्त में कोई भी महत्वपूर्ण अनुभव अवतरित नही होता। असल में जिसने कहा, नही, उसका मन बन्द हो जाता है। कभी शब्द का ख्याल किया है आपने ? अपने कमरे को बन्द करके जोर से कह कर देखना, 'नहीं' तब आपको पता चलेगा सारा हृदय सिकुडकर बन्द हो गया है। और उसी कमरे में जोर से कहना 'हाँ' और आपको पता लगेगा, सारे हृदय ने पंख खोलकर जैसे आकाश में उड़ान ली है। शब्द ऐसे ही निर्मित नही होते हैं। उनकी समानान्तर घटना भीतर घटती है। 'नहीं' कहते ही भीतर कोई चीज बन्द हो जाती है और सिकुड जाती है। और 'हाँ' कहते ही चीज खुल जाती है।

सेंट अगस्टीन से किसी ने पूछा, क्या है तेरी प्रार्थना, क्या है तेरी पूजा ? तो सेंट अगस्टीन ने कहा, यस, यस, यस माई लार्ड ! इतनी ही मेरी पूजा है। हां, हां,

हां मेरे प्रभु ! इतनी ही मेरी पूजा है। इतनी ही मेरी प्रार्थना है। वह तो नहीं समझा होगा कि वह क्या कह रहा, लेकिन जो हृदय इस पूरे जीवन को 'हां' कहने के लिए तैयार हो जाय वह आस्तिक है। आस्तिकता का अर्थ ईश्वर को 'हां' कहना नहीं, 'हां' कहने की क्षमता है। नास्तिक का अर्थ ईश्वर को इन्कार करना नहीं, नास्तिक का अर्थ, 'न' के अतिरिक्त किसी भी क्षमता का न होना। बस, एक ही क्षमता, 'नहीं'। तो ठीक है,—वैसा आदमी सिकुड़ता जायेगा, सिकुड़ता जायेगा और सड़ जायेगा। 'हां', और वैसा आदमी खुलता है, और खुलता है, फैलता है और विराट तक उसकी उड़ान संभव हो पाती है।

मूर्ति-पूजा एक बहुत विधायक विधि, एक पोजेटिव उपाय है। पर इतनी बातें सोचकर, समझ कर गहरे उतरेंगे तब आपको पता चलेगा कि मूर्ति में, पूजा में, मूर्ति-पूजा में, मूर्ति कहां है ? पूजा ही है। मूर्ति तो बस शुरुआत है। पूजा परमात्मा की है, यह भी ठीक है, लेकिन गहरे में तो आपका ही रूपांतरण है। परमात्मा तो बहाना है। उस बहाने, अपने को बदलने में सुविधा मिल जाती है। जिस डाक्टर रोडाल्फ की मैं बात कर रहा था शुरू में, इस आदमी ने एक और महत्वपूर्ण नियम खोजा है, वह मैं आपसे कहूं, जो इसके लिए उपयोगी होगा।

जब भी हमारे मस्तिष्क में कोई विचार पैदा होता है तो उस विचार को यात्रा करनी पड़ती है स्नायुओं से, मांसपेशियों से, शरीर के तंत्र से। समझ लो कि मेरे मन में विचार पैदा हुआ कि मैं आपको प्रेम करूं और आपका हाथ अपने हाथ में ले लूं। मेरे मस्तिष्क का यह विचार अपनी यात्रा शुरू करता है। और मेरे शरीर के बहुत से यांत्रिक ढांचे को पार करके मेरी हाथ की अंगुलियों तक आता है। रोडाल्फ ने मनुष्य के स्नायुओं पर महत्वपूर्ण खोज करके यह पता लगाया है कि जब विचार पैदा होता है कि मैं प्रेम करूं और आपका हाथ अपने हाथ में ले लूं, तब अगर उसको हम मान लें कि उसमें सौ शक्ति है, सौ की पोटेंशियलिटी है तो उंगली तक पहुंचते पहुंचते एक की पोटेंशियलिटी रह जाती है। निन्यानबे की शक्ति, बीच के स्नायुओं में, जो ट्रांसफर होने की यात्रा है, उसमें खो जाती है। सभी विचार हमारे व्यक्तित्व की बाहरी पर्त तक आते-आते बिल्कुल निर्जीव हो जाते हैं। इसीलिए तो जब मन में हम सोचते हैं कि किसी का हाथ प्रेम से हाथ में ले लें तब जितना सुखद मालूम पड़ता है, उतना सुखद तब नहीं मालूम पड़ता है जब हम हाथ में हाथ लेते हैं। तब ऐसा लगता है कि कुछ खास न हुआ। यह बात क्या हो गयी ? यह कुछ खास क्यों न हुआ ? एक आदमी संभोग के संबंध में सोचता रहता है, बड़ा सुख मन में पाता है। लेकिन संभोग के कृत्य में जाकर सिर्फ डिप्रेस्ड होकर लौटता है। पीछे से लगता है कि इसमें कुछ हुआ नहीं। बात क्या हो गयी ? मस्तिष्क में जो विचार था वह सौ की पोटें-

शियलिटी का था । जबतक वह शरीर की परिधि तक आता है तबतक एक की पोटेंशियलिटी रह जाती है । और कभी कभी एक की भी नही रह जाती है । कभी कभी तो निगेटिव पोटेंशियलिटी हो जाती है । अगर रुग्ण शरीर हो, तो शरीर की यात्रा मे इतनी शक्ति समाप्त हो जाती है कि वह विचार पहुचते पहुचते निगेटिव हो जाता है । यानी कई बार ऐसा हो जाता है कि जिसका हाथ हाथ में लेकर सोचा था सुख मिलेगा, उसका हाथ लेकर सिर्फ दुख मिलता है । ऋणात्मक हो जाता है । रोडाल्फ का कहना है कि अगर यही स्थिति है तो आदमी कभी सुख न पा सकेगा ।

क्या कोई ऐसा उपाय नही है कि विचार मेरे मस्तिष्क से सीधी छलाग लगाकर आपके मस्तिष्क मे प्रवेश कर जाय ? धर्म कहता है, ऐसा उपाय है । और रोडाल्फ भी कहता है, उसके अपने हजारों प्रयोगो के आधार पर, कि विचार सीधी छलाग भी लगा सकते है । तब, मेरे मन में जो विचार उठा है वह मेरे पूरे शरीर की यात्रा करके मेरे शरीर के माध्यम से आप तक जाय, इस पूरी चैनल का, इस पूरे यत्र का उपयोग नही किया जाता । तब मै अपने विचार को अपने आज्ञाचक्र पर आख बन्द करके रोकता हू और सीधा उसे छलाग लगाकर आपके आज्ञाचक्र में पहुचाता हू । सारी टेलीपैथी, सारा विचार का सक्रमण इसी कला पर निर्भर है । रोडाल्फ ने एक-एक हजार मील दूर तक विचार सक्रमित करके बताये । रूस में हावर्ड ने, और दूसरे प्रयोगो में दूसरे लोगो ने भी बहुत दूर तक विचार का सक्रमण करके बताया । तब अपने विचार को सिकोडकर अपने आज्ञाचक्र पर इकट्ठा कर लेना है, जैसे कि कोई घूमता हुआ छोटा सा सूर्य आपके विचार का बन गया और आपके मस्तिष्क मे घूमने लगा हो भीतर । उसे छोटा करते जाना है, —छोटे से छोटा । ताकि वह ज्यादा पोटेंशियल हो जाय । शरीर पर फैलता है तो पोटेंशियलिटी कम हो जाती है । उसे इकट्ठा करते जाना है एक बिन्दु पर । बस एक छोटा सा बिन्दु रह जाय प्रकाश का, ऐसा अनुभव कर लेना है । एक घडी आती है, जब वह इतना छोटा हो जाता है कि उसके आगे छोटा नही हो सकता, वही घडी छलाग लगवा देने की घडी है । तब सिर्फ इतना ख्याल करना है कि वह मस्तिष्क से छलाग लगाकर दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में चला गया है । वह दूसरा व्यक्ति चाहे कितनी ही दूर हो, सिर्फ आपकी कल्पना में होना चाहिए कि वह दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क मे प्रवेश कर गया, उसके आज्ञाचक्र पर चला गया । वह ट्रासफर हो जायेगा ! टेलीपैथी, विचार का सक्रमण बिना माध्यम के इस कला पर निर्भर है । इसलिए बिन्दु की साधना धर्म ने बहुत बहुत रूपो में की है । बिंदु की साधना का यही वैज्ञानिक रूप है । इसका व्यक्ति में भी उपयोग कर सकते है और इसको हम परमात्मा के लिए भी उपयोग कर सकते है ।

जैसे महावीर की मूर्ति रखकर आप बैठें । महावीर की तो चेतना खो गयी अनत

में । लेकिन इस मूर्ति के सामने अगर बैठकर आप अपनी, पूरे के पूरे प्राणो की ऊर्जा को आज्ञाचक्र पर इकट्ठा करके छलांग लगवा दें मूर्ति के मस्तिष्क में, तो तत्क्षण वह विचार महावीर की चेतना तक सक्रमित हो जायेगा । इस माध्यम से न मालूम कितने लोगो ने, न मालूम कितने पीछे आने वाले लोगो को हजारो वर्ष तक सहायता पहुचायी है । उनके लिए फिर बुद्ध या महावीर या क्राइस्ट मरे हुए व्यक्ति नही रहते, जीवित व्यक्ति रहते है । अभी और यही । उनके लिए बात सीधी सामने होती है । और इसका प्रयोग सीधा परमात्म-शक्ति में छलाग लगाने के लिए भी किया जा सकता है। लेकिन परमात्मा का केन्द्र आप कहा खोजेंगे ? इस अपने मस्तिष्क में इकट्ठे हुए बिन्दु को आप कहा छलांग लगाकर भेजेंगे ?

सरल पडेगा, एक मूर्ति के माध्यम से इसे सक्रमित कर देना । इसको अनत मे सीधा फेकने मे बडी कठिनाई होगी । फेंका जा सकता है अनत में भी सीधा, लेकिन उसके अलग टेकनीक है । जिन धर्मों ने मूर्ति का प्रयोग नही किया उन धर्मों ने उन टेकनीकों का प्रयोग किया है जिनसे अनत मे सीधी छलाग लगायी जा सकती है । लेकिन अति कठिन है । इसलिए जो धर्म मूर्ति का प्रयोग नही करते वह थोडे-बहुत दिन मे घूम-फिर कर मूर्ति का प्रयोग शुरू कर देते हैं । अब जैसे कि इस्लाम ने मूर्ति का प्रयोग नही किया, लेकिन मस्जिद का प्रयोग शुरू हो गया । फकीरो की मजारे बन गयी, फकीरो की समाधियाँ बन गयी, उनका प्रयोग शुरू हो गया । आज भी मुसलमान दुनिया के किसी भी कोने मे प्रार्थना करता है तो काबा के पत्थर की तरफ चेहरा करता है । वह काबा का पत्थर इस बिन्दु को उछालने के लिए काम में लाया जाने लगा, उनके द्वारा जो जानते हैं । जो नही जानते हैं वह तो सिर्फ मुह करके खडे हो जाते हैं । इससे कोई फर्क नही पडता है कि काबा के पत्थर पर बिन्दु को फेका जाय कि किसी मूर्ति पर फेंका जाय । इससे कोई फर्क नही पडता कि मूर्ति के चरण चूमे जाय कि काबा के पत्थर का जाकर बोसा लिया जाय । कोई फर्क नही पडता, एक ही बात है । मुहम्मद का कोई चित्र नही रखा, मुहम्मद की कोई मूर्ति नही बनायी, तो उससे क्या फर्क पडता है ? दूसरा काम करना पडा । यह बडे मजे की बात है, मुहम्मद का चित्र नही बनाया, मूर्ति नही बनायी, तो फिर बहुत छोटे फकीरो की मजारो पर फूल चढ़ाने पडते है । मुहम्मद के बराबर का सब्सस्टीट्यूट नही खोजा जा सका फिर । तो अगर कृष्ण आज्ञा देते हो कि कोई फिक्र नही, मेरी मूर्ति के चरणो मे तू आ जा, तो मैं मानता हू कि बहुत दूरगामी हैं वे । क्योंकि कृष्ण की समझ यह है कि आदमी मूर्ति से तो बच न सकेगा । अनत मे सीधी छलांग लगानो इतनी दुष्कर है कि कभी करोड में एक आदमी लगायेगा । बाकी करोड का क्या होगा ? अगर कृष्ण की मूर्ति न मिली तो क ख ग की मूर्ति मिलेगी जो बिल्कुल ही साधारण होगी । मुहम्मद की मूर्ति से बचने का परिणाम क्या हुआ है ? परि-

जाय. यह हुआ है कि गांव में एक फकीर मर जाता है तो उसकी मजार पर मुसलमान इकट्ठा होने लगते हैं। उसमें मुसलमान का कसूर नहीं है, उसमें मनुष्य की वह जो आंतरिक सुविधा है, वही है कारण। मैं भी मानता हू कि मुहम्मद की मूर्ति से जो पैदा हो सकता वह इस मजार से नहीं हो सकता। हालांकि मुहम्मद जो कह रहे थे बिल्कुल ठीक कह रहे थे कि मूर्ति की कोई जरूरत नहीं है। मगर करोड़ में एकाध आदमी के लिए वह बात ठीक है। और जिस आदमी के लिए वह बात ठीक है उस आदमी के लिए किसी चीज की कोई जरूरत नहीं है। मूर्ति की नहीं, उसके लिए काबा की भी कोई जरूरत नहीं, उसके लिए कुरान की भी कोई जरूरत नहीं, उसके लिए इस्लाम की भी कोई जरूरत नहीं, गीता की भी कोई जरूरत नहीं, कृष्ण की, बुद्ध की, किसी की भी कोई जरूरत नहीं। उस आदमी के लिए तो सभी कुछ बेकार है। वह सीधा ही जा सकता है। पर बाकी सबके लिए ? बाकी सबके लिए सबकी जरूरत है। और उचित यह होगा कि श्रेष्ठतम मिले उन्हें। जब जरूरत ही है तो उचित होगा कि बजाय हम किसी फकीर की मूर्ति बनायें, गांव के एक अच्छे आदमी की मूर्ति और मजार पूजें, उससे बेहतर है कि बुद्ध या कृष्ण या मुहम्मद या महावीर जैसे व्यक्ति की मूर्ति से यात्रा हो। जब जाना ही है सागर में, तो गांव की छोटी डोंगी में यात्रा करना खतरे से खाली नहीं है। तब फिर विशाल पोत में, बड़े जहाज में यात्रा की जा सकती है। जब बुद्ध की नाव उपलब्ध होती हो, तो किसी आदमी ने गांव में तावीज निकाल दिये हों, या किसी आदमी के आशीर्वाद से कोई बीमार ठीक हो गया हो, उसकी मजार पर इकट्ठा होना बिल्कुल पागलपन है। लेकिन अगर बुद्ध की मूर्ति उपलब्ध न होगी तो आदमी की जरूरत है भीतरी, कि वह कोई दूसरा सब्सटीट्यूट खोजेगा। ऊपर से दिखायी पड़ता है कि जिन लोगों ने इन्कार कर दिया उन्होंने बड़ी ऊंची बात की। लेकिन हजारों, लाखों साल का अनुभव था, जिन्होंने इन्कार नहीं किया था, उनके साथ भी। उनके साथ भी अनुभव था कि आदमी को जरूरत पड़ेगी ही। वह आदमी की भीतरी कठिनाई है कि वह अनंत पर सीधा नहीं जा सकता, इसलिए एक बीच में पड़ाव चाहिए। वह पड़ाव जितना श्रेष्ठतम मिल सके उतना बेहतर है।

मूर्ति, दुनिया में ऐसा कोई समाज नहीं रहा आज तक अस्तित्व में, जहां निर्मित न हुई हो। मनुष्य जाति का कोई कबीला नहीं रहा कहीं, किसी भी कोने में, जहां किसी न किसी भी रूप में मूर्ति निर्मित न हुई हो। स्वभावत इससे पता चलता है कि मनुष्य को, मनुष्यता की कोई आंतरिक जरूरत मूर्ति से पूरी होती है। सिर्फ हमारी सदी है, जिसे मूर्ति का ख्याल टूटना शुरू हुआ है इन दो सौ, ढाई सौ वर्षों में। मूर्ति, ऐसा मालूम होने लगा है कि वह व्यर्थ का बोझ है। उसे हटा दिया जाय। लेकिन हटाने के पहले अगर मूर्ति-पूजा का पूरा ख्याल साफ हो जाय तो मैं नहीं सोचता हू कि इस जगत में कोई बुद्धिमान आदमी उसे हटाने को राजी होगा। हां,

अगर मूर्तिपूजा का विज्ञान ही ख्याल में न रह जाय तो मूर्ति हटानी ही पड़ेगी, उसे बचाया नहीं जा सकता। वह अपने आपही गिर जायेगी। लोग पूजा भी कर रहे हैं बिना जाने, मूर्ति के सामने हाथ भी जोड़ रहे हैं बिना जाने। पर वहां कोई हृदय का भाव नहीं रह गया है, सिर्फ औपचारिकता रह गई है। यह औपचारिक लोग ही मूर्ति को मिटवाने का कारण बनेंगे ! क्योंकि यह मूर्ति भी पूज आते हैं और इनकी जिन्दगी में तो कोई फर्क पैदा नहीं होता ! यही खबर लाते हैं कि बेकार है। एक आदमी चालीस साल से मूर्ति-पूजा कर रहा है और कुछ भी नहीं हो रहा है। वह अपने बेटे को कह रहा है कि तू भी मंदिर चल। वह बेटा पूछने लगा है कि आपको कुछ भी नही हुआ है चालीस साल में, आप मुझे कहां और किस लिए ले जाना चाहते हैं ? कोई जवाब भी नही है उनके पास, क्योंकि हुआ हो तो जवाब की जरूरत नहीं रहती।

सुना है मैंने ईसप की कथा है एक छोटी सी, एक सिंह जंगल में एक एक जानवर से पूछ रहा है,— पूछता है एक भालू से कि क्या ख्याल है तुम्हारा ? जंगल का मैं राजा हूं न ? भालू कहता है बिल्कुल ही, निश्चित ही। कौन इस पर शक कर सकता है ? और यही पूछता है एक चीते से। चीता थोडा सा संकोच खाता है। फिर कहता है, नही, ठीक ही है बात, बिल्कुल ठीक है। आप राजा हैं। पूछता है वह फिर एक हाथी से। हाथी उसे उठाता है अपनी सूंड में और लपेटकर बहुत दूर फेंक देता है। सिंह नीचे गिर कर वहां से कहता है कि महाशय, अगर आपको जवाब का पता नहीं है तो सीधा मना क्यो नही कर देते हैं। फेंकने की क्या जरूरत है ? सीधे ही कह दिया होता, इतनी तकलीफ की क्या जरूरत थी? मैं चला जाता ! मगर जो हाथी फेंक सकता है उठाकर, वह सिंह को जवाब क्यो देने लगा ?

कौन राजा है, इसके जवाब थोडे ही देने पडते हैं। जो मूर्ति को पूज रहा है उसको जवाब न देना पडे, अगर उसको पूजा का पता हो। उसकी जिन्दगी जवाब है। उसकी आंख, उसका उठना, उसका बैठना, वह जवाब बन जाय। लेकिन उसको जवाब देने पडते हैं। पर वे जवाब कुछ भी नही हैं। ऐसे ही लोग जो मूर्ति को पूज रहे हैं, मूर्ति को हटवाने का कारण बन गये हैं। पूजा का ही पता नही है, बस हाथ में मूर्ति रह गयी है। इसलिए मैंने पूजा की बात आपसे कही, कि उसे समझ लें, वह इनर टोटल ट्रांसफार्मेशन है, अन्तर समग्रता से परिवर्तन की व्यवस्था है। मूर्ति तो सिर्फ बहाना है—जैसे किसी खूटी पर कोई कोट टांग दे। टांगना है कोट ! आप मुझे देख लें कि मैं खूटी पर कोट टांग रहा हूं, और आप मुझसे कहने लगें, कि क्या पागलपन है, इस खूटी से क्या होगा ? तो मैं आपसे कहूंगा कि खूटी से कोई प्रयोजन नहीं है। यह तो कोट टांगने की व्यवस्था है। खूंटी नही होती तो फिर

किसी खीली पर टांगते, दरवाजे की नोक पर टांगते। वह तो टांगना पड़ेगा। लेकिन कोट टांगते वक्त आपको कोट दिखायी पड़ता है, खूंटी दिखायी नहीं पड़ती, इसलिए आप झंझट खड़ी नहीं करते और सवाल नहीं उठाते। मूर्ति तो खूंटी है, पूजा है असली चीज, लेकिन मूर्ति-पूजा के वक्त आपको पूजा तो दिखायी नहीं पड़ती,—कोट तो दिखायी नहीं पड़ता, खूंटी दिखायी पड़ती है। आप कहते हैं, क्यों दीवाल खराब रख रखी है? किस लिए रोक रखा है इस खूंटी को? कोट हो गया अदृश्य, खूंटी रह गयी है दृश्य। पूजा का कोई भी पता नहीं है आपके पास! मूर्ति बैठी रह गयी है, तो मूर्ति बड़ी असहाय हो गयी है और बड़ी पराजित हो गयी है। और बच न सकेगी, क्योंकि पूजा का प्राण ही उसे बचा सकता है। इसलिए मैंने पूजा की बात आपसे कही।)